गांधीजी के साथ पचीस वर्ष

(महादेवभाई की डायरी)











महादेव देसाई

गांधीजी के साथ २५ वर्ष - पाँचवाँ खण्ड

(महादेवभाई की डायरी)

(मार्च 1925 से मई 1925 तक)

सम्पादक

नरहरि द्वा० परीख

चन्दुलाल भगुभाई दलाल

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001

प्रकाशकीय

यह बड़े हर्ष का विषय है कि सर्व सेवा संघ की ओर से महादेवभाई की डायरियाँ हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। महादेवभाई देसाई और गांधीजी का सम्बन्ध भारत में कौन नहीं जानता? दोनों नाम राष्ट्रीय इतिहास में अभिन्न रहेंगे। सन १९१७ में जब महादेवभाई गांधीजी के पास आये, तब से उन्होंने नियमित रूप से अपनी डायरी लिखी और सन् १९४२ में आगा खाँ महल में वे जब गांधीजी की गोद में सिर रखकर गये, तब तक उनका यह सिलसिला बराबर जारी रहा।

महादेवभाई और गांधीजी का सम्बन्ध दो अभिन्न हृदयों का सम्बन्ध था। महादेवभाई की डायरी का मतलब है, गांधीजी की डायरी। महादेवभाई की इन डायरियों में आपको गांधीजी की राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात मिलेगी। गांधीजी ने बीमारी में, सन्निपात में कुछ कहा होगा, तो उसका उल्लेख भी उसमें मिलेगा। गांधीजी के ऐतिहासिक और जगत्प्रसिद्ध व्याख्यान इन डायरियों में है। अगर राह चलते गांधीजी ने किसी बच्चे के साथ थोड़ा विनोद किया है, तो वह भी इन डायरियों में प्रतिबिम्बित हुआ है। इतिहास में इस प्रकार के डायरीलेखन का नमूना सिर्फ एक ही मिलता है और वह है, अंग्रेज विद्वान बॉसवेल का, जिन्होंने डॉ. जॉनसन के जीवन के बारे में लिखा है। लेकिन डॉ. जॉनसन के लेख और महादेवभाई की डायरियों में उतना ही अन्तर है, जितना डॉ. जॉनसन और गांधीजी के जीवन में।

अपने अनेक कामों के बीच जब कभी थोड़ीसी फुरसत मिली है, महादेवभाई ने गांधीजी के वचनों के उपरान्त अन्य सामग्री से अपनी डायरियों को समृद्ध किया है। महादेवभाई के समान विशाल और गहरा अध्ययन करनेवाले लोग हमारे देश में कम ही मिलेंगे। समयसमय पर उन्होंने डायरियों में अपने व्यापक-पठन की कुछ आलोचना भी लिखी है। कभी किसी नये स्थान पर गये, तो उस स्थान का वर्णन भी किया है। कभी किसी नये व्यक्ति से मिले, तो उसका थोड़ा चरित्र-चित्रण भी किया है और इन छोटे-छोटे परिच्छेदों में महादेवभाई की उच्च कोटि की साहित्यिक प्रतिभा प्रकट हुई है।

सन् १९१७ से १९४२ तक की डायरी याने भारत के अहिंसक राष्ट्रीय आन्दोलन का एक जीता-जागता दिलचस्प इतिहास। गांधीजी के विचारों के अन्तस्तल में प्रवेश कराते हुए उनसे मिलनेवाले, पत्र-व्यवहार करनेवाले हजारों लोगों का सहज स्फूर्त वर्णन कर महादेवभाई ने उस समय के राष्ट्र-मानस का जो चित्र खींचा, वह अपने-आपमें एक विशेषता है।

कुल मिलाकर महादेवभाई की डायरी के प्रकाशन से न सिर्फ भारत के, किन्तु जगत् के साहित्य को लाभ होगा । यह दुर्भाग्य का विषय रहा कि स्व. महादेवभाई अपनी डायरियों को स्वयं सम्पादित न कर सके । एक कर्मयोगी की तरह काम करते हुए वे अचानक हमारे बीच से उठ गये । अपने मित्र के अधूरे काम को पूरा करने की जिम्मेवारी स्व. नरहरिभाई परीख ने मित्र-धर्म के पालन की दृष्टी से उठायी। अपनी प्राणघातक बीमारी से जूझते हुए भी उन्होंने औंसत पाँच-पाँच सौ पृष्ठों की छह डायरियों का पूरा सम्पादन किया। यह काम अपने में ही बहुत बड़ा काम था। लेकिन अभी तो वैसे ही लगभग १५ और खण्डों का सम्पादन बाकी है। आगे के खण्डों का सम्पादन श्री चन्दुलाल भगुभाई दलाल कर रहे हैं।

बहुत समय पहले 'नवजीवन प्रकाशन ट्रस्ट' अहमदाबाद की ओर से हिन्दी में डायरी के तीन खण्ड प्रकाशित हुए थे, जो सन १९३२-३३ के थे। बीच में स्व. महादेवभाई के पुत्र श्री नारायण देसी तथा स्व. नरहरिभाई के पुत्र श्री मोहनभाई परीख, जो उनके वारिस भी हैं, का नवजीवन ट्रस्ट के साथ प्रकाशन-अधिकार को लेकर मतभेद हो गया और इस तरह वर्षों तक डायरियों का प्रकाशन-कार्य रुका रहा। उक्त दोनों वारिसों ने डायरी के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित करने का अधिकार सर्व सेवा संघ को निःशुल्क दिया, यह उनका सौजन्य है तथा संघ उनकी इस कृपा के लिए आभारी है।

पूरी डायरियाँ सन १९१७ से सन १९४२ तक के काल की हैं। २५ वर्षों की ये डायरियाँ क्रमशः प्रकाशित होंगी और सर्व सेवा संघ ने यह काम अपने हाथ में ले लिया है। आशा है कि गांधीजी की शत-संवत्सरी सन १९६९ तक क्रमशः सब खण्ड प्रकाशित हो जायेंगे। नवजीवन द्वारा पूर्व प्रकाशित सन १९३२-३३ के तीन खण्ड भी यथाक्रम प्रकाशित होंगे।

हमें विश्वास है कि इस ऐतिहासिक डायरी का सर्वत्र स्वागत होगा ।

•

पाँचवाँ खण्ड

इस खण्ड में ता. २-३-१९२५ से ३१-५-१९२५ तक की डायरी ली गयी है । यह सामग्री गुजराती के ७वें और ८वें खण्ड से ली गयी है। गुजराती का ८वाँ खण्ड दिसम्बर १९२५ तक का है । जून १९२५ से दिसम्बर १९२५ तक की सामग्री हिन्दी के छठे खण्ड में प्रकाशित की जा रही है।

इसके पूर्वे डायरी के हिन्दी में चार खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं ।

कागज, छपाई तथा अन्य सब प्रकार की महँगाई के बावजूद प्रत्येक खण्ड का मूल्य ८ रुपया रखा गया है, जो लागत म्रात्र है।

•

प्रस्तावना

महादेवभाई की डायरी का हिन्दी में यह पाँचवाँ खण्ड है। इस खण्ड में ता. २-३-१९२५ से ता. ३१-५-१९२५ तक की, तीन महीने की डायरी ली गयी है।

सन् १९२४ के अन्त में बेलगाँव में कांग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष-पद से देश के सामने जो दुपंखी कार्यक्रम गांधीजी ने रखा था और जो स्वीकार किया गया था, उसमें से अपरिवर्तनवादियों के त्रिविध कार्यक्रम के अमल के लिए उन्होंने सारे देश का भ्रमण शुरू किया था, वह इस समय भी चालू था और आगे चलकर सन् १९२५ के अन्त तक यानी कानपुर-कांग्रेस तक बराबर चलता रहा ।

दक्षिण की यात्रा मुख्यतः वाईकोम में मन्दिर के आसपास के रास्तों को अस्पृश्यों के लिए ख़ुलवाने को हो रहे सत्याग्रह के सिलसिले में थी । अस्पृश्यता-निवारण रचनात्मक कार्यक्रम का अंग था। गुजरात में और अन्यत्र भी जहाँ-जहाँ वे गये और बोले, वहाँ सब जगह इस मामले पर जोर देते थे। परन्तु केवल इसी कारण यात्रा की हो, तो वह केवल वाईकोम का ही प्रवास कहा जा सकता है। यहाँ महाधुरन्धर पण्डित थे, जो अस्पृश्यता को धर्म समझते थे । उनके साथ गांधीजी शास्त्रीय वाद-विवाद में पड़े और इतनी समझ और होशियारी से अस्पृश्यता और अनुपसार्यता के प्रश्नों की चर्चा की कि बड़े-बड़े विद्वान् भी घबराये, और उन लोगों के मुँह से ही स्वीकार कराया कि इसके लिए शास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए उन्होंने पूर्वापर के रिवाज का मुद्दा सामने रखा। इसके लिए भी लोकमत-संग्रह करने की गांधीजी ने तैयारी बतायी।

और साथ ही साथ सत्याग्रहियों को भी उपदेश देते हुए कहा, इस मामले में जल्दबाजी मत करना और धीरज और नीति से काम लेना । इस प्रवचन में सत्याग्रही के कर्तव्य की बहुत ही बढ़िया कल्पना दी है ।

इस प्रकार इस सारे प्रवास में उन्होंने जो भाषण दिये और चर्चाएँ कीं, वे मुख्यत: पहले बताये हुए त्रिविघ काय्रेक्रम के सम्बन्ध में ही थीं । परन्तु मौका मिलने पर उन्होंने और-और विषयों की भी चर्चा की । भावनगर के शामलदास कॉलेज के विद्यार्थियों के समक्ष और भादरण के सेवा-समाज की ओर से हुई सभा में विद्यार्थियों के जीवन और ब्रह्मचर्य पर प्रवचन किये, आश्रम में उन्हींकी उपस्थिति में विवाह हुए, तब दिये गये प्रवचनों में विवाह के आदर्शों और सादगी के प्रश्नों की चर्चा की, त्रिवेन्द्रम में वकीलों के सामने किये गये भाषण के समय अपने पुराने पेशे के मित्रों को देखकर जरा खिले, और अपने जीवन के कुछ मजेदार प्रसंग वर्णन करके वकीलों के कर्तव्य की ठीक-ठीक कल्पना करायी । काठियावाड़ राजकीय परिषद् के समय राजा और

प्रजा का धर्म समझाया, कितने ही मान-पत्रों के जवाब में यह समझाया कि आदर्श शहरी जीवन किसे कहते हैं, और इतनी प्रवृत्तियों के बावजूद मुलाकाती तो होते ही थे। इन सबसे सम्बन्ध रखनेवाली टिप्पणियाँ इस पुस्तक में हैं ।

बंगाल के प्रवास में बापू शान्तिनिकेतन भी गये थे । शान्तिनिकेतन में 'बड़े दादा'—कविवर के बड़े भाई श्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर—के साथ उनकी चर्चा अत्यन्त भावभीनी और श्रद्धापूर्ण रही । बड़े दादा ने बापू की सभी प्रवृत्तियों को अपना समर्थन दिया । वहीं कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ खादी और चरखा-प्रचार के विषय में चर्चा हुई थी । दो महान् आत्माओं की इस चर्चा का अपना महत्त्व है । यद्यपि महादेवभाई ने यह नहीं लिखा है कि यह चर्चा किसके साथ हुई थी, किन्तु समय और स्थान देखते हुए यही अनुमान होता है कि यह चर्चा कवीन्द्र के साथ ही हुई थी। यह बात प्रसिद्ध हो गयी थी कि चरखा और खादी के मामले में गांधीजी जो आग्रह रखते थे, उसकी मात्रा कविवर को अत्यधिक लगती थी और इसीलिए इस विषय की बातचीत को सार्वजनिक रूप में रखना महादेवभाई ने उचित न समझा हो । इसलिए महादेवभाई ने 'नवजीवन' में इस बातचीत का निर्देश ही किया था और 'यंग इंडिया' में नाम दिये बिना थोड़ा-सा अंश दिया था । लेकिन हस्तलिखित डायरी में यह बातचीत यथासम्भव पूरी लिखी गयी है। उस सारी बातचीत का इस पुस्तक में समावेश किया गया है ।

गांधीजी के इस प्रवास का मुख्य हेतु तो, जैसा कि शुरू में बताया गया, कांग्रेस का अपरिवर्तनवादियों के लिए निश्चित किया हुआ त्रिविध-कार्यक्रम समझाना था । इस कार्यक्रम के अंग थे—चरखा और खादी का प्रचार, हिन्दू-मुसलिम-एकता और अस्पृश्यता-निवारण ।

हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के सम्बन्ध में भी पहले की तरह ही; जहाँ गये, वहाँ प्रयास किये, प्रचार किया और उसके अभाव के बारे में सन्ताप प्रकट किया । "क्या यह (ऐक्य) अवांछनीय वस्तु है? असम्भव बात है? मैं अपने-आपको डॉक्टर मानता था। परन्तु यह रोग मिटाने के लिए आवश्यक दवा देने में मैं असफल सिद्ध हुआ । मेरी दवा इन्हें रुची ही नहीं । हमें एक-दूसरे के सिर फोड़ने ही हों, तो भले ही फोड़ें, परन्तु मर्दानगी से फोड़ें, मगर के आँसू बहाकर नहीं और किसीकी दया माँगकर नहीं।" "यदि लड़ना चाहते हों, तो मर्दानगी से लड़ें। लड़ने के बाद भी एकदिल होना पड़ेगा । दोनों में से एक का सर्वथा नाश होना असम्भव है । ...यह नहीं चाहता कि दूसरे का सिर फोड़कर कोई भी भाग जाय और ऐसा भी नहीं चाहता कि कोई अदालत का संरक्षण ढूँढ़ने जाय ।" "यदि एक भी साफ दिल से लड़ना न चाहे तो दुनिया की कोई ताकत इन्हें लड़ा नहीं सकती । इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि यदि दिल साफ न हो तो दोनों अपराधी होंगे। ऐसी एक भी बात नहीं कि जो

दोनों आज तक साथ रहते आये हैं, उन्हें आज लड़ना पड़े ।" "यदि इन दोनों को कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़ना हो तो लड़ने दो । हथियार-बन्दी के कारण हम एक-दूसरे के गले नहीं काट सकते, यह एक शाप है। किसको कितना नफा-नुकसान होगा, यह सोचकर नहीं, परन्तु उसे स्थापित करना ही चाहिए, ऐसी भावना होगी तो ही हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य की स्थापना होगी ।" "आज मैं बेकार और निकम्मा हो गया हूँ । मेरी दवा आज बेकार हो गयी है। परन्तु मैं कहता हूँ कि एक बार हिन्दू-मुसलमानों को खूब लड़ लेने दो । इनके खून से पद्मा का पानी लाल हो जाने दो।" "आज जब हिन्दू और मुसलमान कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़ रहे हैं, तब हम भी, आलंकारिक भाषा में कहूँ तो, अन्तर्मुख होकर अदृश्य हो जायँ ।"

चरखा और खादी पर तो विचार अनेक स्थानों पर व्यक्त किये और यह पुस्तक प्राय: तत्संबंधी प्रवचनों, चर्चाओं से ही भरी है । बंगाल में खादी तथा चरखे का गांधीजी को भव्य और आशाप्रद दर्शन हुआ । बहनों, बच्चों, अधिकारियों—सबसे गांधीजी चरखे की और खादी की बात कहे बिना नहीं रहते थे। खादी को वे बेकारी और गरीबी के निवारण का जबरदस्त जरिया मानते थे और इसीसे स्वराज्य मिलेगा, यह वे देश को दिखा देना चाहते थे। विद्यार्थियों से कहा: "मैं क्या तुमसे दिनभर कातने को कहता हूँ? मैं क्या तुम्हें अपने मुख्य धंधे के रूप में चरखा अपनाने को कहता हूँ? तो फिर श्रम-विभाजन के सिद्धान्त का भंग कहाँ हुआ? तुम खाते-पीते हो, उसमें श्रम-विभाजन का सिद्धान्त लागू करते हो क्या?" शान्तिनिकेतन में कहा: "न तो मैं आपसे कविता छोड़ने को कहता हूँ, न संगीत या साहित्य छोड़ने को कहता हूँ—कुछ भी छोड़ने को नहीं कहता । केवल इतना ही चाहता हूँ कि आप अपने इन सब व्यवसायों के उपरान्त आध घंटा कातने का काम और कीजिये।.....चरखा हमारी प्रान्तीयता को मारनेवाला है । ....."अस्पृश्यता तो हिन्दू-धर्म को ही पीड़ित करती है। हिन्दू-मुसलमान के झगड़े समय पाकर मिट जायँगे । परन्तु खादी के बिना समस्त देश दरिद्रता में सड़ता रहेगा । .....हमारे देश में इस निद्रामय रोग का चरखे के सिवा कोई निवारण नहीं कर सकता ।"

पुस्तक के अन्त में चार परिशिष्ट दिये गये हैं, जो इस डायरी की कालावधि में हुई घटनाओं से संबंध रखते हैं और वे गांधीजी के लिखे हुए नवजीवन सें प्रकाशित लेख हैं। एक परिशिष्ट में दक्षिण के अन्त्यजभक्त नन्द की कथा दी गयी है ।

पिछले भागों की तरह इस भाग में भी गांधीजी के थोड़े-से पत्र दिये गये हैं।

इस पुस्तक में संस्कृत के उद्धरण काफी मात्रा में हैं । ये सब ढूँढ़-ढाँढ़कर देने में और आम तौर पर पुस्तक की सामग्री तैयार करने में मेरे मित्र रसिकभाई परीख ने खूब सहायता दी है । बंगला पुस्तक का अनुवाद

श्री मोहनभाई पटेल ने कर दिया है। ढाका संबंधी अल्पाक्षरी का अर्थ और बंगाल की मछलियों संबंधी दो अर्थोंवाले श्लोकों का अर्थ बंगाल के विद्वान् डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार ने बैठा दिया है। इन सबका और जिन-जिन व्यक्तियों ने यह पुस्तक तैयार करने में मदद दी है, उन सबका आभारी हूँ।

[डायरी का हिन्दी का छठा खण्ड जून १९२५ से दिसम्बर १९२५ तक का होगा, जिसमें गांधीजी के कलकत्ता-प्रवास, देशबन्धु दास के अवसान से उत्पन्न स्थिति, कच्छ का प्रवास और कानपुर-कांग्रेस का विवरण रहेगा। यह भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।]

- चन्दुलाल भगुभाई दलाल

अनुक्रम

डायरी

परिशिष्ट:

१. कन्याकुमारी के दर्शन

२. अंत्यज साधु नंद

३. बंगाल प्रलय-निवारण संस्था

४. बंगाल में

"अपने पाप क्षमा करने के लिए मैंने प्रभु से प्रार्थना की; परन्तु नहीं, मैंने ऐसी माँग ही नहीं की, क्योंकि मुझे लगा कि जिस क्षण मुझे ऐसा सद्विचार आया, उसी क्षण उसने मुझे माफ कर दिया था। मैंने प्रार्थना की और उसी क्षण मुझे लगा कि मुझे कुछ माँगना नहीं है, क्योंकि मैं ऐसा कर ही न सका और मुझे पता भी नहीं था कि मैं किस तरह माँगूँ।"[१]

- टॉल्स्टॉय

"परन्तु अब भी मैं क्यों व्यथे प्रयत्न कर रहा हूँ? वह तो यहीं है। उसके बिना कुछ भी चेतन नहीं है। ईश्वर को पहचानना और चेतनवान् बनना दोनों एक ही हैं। ईश्वर ही चेतन है।"[२]

- टॉल्स्टॉय

---

१. देखिए Life of Tolstoy—First Fifty years—By Aylmer Maude—छठा संस्करण, पृष्ठ ६४

२. देखिए टॉल्स्टॉय कृत—How I came to Believe, पृष्ठ ५१ |

२-३-१९२५

पटना के एक भाई को लिखा:

“तुम्हारा पत्र अभी तक मेरे पास पड़ा है। मौलाना मुहम्मदअली के कथन में मुझे कोई आपत्तिजनक बात नहीं दीखती । एक पाँच फुट ऊँचा आदमी दूसरे एक सात फुट ऊँचे मनुष्य से ऊँचाई के सिवा और सब दृष्टि से उच्च कोटि का हो तो भी यह सात फुट का मनुष्य उस पाँच फुटवाले को यह नहीं कह सकता कि मैं तुमसे ऊँचा हूँ! अपने मतानुसार अपने धर्म को सर्वोत्तम माननेवाले मौलाना मेरे जैसे दुनिया में सर्वोत्तम समझे जानेवाले मनुष्य से अपने को सचाई के साथ अधिक अच्छा नहीं कह सकते? मेरा खयाल है, मौलाना ने न्याय-बुद्धि से भेद किया है ।"

फजलीहुसेन को लिखा:

'हिन्दू-मुसलिम-प्रश्न के सिलसिले में आपने अपना नोट मुझे बताने को मौलाना मुहम्मदअली से कहा था; इसके लिए आपका आभारी हूँ । उन्होंनें वह मुझे भेज दिया है। मैंने उसे बार-बार पढ़ा है । पंजाब और बंगाल के मुसलमानों को उनकी संख्या के हिसाब से प्रतिनिधित्व मिले, इसमें आपसे पूरी तरह सहमत हूँ । परन्तु पृथक् निर्वाचक मंडलों सम्बन्धी दलील मैं नहीं समझ सका । जहाँ-जहाँ यह प्रथा जारी की गयी है, वहाँ-वहाँ वह असंतोषकारक सिद्ध हुई मालूम होती है । और यदि आप एक जाति के लिए अलग निर्वाचक मंडल बनायें, तो फिर दूसरी जातियाँ ऐसी माँग करें तो आप उसका विरोध हरगिज नहीं कर सकते; और अन्त में उपजातियाँ भी ऐसी माँग करेंगी । इससे राष्ट्रीयता का नाश ही होगा । मैंने जो प्रस्ताव पेश किया है, उसके बारे में आपने विचार किया है?

“आशा है कि जब मैं आपसे पिछली बार मिला था, उस समय से अब आप अधिक स्वस्थ और शक्तिमान् होंगे । अभिलाषा है कि हम दुबारा और बार-बार मिल सकें ।

“आज तो मैं दिल्ली में हूँ। कल साबरमती के लिए रवाना होऊँगा और वहाँ

से मद्रास जाऊँगा ।”

श्री सरोजिनी नायडू को लिखा:

“राष्ट्रीय पाठशालाएँ भी बन्द करने का यह निर्णय कया है? महाविद्यालय बन्द करने की बात मैं समझ सकता हूँ । परन्तु पाठशालाएँ भी बन्द करने की जरूरत है?

श्री फूलचंद कस्तूरचंद को लिखा:

"शराबी के यहाँ हमें नहीं ही खाना चाहिए, यह न्याय मैं नहीं समझा । खादी न पहननेवाले के यहाँ मैं कहाँ नहीं जाता? तुम सोचते हो वैसा करने से कोई मद्य-निषेध को तुरंत मदद नहीं मिल जाती, हम ऐसी जगह भी जाकर न पीयें, मैं मानता हूँ कि इसमें हमें लाभ है । इस प्रकार व्यवहार न रखें तो हमें जन-समाज का ही त्याग कर देना चाहिए ।"

श्री नरोत्तमलालजी जोशी को लिखा:

"आपका पत्र मैंने बहुत दिन से सँभालकर रखा है। अवकाश मिलेगा तो आपका नाम दिये बिना उसका सार्वजनिक उपयोग भी 'नवजीवन' में करूँगा । ऐसा हो तो मेरी आलोचना ध्यानपूर्वक पढ़ें । प्रयत्न समय पर ही करने की आशा है। आप बहुत लोभी हैं। सब कुछ तुरंत जान लेना चाहते हैं। भविष्य के लिए कुछ नहीं रखते। श्रद्धा को अवकाश नहीं देते । राम-नाम किसी रोजगार-धंधे के बदले में नहीं, परन्तु उसकी शुद्धि के लिए है। कुछ भी करते हुए यह नाम रटा जा सकता है । इसका फल तो श्रद्धालु ही भोग सकता है। अपने शिक्षक के प्रति आपको श्रद्धा न हो तो उससे आप कुछ नहीं पायेंगे । जगह हो तो थोड़े दिन के लिए भी आपको आश्रम में रख लेगा । आपकी इच्छा हो तो व्यवस्थापक को लिखें। गाँवों में तो बहुत-से काम किये जा सकते हैं, यदि आप वहाँ शान्ति पा सकें और शरीर-श्रम करें ।"

श्री मौलाना जफरअली खाँ को लिखा:

"आपका पत्र मिल गया । मेरा खयाल है आप बिना कारण खफा हुए हैं। आप मेरी टिप्पणी फिर से पढ़ेंगे तो आपको मालूम होगा कि वह हानिकारक नहीं । आपके पत्र में लिखी हुई बात सामान्य हित की होने के कारण मैं उसके बारे में 'यंग इंडिया' में चर्चा करना चाहता हूँ । परन्तु मान लीजिए कि मेरी भूल हुई है, तो भी हमें एक-दूसरे की राय को—खासकर जब वह ईमानदारी से हो तब—सहन नहीं करना चाहिए? "

४-३-१९२५

२७ तारीख की रात को दिल्ली पहूँचे । वहाँ रात को शौकतअली के साथ हुई बातें बापू ने पूछ लीं । "आँख के बदले आँख और सिर के बदले सिर लेने का कानून ठीक है; केवल खुदा को माफी देनेवाला पसन्द है ।" इन शब्दों से बापू को बहुत आश्चर्य हुआ । "कुरान में पत्थर से मार डालने की बात हो तब तो उसे स्वीकार करना ही चाहिए।" इस बात से भी बापू को सख्त आघात पहूँचा ।

रामदास को इस बार साथ ले लिया, इस बारे में कहते हैं: "बस, तुझे मेरी सेवा ही करनी है । इससे सब कुछ मिल जायगा। तुम्हें (मुझे सम्बोधन करके) मैंने कहा नहीं कि मैंने सब कुछ पितृ-भक्ति और पितृ-सेवा से ही प्राप्त किया है। छोटे थे, तब वे देहाती सिनेमावाले ('शहर का तमाशा देखो' वाले) चित्र दिखाते । इसमें कावड़ लेकर जानेवाले अवण का चित्र था । इसका मुझ पर वड़ा असर हुआ था। फिर मैंने उसकी सारी कहानी पढ़ी । मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने माँ-बाप की ऐसी सेवा न करूँ? और मैंने ऐसी ही सेवा की है। माँ मुझसे ही पैर दबवाती और मेरे पिता तो मेरे सिवा किसीसे सेवा न लेते । रात को मैं पैर दबाया करता और दबाते-दबाते सो जाता । ऐसा आखिर के दिन तक हुआ । अफीम का पानी भी मुझे ही तैयार करना होता था, अफीम पीने के बाद बादामपाक खाते ।"

३ तारीख को सुबह दिल्ली से निकले । दूसरी तारीख को रात में हकीमजी के यहाँ १०॥ बजे तक कोहाट पर ही चर्चा चली । अनसारी और हकीम ने ऐसी राय दी कि किसी तरह वह न छपे तो अच्छा। मोतीलालजी ने कहा: "ऐसा हरगिज नहीं हो सकता । लोग जानने की जरूर आशा रखेंगे और उन्हें खबर देनी ही चाहिए।" अन्त में यह निश्चय हुआ कि वह छप जाय । परन्तु यह सुझाया गया कि उसमें कुछ फेरबदल किये जायँ। इस फेरबदल के लिए शौकतअली ३ तारीख को सुबह सवाई माधवपुर तक हमारे साथ रहे। बापू ने पहले शौकतअली का बयान सुधार दिया । उसमें से केवल वही वचन निकाले, जो फालतू थे । यह सब उन्होंने स्वीकार किया । अंतिम पैरा जरा बेढंगा था, सो बापु ने दुबारा लिखा । फिर बापू अपने वक्तव्य में सुधार करने लगे। डायर के साथ तुलना और दोषारोपण क्यों करता हूँ, यह पैरा और अन्त में मुसलमान कुछ मिलाकर नुकसान सहनेवाली जाति नहीं, यह वाक्य निकाल देने का शौकतअली ने बड़ा आग्रह किया और बापु ने यह सब निकाल दिया । मैंने इस सब पर सामान्य आपत्ति की । यह बताया कि इतना भी सहन करे, वह आदमी ही ठीक नहीं । परन्तु बापू कहते हैं कि "क्या करें? इसे सुधारने का यह एक ही उपाय है। उसने भी बहुत छोड़ दिया है ।"

बम्बई, ५-३-१९२५

मद्रास जाते हुए, ६-३-१९२५

बाबू जनकधारी प्रसाद को लिखा:

"आपका पत्र इस सारे प्रवास में मेरे साथ-साथ सफर कर रहा है। यह पत्र उस गाड़ी में लिख रहा हूँ, जो मुझे मद्रास ले जा रही है। बेलगाम में किसीका भी दुर्लक्ष करने का मेरा इरादा नहीं था। परन्तु मैं क्या करूँ? निजी बात चीत करने के लिए मुझे एक पल की भी फुरसत नहीं थी। इसलिए मैंने अपने मन को कठोर कर लिया था।

"आप बावले हो गये हैं। ऐसा बनने की जरूरत नहीं। सिर पर आया हुआ काम शक्ति के अनुसार करें और मन को प्रसन्न रखें। निष्ठापूर्वक किया हुआ काम जीवन में इतना ही महत्त्वपूर्ण है। तो फिर चिन्ता किसलिए? आपने मुझे कोई निश्चित प्रश्न नहीं पूछे। परन्तु आपको कुछ पुछना हो तो पूछने में हिचकिचाइए नहीं। विश्वास रखना कि मेरे लिए तो आप जैसे पहले थे, वैसे ही हैं। चंपारन के निष्ठावान् सेवकों की याद मेरे मन में बस गयी है। उनसे अधिक निष्ठावान् कार्यकर्ता मुझे कभी मिले नहीं थे—और न मिलेंगे। ऐसे कार्यकर्ताओं का जत्था आज सारे भारत में होता तो स्वराज्य बहुत दूर न होता।"

वाईकोम पहूँचने से पहले मद्रास तो आता ही है और कोचीन आता है। इसलिए जैसे देव-दर्शन करने से पहले भिक्षुक देवों और दूसरे अनेकों को सन्तोष कराना पड़ता है, वैसे ही मद्रास और कोचीन को पहले संतुष्ट करना था। मद्रास की आम सभा के विषय में यहाँ कुछ नहीं लिखूँगा। श्री श्रीनिवास आयंगार के घर पर एक सज्जन के दर्शन हुए थे, इसका उल्लेख करने योग्य है। श्री श्रीनिवासाचारी नाम के एक डॉक्टर हैं। साठ-एक वर्ष की उम्र है, एक लड़का बड़ा वकील है और दूसरा इंजीनियर है। ये श्रीनिवासाचारी कई वर्ष से नियमित कातनेवाले हैं और नखशिख खादीधारी हैं। गांधीजी के सामने आकर अपना काता हुआ हजारों गज सुन्दर सुत रखा और साथ ही कुछ रुपये भेट किये और बातचीत किये बिना चले गये! श्री राजगोपालाचारी ने इनका परिचय देते हुए कहा था: "मद्रास में बस ये एक हैं। इनकी श्रद्धा कभी कम नहीं हुई और इन्होंने प्रसिद्धि में आने का एक भी काम किया नहीं। सच्चे असहयोगी ये हैं।"

मद्रासियों से ही सुना कि मद्रास की नगरपालिका ने गांधीजी को मानपत्र देने का साहस किया, यह बड़ी बात कही जायगी। छोटे-से उत्तर में गांधीजी ने सदस्यों को भंगी के काम का आनंद और खादी का मंत्र समझाया।

वहाँ से दूसरे दिन कोचीन पहूँचे । रास्ते में पोदनूर स्टेशन पर वाईकोम-सत्याग्रह के लिए लोगों ने घड़ीभर में चंदा करके दो सौ से अधिक रुपया भेट किया ।

शोरनूर स्टेशन पर कोचीन के गुजराती भाइयों के दर्शन हुए और उनका आतिथ्य तभी से शुरू हो गया । कौचीन जाने का तो कोई प्रसंग नहीं था, क्योंकि अस्पृश्यता का प्रश्न वहाँ त्रावणकोर जितना विकट नहीं है । परन्तु इन गुजराती भाइयों के आग्रह के वश होकर गांधीजी वहाँ गये । बड़ी नगरपालिकाओं ने पहल की है तो छोटी नगरपालिकाएँ सम्मान करने को आतुर हों, इसमें आश्चर्य क्या? पिछले सप्ताह में कोचीन और त्रावणकोर को मिलाकर दर्जनभर से अधिक नगरपालिकाओं ने यह लाभ उठाया ।

कोचीन तो पचरंगी शहर है, इसलिए पचरंगी शहर के सारे गुण-अवगुण वहाँ हैं। भारत की ही नहीं, परन्तु बाहर की भी कोई प्रजा वहाँ न हो, सो बात नहीं । सबको साहस-वृत्ति ने और लक्ष्मीवान् बनने की लालसा ने वहाँ खींचा है ।

कोचीन में आम सभा[१] को सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

“आपसे मिल सका, इससे मुझे बहुत आनंद होता है । जब मैंने वाईकोम जाने का निश्चय किया, तब मैंने बहुत नहीं सोचा था कि वहाँ पहूँचने से पहले यहाँ ठहरना संभव या आवश्यक होगा । मैं जानता हूँ कि यह एक ऐतिहासिक शहर है । इसके साथ अनेक स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं । मैं आपसे कहूँ कि वे सभी आनंद देनेवाली हरगिज नहीं थीं ।

“आप समुद्र के किनारे पर रहते हैं। इसलिए यह तो आप जानते हैं कि साहस क्या-क्या कर सकता है। समुद्र में तो साहस का भंडार भरा हुआ है। परन्तु उस साहस की बात मैं आज नहीं करना चाहता । मुझे तो राष्ट्र-जीवन में साहस चाहिए । हम अभी तक अपने ध्येय से बहुत दूर हैं, इसका कारण यह है कि हम साहसशून्य हैं । हिन्दू-धर्म जैसे महान् धर्म के लांछन को खोजने में भी साहस की जरूरत है । जिनमें साहस न हो, वे याथास्थितिकर ही होते हैं । ('सनातनी' के लिए मलयालम भाषा में सुन्दर शब्द इस्तेमाल होता है 'याथास्थितिकर' अर्थात् पहले की स्थिति में ही संतोष माननेवाला) पहले से चली आ रही बातें अच्छी हैं या बुरी, इस बारे में वे पीछे मुड़कर नहीं देखते । परन्तु दक्षिण अफ्रीका में रहकर आने के बाद पिछले पचीस वर्ष से मैं भारत के हिन्दुओं से कह रहा हूँ कि हम एक पाप से पीड़ित हो रहे हैं । यह पाप है अस्पृश्यता । और यहाँ तो उसमें अनुप-गम्यता[२] और जोड़ देनी चाहिए । परन्तु यहाँ मैं पुरातनवादी लोगों के साथ चर्चा करने नहीं

आया । मैं तो यहाँ शान्ति का सन्देश लेकर आया हूँ । इनके सामने अपना मामला पेश करने और यह कहने आया हूँ कि इन दोनों प्रकार के पापों को हिन्दू-धर्म में स्थान नहीं है । मैं यह कहने आया हूँ कि वाईकोम में जो सत्याग्रही अनेक मुसीबतों का सामना कर रहे हैं, वे हिन्दू-धर्म का नाश नहीं करते, बल्कि उसे शुद्ध बनाते हैं। मैं उनकी लड़ाई का हार्द समझाने आया हूँ। और मैं उन्हें यह भी कहने आया हूँ कि कोई चीज खराब हो तो उसे निभाते जाना बुरा काम है।

"आपकी नगरपालिका की ओर से दिये गये मानपत्र में आपने बताया है कि मेरे काम में मुझे आपका समर्थन और सहानुभूति है। आपकी इस सहानुभूति और प्रार्थना से मुझे बहुत आनंद होता है। परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप और आगे बढ़ें और मेरी राय से सहमत हों कि भारत की रोज बढ़ती हुई गरीबी का मुख्य कारण यह है कि वर्ष के बड़े भाग में लोगों के पास कोई काम-धंधा नहीं होता। मैं यह भी चाहता हूँ कि आपको ऐसा महसूस हो कि यदि हम उन्हें चरखा दें—वह चरखा, जो थोड़े ही साल पहले भारत के घर-घर में गूँजता था—तो उन्हें काफी काम-धंधा मिल जायेगा।

"परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है। जब तक हम विदेशी वस्त्र का त्याग नहीं करते, तब तक लाखों घरों में चरखा चले तो भी वह निरर्थक है। इसीलिए देश में घूम-कर मैं लोगों को समझा रहा हूँ कि विदेशी या मिल के कपड़े का इस्तेमाल बंद करना और हाथकती और हाथबुनी खादी पहनना ही सही रास्ता है। आपको, मलाबार में रहनेवालों को तो अधिक कपड़ा भारस्वरूप लगना चाहिए। और मुझे विश्वास है कि मुझे देखकर तो आपमें से बहुतों को ईर्ष्या भी होती होगी। इन गर्मी के दिनों में तो कपड़े जितने थोड़े हों उतना अच्छा। मैं आशा रखता हूँ कि प्रतिष्ठा रखने या संस्कृति दिखाने के लिए बहुत कपड़े पहनने चाहिए, ऐसा आप नहीं मानते होंगे। मनुष्य सुन्दर कपड़ों से सुन्दर नहीं बन जाता, बल्कि सुन्दर काम से सुन्दर बनता है। संस्कृति, संस्कारिता और प्रतिष्ठा का सही अन्दाजा कपड़ों से नहीं, परन्तु चरित्र से लगता है। इसीलिए भारत में जब कोई यह कहते दिखायी देते हैं कि 'खादी के दिन तो चले गये और हमारे बाप-दादा खादी पहनते थे उस जमाने में लौट जाना असम्भव है', तब दुःख से मैं हताश हो जाता हूँ।

"मैं चाहता हूँ कि आप उन्हें उचित प्रत्युत्तर दें। उनसे कहिए कि गरीबी मिटाने का उत्तम उपाय खादी को अपनाना ही है। आपमें से जिनको रंग-बिरंगा और मुलायम कपड़ा चाहिए, उनसे कहता हूँ कि हाथ के काते हुए सूत से हाथ का बुना हुआ कपड़ा आपको जैसा चाहिए वैसा मिल सकता है। मैं आशा रखता हूँ कि कोचीन

में घर-घर चरखा चलने लगे और प्रत्येक व्यक्ति खादी के सिवा और कुछ न पहने, ऐसी स्थिति लाने का आप पूरा प्रयत्न करेंगे।

"हिन्दू-मुसलिम-एकता के बारे में कुछ कहने की जरूरत मैं नहीं देखता। अलीभाइयों में से एक भी यहाँ मौजूद नहीं, इस कमी को आप महसूस करते होंगे। आम तौर पर इन दोनों में से एक तो मेरी यात्राओं में मेरे साथ रहते ही हैं। परन्तु इस बार यह नहीं हो सका। परन्तु इस माथापच्ची से वे बच गये, इसके लिए उन्हें मुबारकबाद देता हूँ।

"इस राज्य में अलग-अलग धर्मों को माननेवाले लोग एक-दूसरे के साथ सहनभूति और मित्रभाव से रहते हैं, यह देखकर मुझे खूब खुशी हुई है। मैं चाहता हूँ कि भारत में और सब जगह भी इसका अनुकरण हो।

"मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि आपके घरों में चरखा और खादी बसाने और हिन्दू-धर्म को अस्पृश्यता के पाप से छुड़वाने लायक बल और बुद्धि वह आपको दे। इस परिस्थिति में रहनेवाली सब जातियाँ आज की तरह हमेशा के लिए संगठित होकर रहें।

"मेरे भाषण को आपने जिस श्रद्धा और धीरज से सुना है, उसके लिए आपका आभार मानता हूँ।"

गुजराती भाइयों ने पाठशाला के मैंदान में १५०० रुपयों की थैली भेट की। इसके लिए उनका आभार मानते हुए गांधीजी ने समझाया कि जिस प्रदेश में लक्ष्मी कमाने जायँ, उस प्रदेश का ऋण चुकाना हमारा धर्म है। यह भी कहा कि जिस साहस में पुण्य नहीं है, वह साहस निरर्थक अथवा हानिकारक है और वाईकोम के सत्याग्रह को जितनी मदद दी जा सके, उतनी दी जाय।

---

१. यह आम सभा ता. ९-३-१९२५ को हुई थी |

२. Unapproachability

१०-३-१९२५

वाईकोम

कोचीन छोड़कर वाईकोम चले। कोचीन जाते और बाद में कोचीन छोड़कर त्रावणकोर की हद में आधा सफर तो नाव में हुआ। पृथ्वी के एक सुन्दर-से-सुन्दर टुकड़े का सौन्दर्य वर्णन करने लगूँ तो किसी अधीर पाठक को ऐसा लगेगा कि मैं यात्रा का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर विस्तार के साथ कर रहा हूँ। परन्तु उसे भी खामोश रहने की जरूरत है। जल और स्थल की अपूर्व व्यवस्था रचकर विधाता ने ऐसी चित्ताकर्षक अल्पनी रची है कि जिस अर्थ में मनुष्य कश्मीर को देखने जाता है, उसी अर्थ में उसे मलाबार भी जाना चाहिए। यहाँ दूर रहकर मुस्कुराते रहने के बजाय समुद्र को पृथ्वी के साथ किल्लोल और दिल्लगी करने की इच्छा हुई है। इस जल-स्थल की क्रीड़ा ने यहाँ की वनस्पति पर भी असर किया है और मनुष्यों पर भी। मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति में लीला और कला है, अपने आसपास उगनेवाले नारियल और ताड़ के वन में से उसने अपने आसपास की लीला के अनुरूप अनेक कलाएँ निर्मित की हैं। अपने घर सजाने और घर का सामान बनाने के लिए मनुष्य प्रकृतिदेवी के दिये हुए साधनों से बाहर गया ही नहीं।

यह सब सौन्दर्य देखते हुए हम वाईकोम की ओर चले। वाईकोम कुछ मील रह गया तो हमारा स्वागत करने केवल हाथों के डाँड़ से चलनेवाली छोटी नावों पर दो-दो की कतार में बँधे हुए नाविक हमें मिले। डाँड़ चलाते हुए उनका गायन, उनके साथ दी जानेवाली ताल और नावों के नाच के अनुरूप नाच करनेवालों का आनंद—यह सब वर्णन करने का यह स्थान नहीं है। इतना कह दूँ कि ये लोग इतने हर्षोन्मत्त होकर हमारे आगबोट के साथ डाँड़ों के जरिये स्पर्श कर रहे थे। और गाते थे, इसलिए कि इनकी जाति की मदद के लिए गांधीजी दौड़ आये थे। कारण, ये खलासी भी अस्पृश्य हैं। इन्हें मंदिरों में जाने की छूट नहीं है। इतना ही नहीं, परंतु मंदिर के आसपास के आम रास्तों से भी इन्हें दूर रहना पड़ता है।

जहाँ विधाता ने प्रसन्न होने में उदारता की सीमा नहीं रखी, वहाँ मनुष्य ने अपने-आप पर ही अप्रसन्न होने में अनुदारता की हद नहीं रखी। यह उल्टा दृश्य दिखाना विधाता को कैसे अच्छा लगा होगा? परंतु यह दृश्य वाईकोम जाकर देखा।

'वाईकोम' के बारे में अखबारों में तो एक वर्ष से समाचार आते हैं। फिर भी कुछ हाल बता दूँ। वाईकोम है तो छोटा-सा गाँव। त्रावणकोर के उत्तरी किनारे पर एक तालुके का ३-४ हजार की बस्ती का एक गाँव है।

परंतु जिस मंदिर के आसपास के रास्तों पर प्रवेश करने की सत्याग्रही लड़ाई लड़ रहे हैं, वह महादेव का मंदिर त्रावणकोर के अत्यंत प्राचीन मंदिरों में से एक है। 'धर्म हमारा सत्त्व है' ऐसे मुद्रालेखवाले इस राज्य में मंदिर तो कई हजार हैं, परंतु उनमें से लगभग डेढ़ हजार की व्यवस्था सरकार के हाथ में है। इन मंदिरों की जायदाद ही कई करोड़ की हो जाती है। डेढ़ हजार में जो ६० अत्यंत प्राचीन मंदिर हैं, उनमें से एक प्रमुख मंदिर 'वाईकोम' का है। इसका काल परशुराम के समय का बताते हैं—यद्यपि यह कहना कठिन है कि मलाबार-त्रावणकोर में परशुराम पर क्या-क्या आरोप नहीं लगाये जाते। इस 'व्याघ्रपादपुरम्' (जिसका अपभ्रंश वाईकोम है) की महिमा बड़ी है, और खूब जात्रा-वात्रा होती है। इसलिए जब कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया, तब इस मंदिर से ही प्रारंभ करने का निश्चय हुआ था।

इन मंदिरों की रचना के बारे में भी दो शब्द कहना जरूरी है। अधिकांश पूर्वाभिमुख होते हैं, 'गर्भगृह' में मूर्ति, मूर्ति के आसपास चौखंडा मंडप—जिसे 'नमस्कार मंडप' कहते हैं, उसके आसपास एक और दीवार और चारों दिशाओं मैं चार दरवाजे। उनके आसपास चारों ओर चार आम रास्ते। इन मंदिरों के पुजारी और कर्ता-धर्ता नाम्बूद्री ब्राह्मण हैं। नाम्बूद्रियों का जोर और दौड़ किसी समय के नागरों के जोर-दौड़ को भुला देनेवाले हैं; फिर भी नागरों की राजनीतिज्ञता इनमें नहीं है। नाम्बूद्री को तो अपना घर भला, अपना संस्कृत का अध्ययन भला या मंदिर भला। इस प्रकार सरकार के साथ इनका सहयोग अजीव है। पचीस-पचीस हजार की आबादी में से एक भी नाम्बूद्री सरकार की नौकरी या दूसरी खानगी नौकरी में भरती नहीं हुआ। अंग्रेजी का स्पर्श भी शायद ही इने-गिनों को होगा। आज भी उनके आचार इतनी कड़ाई से अमल में आ रहे हैं कि उनमें कुछ भी परिवर्तन करते हुए उनके प्राण कंठ में आ जायँ। उनके वेद के ज्ञान के कारण, शौच के नियमों के उनके कड़े पालन के कारण उन्हें स्वाभाविक प्रतिष्ठा मिली हुई है। परन्तु प्रतिष्ठा में सत्ता मिल गयी, इसलिए उसके दुरूपयोग का पार नहीं। इस प्रकार नाम्बूद्री ने मंदिर में बैठे-बैठे प्रतिष्ठा की अस्पृश्यता का एक परकोटा बना लिया है।

जैसे ब्राह्मणों में सबसे श्रेष्ठ नाम्बूद्री, वैसे ही अछूतों में सबसे अच्छे एज्हुआ अथवा थीआ । इसके बाद पारिया, फिर पुलया, फिर कुरवार और फिर कनीकर, शनन वगैरह। अछूतों की कई जातियाँ विद्यमान हैं और नाम्बूद्री की नकल करके थीआ अथवा एज्हुआ भी आज अपने से नीचे के अंत्यजों को अस्पृश्य मानते हैं!

ब्राह्मणों और अछूतों के बीच जो वर्ग है—नायरों वगैरह का, जिसमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आते हैं—उन्हें सवर्ण कहते हैं। अस्पृश्य 'वर्ण' से बाहर हैं। इसलिए वे एक भी जाति में नहीं आ सकते। सभी अन्त्यजों को

मंदिरों में जाने का अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं, मंदिर की दीवार पर अपनी परछाई डालने का भी अधिकार नहीं है। इसलिए मंदिर की आखिरी दीवार के बाहर का जो आम रास्ता हो, उस पर चलने की इन्हें छूट नहीं है।

ये अछूत त्रावणकोर की ४० लाख की आबादी में लगभग १७ लाख हैं। हमारे ढेढ़-भंगी की हालत से इनकी हालत की कल्पना नहीं हो सकती। एज्हुआ अथवा थीआ को तो पहचानना मुश्किल हो जाय। इनमें शिक्षा का पार नहीं—शिक्षा में तो त्रावणकोर राज्य की हिन्दुस्तान के किसी भी भाग से तुलना नहीं हो सकती। इनमें संस्कृत के अनेक पंडित हैं, वकील हैं, बैरिस्टर हैं, डॉक्टर हैं, इंजीनियर हैं। मद्रास हाईकोर्ट का एक जज थीआ है। सबसे नीचे माने जानेवाले अछूत अर्थात् 'नायाडी' लोगों में भी संस्कृत का ज्ञान है, परन्तु नायाडी की दुर्दशा तो अवर्णनीय है। वे अस्पृश्य ही नहीं, अदृश्य हैं। दूर से कोई सवर्ण हिन्दू दिखा कि नायडी को पुकारना पड़ता है कि 'दूर रहिए'। आम तौर पर ये बेचारे पहाड़ों की गुफाओं में पड़े रहते हैं और द्वादशी या अमावस्या के दिन पहाड़ी पर खड़े रहकर चिल्लाते हैं, तब नायर इन्हें अन्न डाल आते हैं।

एज्हुआ और थीओं में सुधार-आन्दोलन बहुत समय से चल रहा है। उनकी जाति के गुरु नारायण स्वामी* हैं। इनके पास लाखों की जायदाद है और इनका आदेश इन लोगों के लिए शास्त्रवाक्य है।

नाम्बूद्री और एज्हुआ के बारे में इतना-सा संक्षिप्त विवेचन करके अब सत्याग्रह पर आऊँ। पिछले साल कुछ कार्यकर्ताओं को इस रास्ते पर जाने नहीं दिया गया, तब उन्होंने सत्याग्रह किया। राज्य-सरकार ने इन्हें जेल में बंद कर दिया। तब से वह चल रहा है।

आज वहाँ यह स्थिति है: चारों दरवाजों के सामने के रास्तों पर सरकार ने लकड़ी की बाड़ लगा रखी है और थोड़ी खुली जगह हो वहाँ पुलिस रोककर खड़ी रहती है। सत्याग्रही बल-प्रयोग नहीं करता, इसलिए बाड़ तोड़कर या पुलिस के साथ गुत्थमगुत्था होकर आगे नहीं जाता और बैठा-बैठा कातता है; और एक-एक टोली छह घंटे वहाँ तपस्या करती है। यह लकड़ी या पुलिस की बाड़ न हो, तब तो सत्याग्रही रास्ते पर चला जाय और गिरफ्तार हो जाय—जैसे एक बार हुआ था। परन्तु इकट्ठे बहुत-से आदमियों को पकड़ने की सरकार की तैयारी नहीं थी। त्रिवेन्द्रम की बड़ी जेल में ३०० से ज्यादा कैदियों के रहने की गुंजाइश नहीं! इसलिए सरकार ने यह बाड़ लगायी।

---

* सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'स्वामी श्री नारायण गुरु' देखें।

नाम्बूद्रियों से भेट

वाइकोम पहूँचकर हाल-चाल पूछ-ताछकर गांधीजी ने पहले उन नाम्बूद्रियों से मिलने का निश्चय किया, जो अछूतों का विरोध कर रहे हैं। गांधीजी को सुझाव दिया गया कि पहले वे विवादग्रस्त रास्ते देख लें। परन्तु उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा: "पहले बातचीत और मशविरा विरोधियों के साथ।" इस मुलाकात के लिए वे तैयार थे, इतना यहाँ बताना चाहिए। वाइकोम के किनारे गांधीजी उतरे और लोगों ने सम्मान किया। वहाँ एक-दो व्यक्तियों ने चिट्ठी भेजी कि इसमें सनातनी शामिल नहीं हैं, यह जरूर जान लें ! इसलिए उनसे मिलने की अनुमति गांधीजी ने माँगी। मंदिर की छाया में, नाम्बूद्रियों के मठ में, झगड़ेवाले मार्गों को पार करके हम गये।

यह बातचीत तो इतनी बढ़िया थी कि पूरी देनी चाहिए। एक किनारे नाम्बूद्री और देवस्थान-विभाग का अधिकारी और जिले का कलक्टर और दूसरे सिरे पर गांधीजी और राजगोपालाचारी बैठे थे। (विरोधी पक्ष की) बातचीत मलयालम में होती थी। एक भाई भाषान्तर करते थे।

गांधीजी ने पहले अपना वक्तव्य समझाया:

"जन्म के कारण आम रास्तों अथवा आम स्थानों पर किसीको न जाने देना क्या न्याय है? इन रास्तों पर चोर जायँ, बदमाश जायँ, पशु जायँ, परन्तु अन्त्यज न जायँ, यह मुझे भयंकर अन्याय लगता है; तो क्या ये अन्त्यज चोरों और बदमाशों से भी बुरे हैं ?"

उत्तर: "हाँ, अवश्य। इनके पूर्वकर्म के कारण इन्हें सजा हुई है।"

गांधीजी: "सजा तो हुई ही है। यह इनके अस्पृश्य पैदा होने में है। परन्तु उनको आपकी यह अतिरिक्त सजा कैसी? ये बदमाश और चोर से बुरे कैसे हुए ?"

उत्तर : "खराब होंगे तभी तो ईश्वर ने इन्हें इस योनि में जन्म दिया होगा न?"

गांधीजी : "परन्तु ईश्वर भले ही सजा दे, ईश्वर से ऊपर होकर हम सजा देनेवाले कौन?"

उत्तर: "हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। ईश्वर इन्हें सजा देने के लिए निमित्त के रूप में हमारा उपयोग करता है!"

चकित होकर गांधीजी बोले: "अच्छा, तो इसे उलट दें। यदि अन्त्यज ही कहें कि आपको सजा देने के लिए हम निमित्त हैं तो?"

उत्तर: "तब तो सयाने आदमी बीच में पड़ें। सयाने आदमी अर्थात् सरकार। आप बीच में पड़ें तो अच्छा। महात्माजी, आप ही इसका निपटारा कर दीजिए। ये हमारा हक छीन लेने की बात करते हैं, यह बात इनसे छुड़वाइए।"

गांधीजी खिलखिलाकर हँसे। "इन्हें रास्ते का इस्तेमाल न करने देने का आपको हक है, इतना तो सिद्ध कर दीजिए! मुझे तो विश्वास है कि इन्हें इस्तेमाल करने का हक है। शास्त्रों में कहीं ऐसा नहीं लिखा कि ये आम रास्ते का उपयोग न करें।"

उत्तर: "मैंने आपको यहाँ आने का निमंत्रण दिया, क्योंकि यह स्थान मेरा है। इसी प्रकार जो रास्ते आज सदियों से हमीं इस्तेमाल करते हैं, वे हमारे हैं।"

गांधीजी: "एक गलत काम होता हो, तो क्या वह इसी कारण सही हो जाता है कि वह सदियों से होता है?"

उत्तर: "परन्तु यह गलत है ही नहीं।"

गांधीजी: "आप ईश्वरीय कोप की बात करते हैं और कहते हैं कि ये लोग चोर और डाकू से भी नीची कक्षा के हैं। इसका निर्णय कौन करे?"

उत्तर: "दूसरी संपत्ति की तरह रास्ते भी हमारी संपत्ति हैं और इनका इस्तेमाल करने का हक हमारा है।"

गांधीजी: "मैं इन लोगों से नहीं कह सकता। मेरा तो यह समझाने का काम है कि आप गलत हैं, क्योंकि आपका ऐसा अधिकार होने के बारे में मेरे और आपके बीच में कोई एक मत नहीं है। दूसरे, आपके ऐसे अधिकार का कोई बचाव नहीं करता। अभी कल रात को ही बनारस के एक शास्त्री की राय मैं पढ़ रहा था। इसमें भी मुझे ऐसी कोई बात मालूम नहीं हुई। आपके और मेरे मन्तव्यों के बीच हिन्द महासागर जितना अंतर है। आप मानते हैं कि मैं बहुत आगे बढ़ गया हूँ। इसलिए मेरी तो सलाह है कि हम काशी के किसी विद्वान् पंडित की

राय लें। हिन्दुओं का एक अति शिक्षित वर्ग एक स्पष्ट खराब बात का उससे भी खराब ढंग से बचाव कर रहा है, यह मुझे बाहर की दुनिया को कहना पड़े, इससे मुझे बहुत दुःख होता है।"

उत्तर: "हम कहते हैं वह गलत है, इसकी हमें प्रतिति करा दीजिए। उसके बाद ही आपको दुःख हो सकता है।"

गांधीजी: "मैं आपको किस तरह प्रतिति कराऊँ? मैं तो इतना कह सकता हूँ कि जो विरोधी पक्ष आपके कथन को गलत बताता है, उससे मैं सहमत हूँ। मैं यह भी कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म जैसा आप कहते हैं वैसा है, तो ऐसे मुद्दे पर निर्णय करने की भारी जिम्मेदारी आप न लीजिए। दीवान साहब क्या कहते हैं, इसकी ओर भी मैं आपका ध्यान दिलाऊँगा। उनकी राय पढ़ने का आज मुझे मौका मिला। यदि इनकी राय का कुछ वजन पड़ता हो तो ये तो कहते हैं कि आप जो कहते हैं वह गलत है, आप काल की प्रगति का सामना कर रहे हैं और वे यह मानते हैं कि आपने जो रवैया अपनाया है, उसका बचाव नहीं हो सकता। और अन्त में सारा जन-समुदाय आपके विरुद्ध होगा। इतने पर भी यदि आप कहें कि 'हम सच्चे हैं और ये लोग गलत हैं', तो मैं तो इतना ही कहूँगा कि मनुष्य को मिली हुई स्वतंत्रता की हद आ गयी है!"

उत्तर: "आपने माना होगा कि इन्हें समझा देना आसान काम है और इसलिए आप यहाँ आये।"

गांधीजी: "नहीं। मैं इसलिए आया कि मेरे खयाल से आपकी मान्यता गलत है।"

एक व्यक्ति: "आपने मानसिक पवित्रता की जो बात की, उससे मुझे आनंद हुआ।"

गांधीजी: "हिन्दू-समाज में जो दलित माने गये हैं, उनकी ओर से बोलने मैं आया हूँ। मैं उन लोगों से कुछ नहीं कहता, क्योंकि मैं उनकी भूल नहीं मानता। हिन्दुत्व का मेरा अर्थ आपसे सर्वथा विरुद्ध है।"

गांधीजी ने बातचीत में 'दलित' शब्द का प्रयोग किया। इस पर एक भाई ने पूछा: "आपने 'दलित' शब्द कैसे इस्तेमाल किया? आप जानते हैं वे किसलिए दलित हैं?"

गांधीजी: "हाँ; जिस कारण डायर ने जलियाँवाला बाग का कत्ल किया था, उसी कारण आप इन लोगों को कुचल रहे हैं।"

एक व्यक्ति: "तब क्या जिन्होंने यह रुढ़ि चलाई, वे डायर थे? शंकराचार्य को आप डायर कहेंगे?"

गांधीजी: "मैं किसी आचार्य को डायर नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूँ कि आप आज डायर की वृत्ति से काम ले रहे हैं। मैं नहीं मानता कि पहले किसी आचार्य ने यह रुढ़ि चलाई होगी और यदि चलाई ही हो तो उसका ज्ञान डायर के जैसा भयंकर होना चाहिए।"

एक व्यक्ति: "परन्तु जो बहुत पहले से चली आती है, उस रुढ़ि को हम कैसे छोड़ें? यह रुढ़ि आचार्यों ने चलाई है। आप कहते हैं कि इसके लिए कोई आधार नहीं। हम कहते हैं कि है।"

गांधीजी: "आपका कहना मैं समझता हूँ। परन्तु हिन्दुत्व में यह सर्वमान्य हो, यह मैं नहीं मानता। आप ज्यादा-से-ज्यादा इसे रिवाज कह सकते हैं। और आपके साथ जो यह चर्चा कर रहा हूँ, इसमें मेरा प्रयत्न आपसे यही कहने का है कि आप किसी रिवाज से न बँध जाइए। आप इस प्रश्न पर कुछ तो बुद्धि से सोचिए!"

उत्तर: "धर्म के मामले में बुद्धि से विचार नहीं हो सकता।"

गांधीजी: "अच्छा, यह रुढ़ि अगर बहुत पहले से हो, तब तो वह सनातन और सर्वत्र होनी चाहिए। परन्तु ऐसा तो है नहीं।"

उत्तर: "रिवाज के बारे में बहुत मत-मतान्तर हैं। एक ही घर में अलग-अलग रिवाज हैं। कोई माधवाचार्य के पंथ के रिवाज पालते हैं और कोई रामानुजाचार्य के।"

गांधीजी: "तो फिर कुछ थोड़े ही मनुष्य जिस रिवाज को मानते हैं, उसके समर्थन में हम बुद्धि की दलील न करें।"

उत्तर: "हम तो किसी पढ़े-लिखे की सलाह मानने को तैयार नहीं। हम तो किसी अवतारी या दैवी व्यक्ति का कहना मानेंगे।"

गांधीजी: "स्थानीय रीवाज बदलने जैसे मामलों में भी ईश्वरीय आदेश चाहिए?"

उत्तर: "यह स्थानीय रीवाज भी शंकराचार्य ने बताया है।" (शंकराचार्य भी डायर थे?)

गांधीजी: "शंकराचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं? उन्होंने ऐसा कहा है कि रास्तों के बारे में ऐसा प्रतिबंध हो?"

उत्तर: "पूजा करने जैसे धार्मिक मामलों में छू न जायँ, इतना अंतर तो वे रखते ही होंगे।"

गांधीजी: “अच्छा, आप शंकराचार्य का प्रमाण देते हैं तो मेरी उसे देखने की इच्छा है। बतायेंगे?”

उत्तर: “हाँ।”

गांधीजी: “और शंकराचार्य के ग्रंथ में कुछ भी प्रमाण न हो तो आप अपना कदम वापस ले लेंगे?”

उत्तर: “प्रमाण जरूर है। आप कदाचित् ऐसा अर्थ करें कि प्रमाण न निकले इससे हमें क्या?”

गांधीजी: “मैं नहीं, कोई बड़ा पंडित कहे तो?”

उत्तर: “यदि रुढ़ि के विरुद्ध ग्रंथ किया जाय तो वह अर्थ हम स्वीकार नहीं करेंगे।”

गांधीजी: “तब इस रुढ़ि के लिए शंकराचार्य का प्रमाण नहीं है, परन्तु आपका अपना प्रमाण है, यह कहिए न? अच्छा, अदालत तय करे कि ये रास्ते इन अन्त्यजों के लिए भी खोल दो; तो?”

उत्तर: “तब हम इन रास्तों का उपयोग नहीं करेंगे और मंदिरों में जो कुछ करते हैं, वह छोड़ देंगे।”

गांधीजी: “मंदिरों में प्रार्थना करना आप छोड़ देंगे?”

राजाजी: “पहले आप एक हद तक लोगों को आने देते थे। फिर सरकार ने दूसरी हद तक आने दिया। किसलिए? यदि आपको सरकार का हुक्म स्वीकार नहीं था तो आपने उसका विरोध क्यों नहीं किया? परन्तु आपने तो हद हटाने का वह हुक्म मान लिया। ऐसे मामलों में हमारी भावनाओं का अतिरेक हो जाने का डर होता है।”

उत्तर: “हम शद्धि-क्रियाएँ करेंगे।”

राजाजी: “तो यह हुआ न कि एक मुसलमान ऐसा कुछ करे तो उस पर ईश्वरीय कोप नहीं उतरता?”

गांधीजी: “मुझे विश्वास हो गया है कि यह मलाबार और मद्रास में लम्बे समय से चले आ रहे रिवाज का परिणाम है। और कहीं भी अनुपगम्यता नहीं है।"

उत्तर: “अस्पृश्यता में एक हद तक अनुपगम्यता आ ही जाती है।”

गांधीजी: “इसलिए एक हद तक आप बुद्धिपूर्वक कहा हुआ स्वीकार करते हैं। परन्तु यों तो आप बुद्धि को वेश्या जैसी बना देते हैं। मैं आप सबसे आदरपूर्वक पूछता हूँ कि ऐसा करके आप जनता की राय के सामने टिक सकेंगे?”

एक वकील: “जनता की कोई राय ही नहीं है।”

गांधीजी: “तो आपका यह कहना है कि लोगों की राय तो पुरी तरह अस्पृश्यता और अनुपगम्यता के पक्ष में ही है? मान लीजिए, ऐसा है। मेरा तो आपसे यह कहना है कि हिन्दुत्व को आप प्राणों से प्यारा मानिए । सारी दुनिया विरोधी बन जाय, तो भी उसका बचाव कीजिए । शंकराचार्य तो प्रमाणशास्त्र की मूर्ति हैं । वे वेद की बात करते हैं और फिर बुद्धि दौड़ाते हैं। ऐसा न कहिए कि लोकमत जैसा कुछ है ही नहीं । हाँ, इतना सही है कि सारी दुनिया की राय आपके विरुद्ध नहीं है। आज तो केवल भारत का लोकमत ही आपके विरुद्ध है । दीवान साहब भी आपके खिलाफ है।”

एक नाम्बूद्री: “दीवान क्या कहते हैं, इसकी मैं परवाह नहीं करता ।'

गांधीजी: “आप इतने आग्रह से अपने विधान पर चिपटे हुए हैं, इसके लिए मुझे आदर होता है। परन्तु आपको चेता देना चाहता हूँ कि आप हिन्दू-धर्म के ट्रस्टी हैं, प्रतिनिधि हैं। देखना, आप हिन्दू-धर्म को जगत् के सामने बदनाम करते हैं।"

उत्तर: “ट्रस्टी के रूप में जिम्मेदारी समझकर ही मैं बोल रहा हूँ।”

गांधीजी: “एक और प्रश्न पूछूँ । आप कहते हैं कि ये लोग बदमाशों और डाकुओं से भी खराब हैं। तो कया ये अपना धर्म छोड़कर मुसलमान या ईसाई हो जायँ तो डाकू, बदमाश नहीं रह जाते ?

इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं था ।

देवस्थान-अधिकारी: (जरा बेहयाई से) “ताजा ईसाइयों को हक नहीं । केवल पुराने ईसाइयों को ही है।”

राजगोपालाचारी: “तब ईश्वर ने जो नियम बनाया है, उसे उलट देने का ईसाइयों और मुसलमानों को हक है?"

एक वकील: "दुनियाभर में कई रिवाज हैं। केवल वाईकोम के रिवाज पर ही क्यों टूट पड़े हैं? दूसरे मन्दिरों के आसपास के रास्ते कालक्रम से लोगों के लिए खोल दिये गये हैं। यहाँ भी समय को अपना काम क्यों नहीं करने दिया जाता? दूसरों की भावनाओं को आघात पहूँचाने का ही नाम अंहिसा है?"

गांधीजी: "हाँ । यदि मैं किसी अनिष्ट से पीड़ित हूँ और इन्हें उसका विश्वास दिलाने के लिए उस अनिष्ट को अनिष्ट कहूँ तो यह कहा जायगा कि मैंने हिंसा की ?"

एक वकील: "सत्याग्रह लोगों के दिल जीत लेने के लिए है । यहाँ जो सत्याग्रह चल रहा है वह इसी प्रकार का है, इस बारे में आपको विश्वास हो गया है?"

गांधीजी: "हाँ। यदि ऐसा न हो तो फिर बताइए कि क्या है?"

वकील: "सभी दरवाजों पर स्वयंसेवक बैठा देने से क्या हेतु पुरा हुआ है? लोगों को कितनी दिक्कत होती है, यह आपको पता है?"

गांधीजी: "नहीं ।"

वकील: "दूसरे दरवाजे छोड़कर इन्होंने एक के आगे ही सत्याग्रह किया हो तो कया ये लोगों के दिल नहीं जीत लेते?"

गांधीजी: "सत्याग्रही अपने-आप पर हिंसा मोल लेकर बैठे हैं-आप पर नहीं। इस धूप में तपना सुखदायी स्थिति है? मेरी पत्नी के मामले में ऐसा ही हुआ था । आपको अफसोस इसलिए होता है कि एक गलत चीज को सही मान बैठ हैं।"

दूसरे वकील: "चांडाल जैसा कोई व्यक्ति नहीं?"

गांधीजी: "है।"

प्र.: "आप पुनर्जन्म को मानते हैं?"

गांधीजी: "हाँ ।"

प्र.: "ये लोग अपना ऐब लेकर पैदा नहीं होते?"

गांधीजी: "आप सचमुच ऐसा कह सकते हैं?"

प्र.: "मेरा हिन्दुत्व मुझे ऐसा नहीं कहने दे सकता?"

गांधीजी: "एक मनुष्य को नीचा समझने की छूट हिन्दुत्व नहीं देता । आप यह कह ही नहीं सकते । मैं यह मानता हूँ कि कर्मों के भेद के कारण जन्मों के भेद हैं। परन्तु इससे आप किसीको नीचा नहीं मान सकते । आपको ठीक लगे तो आप उनसे दूर जा सकते हैं ।"

प्र.: "इस मन्दिर के मामले में हम तो एक कोने में हैं। ये यहाँ क्यों आयें?"

गांधीजी: "आपके मन में गुत्थी है। एक बार आप कहते हैं कि आपने इन्हें निकाल दिया । फिर आप कहते हैं कि आप वहाँ से हट गये। फिर दुबारा आप कहते हैं कि इन्होंने स्वयं ही अपने-आपको निकलने दिया।"

वकील: "सवर्ण हिन्दुओं को इस प्रकार का हक है कि वे रास्तों का खुद ही उपयोग कर सकते हैं।"

अन्त में गांधीजी रास्ते सुझाने लगे । "अच्छा, एक रास्ता बताऊँ । आप समस्त लोकमत को तो मान लेंगे?"

बीच में एक बूढ़ा बोल उठा: "एक-दो सत्याग्रही वकील हैं, उनकी राय नहीं लगे न?"

उत्तर: "मान लेंगे; परन्तु धर्म की बात में लोकमत किस काम का?"

एक वकील: "मान लेंगे, परन्तु यह लोकमत केवल सवर्णों का ही ।"

एक और व्यक्ति: "नहीं, सब सवर्णों का नहीं; केवल मन्दिर में जानेवालों

का ही लिया जाय ।"

गांधीजी: "केवल सवर्णों का मंजूर है । केवल मन्दिर में जानेवालों का लेने में आप न्याय की बात नहीं करते । परन्तु जाइए, केवल सवर्णों का मत लीजिए । यह मत हमारे विरुद्ध हो तो हम मान लें और आपके विरुद्ध हो तो आप न मानें । फिर क्या है?"

वे चुप रहे।

गांधीजी: "अच्छा, एक और शर्त मंजूर है? मुझे नहीं लगता कि शंकराचार्य का प्रमाण है। परन्तु मान लीजिए कि है। फिर भारत के किसी निष्पक्ष पंडित को हम यह प्रमाण बतायें और वह कहे कि यह ठीक नहीं तो?"

उत्तर: "शंकराचार्य का अपना मत नहीं, उन पर हुए भाष्य अथवा टीका में से यह मिलेगा ।"

इस पर गांधीजी ने तीसरा मार्ग सुझाया: "अच्छा, तब तीसरा मार्ग लीजिए।"

परन्तु वे पूरा करते, उससे पहले ही नाम्बूद्री बोले:

"सारे मलाबार की भूमि हमें परशुराम ने लिख दी है, इससे कोई इनकार करता है? फिर भी आप हमसे परशुराम का पट्टा लाने को कहें तो हम कहाँ से लायें ? ऐसा ही हमारा यह हक है। इसके लिए आप प्रमाण और पट्टे माँगें तो कहाँ से लायें?"

इसलिए गांधीजी ने तीसरा मार्ग कहा: "अच्छा, तब हम पंच से फैसला करा लें तो? मैं एक पंडित का नाम दूँ, आप एक दें और दीवान हमारे सरपंच । इनका फैसला हम दोनों को मंजूर?"

उन्होंने कहा कि तीनों पर विचार करेंगे और गांधीजी ने बिदा ली। एक वृद्ध नाम्बूद्रीपाद ने गांधीजी का आभार माना । गांधीजी ने कहा: "आपके जैसे पंडित के लिए एक बात रख जाते हैं — **"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः"** *।

वृद्ध: **"पण्डिताः!** पण्डित अर्थात् वे, जो परमात्मा के साथ एक हो गये हैं। हम कहाँ ऐसे हैं?"

गांधीजी: "मैं चाहता हूँ कि इस एक बात में तो आप ऐसे हो जायँ।"

वाइकोम की सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए गांधीजी बोले:

"खड़े रहकर न बोल सकने के लिए और कुछ मिनट देर से आने के लिए आप सब मुझे माफ करेंगे। देर से आने के लिए मैं आपको इतना विश्वास दिला दूँ कि वह मेरे कारण नहीं हुई। जिस धर्म-कार्य के लिए मैं यहाँ आया हूँ, उसीमें मैं दिनभर लगा हुआ था।

"यहाँ इतने सारे लोग इकट्ठे हुए हैं, इससे मुझे आनंद होता है, क्योंकि मेरे धर्म-कार्य में निहित हेतु सबको बताना मेरे लिए आसान होगा।

"पहले तो मैं उन लोगों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे कल मानपत्र दिए। यह मानपत्र जब पढ़े जा रहे थे, उस समय मुझे एक पत्र मिला था। उसमें मानपत्रों का विरोध किया गया था और बताया गया था कि इसमें जो कुछ लिखा गया है, वह वाइकोम की सारी प्रजा का मत न मानिए। यह विरोध और असहमति मैं

आनन्दपूर्वक स्वीकार करता हूँ। इस पत्र में जो हस्ताक्षर हैं, वही बताते हैं कि ये लोग मानपत्रों में जो लिखा है, उससे सहमत नहीं हैं। इन्होंने बताया कि इनमें पूरे वाइकोम की भावनाएँ नहीं हैं, इससे मुझे आश्चर्य नहीं होता। मैं जानता हूँ कि इस एक अति महत्त्वपूर्ण मामले पर आपमें स्पष्ट मतभेद हैं। जहाँ तक मेरा अपना संबंध है, वहाँ तक मुझे तो ऐसे मानपत्र अच्छे ही नहीं लगते। परन्तु जब मैं उन्हें स्वीकार करता हूँ, तब मुझे बोलने का विषय मिल जाता है और मुँह दर मुँह कहने का अवसर प्राप्त हो जाता है। आज शाम को जो मानपत्र दिया गया, उसके लिए देनेवालों का मैं आभार मानता हूँ। इसमें भी उस कारण का उल्लेख है, जिससे मैं यहाँ आया हूँ।

---

* पूरा श्लोक इस प्रकार है:

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

पंडित समदर्शी ज्ञानवान् होते हैं। गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल के बारे में विद्या और विनय से समपन्न ब्राह्मण की समदृष्टि होती है। (गांधीजी का गीता-शिक्षण, पृ. १७०; गीता अं. ५, श्लोक १८) सं.

"यहाँ अस्पृश्यता और अनुपगम्यता और उसे एक खास ढंग से दूर करने के लिए अपनाये गये सत्याग्रह की बात करने आया हूँ। आप तो जानते हैं कि इस लड़ाई के प्रति शुरू से ही मुझे गहरा आदर है और मेरी सहानुभूति है। यह हो सकता है कि लड़ाई चलानेवालों ने भूलें की हों। परन्तु संसार में कौन ऐसा है, जो भूल नहीं करता? परन्तु मुझे इतना संतोष है कि भूलें हुई हों तो भी वे जान-बूझकर नहीं की गयीं। सत्याग्रह नाम ही सूचित करता है कि यह एक नये प्रकार की नीति है या पुरानी नीति को नये रूप में प्रस्तुत करता है। सत्याग्रह करने के तीन मुद्दों में अस्पृश्यता का प्रश्न एक मुद्दा है। सत्याग्रह में दुःख भोगना होता है —अपने-आप पर दुःख मोल लेना होता है — सामनेवाले पर दुःख लादना नहीं।

"वाइकोम में जो सत्याग्रह चल रहा है, उसमें सत्याग्रहियों की माँग यह है कि मन्दिर के आसपास के रास्तों पर से गुजरने की छूट अस्पृश्यों को और अनुपगम्यों को होनी चाहिए। इस माँग में केवल मानवता है। सब लोगों के लिए जो रास्ता खुला हो, और हिन्दुओं की दृष्टि में सवर्णों के लिए खुला हो, उसे इस्तेमाल करने का हक उन्हें भी होना चाहिए, जिन्हें वर्ण के बाहर माना जाता है और जो अस्पृश्य और अनुपगम्य माने जाते हैं। मेरे नम्र मतानुसार यह माँग स्वाभाविक और न्यायपूर्ण है।

"आप तो जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में लम्बे समय रहकर जब से मैं भारत आया हूँ, तब से अस्पृश्यता के विषय पर मैं स्पष्टता, निर्भयता और खुलकर बोल रहा हूँ। मेरा दावा है कि मैं सनातनी हिन्दू हूँ और शास्त्रों का मैंने अपनी आवश्यकतानुसार अध्ययन किया है। मैं साहसपूर्वक कहता हूँ कि हमारे इस पवित्र देश में अस्पृश्यता और अनुपगम्यता जिस ढंग से पल रही है, उसके लिए हमारे धर्म में स्थान नहीं है। जो हिन्दू धर्मशास्त्री हिन्दू-धर्म को प्राणों से भी प्यारा मानते हैं, उन्हें मैं यह भी कहने की हिम्मत करता हूँ कि उन्हें समझना चाहिए कि प्रत्येक शास्त्र का अर्थ बुद्धिपूर्वक करना चाहिए। बुद्धि, ज्ञान, शिक्षा और तत्त्वज्ञान के इस जमाने में केवल रुढ़ि और सत्ता के बल पर चलनेवाला कोई रिवाज टिक नहीं सकता। मेरी यह राय है कि अस्पृश्यता मानव-धर्म पर और इसलिए हिन्दू-धर्म पर काला दाग है। बुद्धि इसका बचाव कर नहीं सकती। हिन्दू-धर्म के मूल तत्त्वों के साथ इसका मेल नहीं बैठता।

"मैं तीन तत्त्वों का प्रतिपादन करना चाहता हूँ। इनमें से पहला है **सत्यान्नास्ति परो धर्मः**[१] दूसरा है **अहिंसा परमो धर्मः**[२] । यदि हम यह स्वीकार कर लें कि अहिंसा में प्रेम है और अहिंसा ही जीवन का—महान् जीवन का—आधार है तो मैं कहता हूँ कि अस्पृश्यता और सत्य परस्पर विरोधी हैं। तीसरा है **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** अर्थात् सृष्टि में एक ईश्वर ही सत्य है, बाकी सब माया है। और यदि ऐसा हो तो इस महान् तत्त्व के साथ अस्पृश्यता और अनुपगम्यता का मेल बैठता ही नहीं।

---

१. सत्य से बड़ा और कोई धर्म नहीं। मूल श्लोक का पद **नास्ति सत्यात्परो धर्मः** है। (महाभारत शान्तिपर्व १५६—६४)

२. अहिंसा ही बड़ा धर्म है। (महाभारत वनपर्व १९८—६९ वगैरह)

"इसलिए अपने सनातनी मित्रों के साथ चर्चा करने और अपना मामला पेश करने आया हूँ। इनके शुभेच्छापूर्ण नम्र निमंत्रण का आदर कर आज शाम को मैं उनसे मिल आया हूँ। मुझे जो कहना था, वह उन्होंने धीरज और ध्यानपूर्वक सुना और मेरे साथ चर्चा की। उनकी बुद्धि, मानवता और हिन्दुत्व की दृष्टि से इस प्रश्न का विचार करने की मैंने उनसे प्रार्थना की। मुझे खेदपूर्वक बताना चाहिए कि उन पर जो असर डालने की मैंने आशा रखी थी, वह असर मैं डाल नहीं सका।

"परन्तु मैं निराश नहीं हुआ। मेरे शब्दकोष में निराश शब्द ही नहीं है। जब मैं अपने-आप और मानवता के बारे में निराश हो जाऊँगा, तभी मैं निराशा अनुभव करूँगा। परन्तु मुझे ईश्वर के अस्तित्व में श्रद्धा है। हम सब यहाँ इकट्ठे मिले हैं, यह एक हकीकत है और हमारे इतने मतभेद होते हुए भी मानवता मिट नहीं गयी, यह मुझे विश्वास है। जब तक यह सब है, तब तक हमारे मतभेदों का निपटारा होने की संभावना के बारे में मुझे श्रद्धा है। इन मित्रों के सामने खिलाड़ीपन की भावना से मैंने तीन सूचनाएँ रखी हैं। मैंने कहा है कि इन तीन से हम अर्थात् मैं खुद और सत्याग्रही बंध जाते हैं, परन्तु आपको इन्हें स्वीकार करने की छूट है। ये सूचनाएँ स्वीकार करने—प्रयोग के रूप में भी स्वीकार करने—की मैंने इनसे प्रार्थना की है। ऐसा एकतरफा समझौता करने में मैंने आनाकानी नहीं की, क्योंकि मैं मानता हूँ कि सत्य मेरे पक्ष में है।

"यहाँ जो झगड़ा है, उसे उग्र बनाने या बढ़ाने को मैं नहीं आया, बल्कि दोनों पक्षों में सुलह और सद्भाव स्थापित करने आया हूँ। कभी-कभी यह दिखायी जरूर देगा कि मैं लड़ाई कर रहा हूँ। परन्तु तब भी मेरा हेतु लड़ने के लिए लड़ना नहीं होता; परन्तु लड़ाई का अन्त करने या तुरन्त ही सुलह करने का होता है। जब मैंने असहयोग की लड़ाई शुरू की थी, तब प्रत्येक अंग्रेज मित्र ने मुझसे कहा: 'आपका असहयोग ऊपरी है और आप सहयोग के लिए छटपटा रहे हैं।' मैंने स्वीकार किया और कहा: 'आप वही बात कह रहे हैं, जो मेरे मन में है।' आज मेरे सनातनी मित्रों के बारे में भी ऐसा ही है। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया है कि सत्याग्रह की लड़ाई हो तो जरूर रही है; परन्तु वे चाहेंगे तो तुरन्त समेट ली जायगी। खिलाड़ीपन अब उन्हें दिखाना है। उन्हें केवल इतना ध्यान में रखना है कि सत्य का लोप न हो।

"सत्याग्रह की प्रत्येक लड़ाई में कम-से-कम माँग होती है। यहाँ यह माँग है कि रास्ते पर सबको जाने देने की छूट होनी चाहिए। यह माँग बिलकुल सादी है। इस माँग की लड़ाई के पीछे हमारे मन में और कोई हेतु नहीं है। अस्पृश्यता-निवारण के बारे में मेरे विचार हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के और कार्यकर्ताओं के सामने मैंने बार-बार रखे हैं। उनमें वर्णाश्रम धर्म के नाश की कल्पना नहीं की गयी है, उनमें रोटी-बेटी व्यवहार की कल्पना नहीं की गयी है। परन्तु सुसंस्कृत समाज में मानव-मानव के बीच सामान्य सम्बन्ध होने की जरूरत अवश्य कल्पित की गयी है। उनमें यह कल्पना की गयी है कि जो मन्दिर सबके लिए खुले हों, उनमें सब हिन्दुओं को जाने की छूट होनी चाहिए।

"मैं स्वीकार करता हूँ कि इनमें से कोई एक वर्ग—जैसे ब्राह्मण—अपने लिए मन्दिर बनाना चाहता हो और उसमें यह चाहता हो कि अछूत न जा सकें तो ऐसा करने का उसे पूरा हक है। परन्तु ऐसा मन्दिर हो,

जिसमें ब्राह्मण जा सकें तो उसमें न जा सकनेवाला कोई पाँचवाँ वर्ण नहीं हो सकता। हिन्दू-शास्त्रों में ऐसा निषेध करने की बात नहीं है।

"इसी प्रकार सार्वजनिक पाठशालाएँ सबके लिए खुली होनी चाहिए। इसी प्रकार पानी लेने के स्थानों, कुओं, तालाबों, नदियों के बारे में। अस्पृश्यों और अनुपगम्यों के लिए लड़ रहे लोगों की तरफ से यही मेरी माँग है। परन्तु मैं वाईकोम सम्बन्धी स्पष्टीकरण कर लेना चाहता हूँ। मुसलमान और ईसाई जिस रास्ते पर से जा सकते हैं, उस पर होकर जाने का अछूतों को अधिकार है, अभी तो सत्याग्रहियों की इतनी ही माँग है। मन्दिर-प्रवेश की तो बात ही नहीं है। पाठशाला-प्रवेश की उन्हें छूट होनी चाहिए, इसे वे अपना हक मानते हैं। परन्तु अभी तो इसकी भी बात नहीं है। यह जो मैं कह रहा हूँ, वह तो लड़ाई के गर्भ में रही चीज समझाने के लिए ही है।

"परन्तु सत्याग्रह हृदय-परिवर्तन और सुधार पर निर्भर करता है। इसमें दबाव को जरा भी स्थान नहीं है। इसलिए दीवान साहब ने अपने भाषण में जो कहा है, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि यदि ऐसा प्रतीत हुआ और मुझे विश्वास हो गया कि यहाँ के सत्याग्रही अपने धर्म के विरुद्ध जाकर हिंसा या दबाव का आश्रय लेते हैं, तो मैं ऐसे 'लेभगू' सत्याग्रहियों को छोड़ दूँगा। मगर जब तक ये लोग कुछ न करें, तब तक एक नम्र मानव के नाते इन्हें सब तरह की सहायता देने के लिए अपने को बँधा हुआ मानूँगा। इसलिए ब्राह्मणों और ब्राह्मणेतरों से मैं यथाशक्ति आग्रहपूर्वक प्रार्थना करूँगा कि आप सब दृष्टियों से इस लड़ाई का मर्म समझने का प्रयत्न कीजिए और यदि सत्याग्रहियों के साधन शुद्ध और न्यायपूर्ण हों तो आप सत्य और न्याय के पक्ष में रहिए।

"पुलिस-दल और सत्याग्रहियों के बीच के सुखद सम्बन्धों का मैं साक्षी हूँ और इसका मुझे आनन्द है। एक भी तरफ से चिढ़ानेवाले और कटुभाषावाले शब्द काम में लाये बिना सज्जनतापूर्वक लड़ाई किस ढंग से चलाई जा सकती है, यह इन्होंने बताया है।

"मैं जानता हूँ कि पूर्वग्रह एकदम मिट नहीं जाते। अस्पृश्यता बहुत पुराने जमाने से चली आयी भूल है। इसलिए मैंने अपने सत्याग्रही मित्रों से कहा है कि आपको धीरज रखना होगा। धीरज के फल मीठे हैं।* मैं आशा रखता हूँ कि वाईकोम की जनता की राय इनके पक्ष में है। वाईकोम से बाहर की जनता का मत तो इनके पक्ष

में है ही। दुनिया का लोकमत इनके पक्ष में मजबूत बनता जा रहा है। इसलिए सत्याग्रही यदि ठीक बरताव करेंगे, धीरज रखेंगे और जो भी दुःख आन पड़ें, उन्हें सहन कर लेंगे तो अन्त में जीत इन्हींकी है।

"जहाँ तक मैंने समझा है, त्रावणकोर की सरकार दो पक्षों में सन्तुलन रख रही है। मैं देखता हूँ कि यहाँ बैठे हुए सत्याग्रही मित्र अपना सिर हिलाकर इसके साथ अपनी असहमति प्रकट कर रहे हैं। जो हो, परन्तु दोनों पक्ष एकट्ठे बैठें और सरकार की मध्यस्थता के बिना कोई सम्मानपूर्ण निपटारा कर सकें तो जीत आपकी ही है, यह बात निःशंक है। दीवान साहब ने सनातनी मित्रों को बता दिया है कि उनकी राय के अनुसार क्या स्थिति है। उन्होंने इन्हें सलाह दी है कि 'समय को पहचानकर समय के साथ आगे बढ़ो।' मैं आशा रखता हूँ कि मेरे सनातनी मित्र समय को पहचानेंगे और उन्हें जो सच्ची सलाह दी गयी है, उसका अनुसरण करेंगे।

"मैंने यथाशक्ति मदद की है। वे जो चाहें करें। मैंने तो हिन्दू-धर्म को जैसे समझा है, वैसे ही उस पर डटे रहकर चलूँगा। इस दुनिया में मेरा कोई दुश्मन नहीं है। इसलिए हमारे बीच मतभेद होने पर भी मैं तो इन्हें चाहूँगा ही; और प्रभु से प्रार्थना करूँगा कि वह इन्हें सही रास्ते पर चलाये और सही दृष्टि दे; और ये स्वयं समय को पहचानें और अपने इन कुचले हुए भाइयों को न्याय देने के लिए सक्रिय बनें। और मैं प्रभु से यह प्रार्थना भी करता हूँ कि हिन्दू-शास्त्रों को समझने में मैंने भूल की हो और यह समझने में गलती की हो कि मानवता किसमें है तो प्रभु मेरी आँखें खोले और अपनी भूल स्वीकार करने और अपने हिन्दू मित्रों से माफी मांगने की शक्ति मुझे दे।

---

* Time will always be on side of those who wait upon it.

"एक बात कहनी रह जाती है। अस्पृश्यता के बारे में हमारे बीच मतभेद हों या न हों, परन्तु एक और मामले में तो हमारे बीच मतभेद हरगिज नहीं होगा, ऐसी आशा में रखता हूँ। यह बात हमारे देश के गरीबों से सम्बन्ध रखती है। मैं चरखे और खादी के बारे में बात कर रहा हूँ। आपके घरों में चरखा बसाकर और आप सब खादी पहनकर इस देश के अत्यन्त गरीब पुरुषों और स्त्रियों की जेब में थोड़ा भी पैसा डालेंगे तो कहा जायगा कि आपने उनके प्रति अपना फर्ज आदा किया है। यह बात मैं तब तक बार-बार कहनेवाला हूँ, जब तक राव और रंक, वाइसराय और उनके हुजूर सब नखशिखान्त खादीधारी न बन जायँ।

"अब हिन्दू-मुसलिम-एकता के विषय में दो शब्द। इस मामले में आपको भारत के दूसरे प्रांतों को बहुत सिखाना है। त्रावणकोर में सब ऐक्यभाव और मित्रभाव से रहते हैं। मैं आशा रखता हूँ कि आप सबमें विद्यमान यह भाव भारत के दूसरे लोग अपनायेंगे।

"अन्त में मेरी बात शांति से सुनने के लिए मैं आप सबका शुक्रिया आदा करता हूँ और भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह हम सबको सद्बुद्धि दे।"

आश्रम में आकर गांधीजी सत्याग्रहियों से मिले, आश्रम की छोटी-छोटी बातें देखीं, हिसाब की जाँच की और रसोई, भंडार, पाखानों का निरीक्षण किया। प्रत्येक सत्याग्रही से गहरी पूछताछ की और ब्योरेवार हिदायतें दीं। और सवर्णों को प्रचलित रुढ़ि नहीं चाहिए, इस प्रकार की हजारों और लाखों हस्ताक्षरोंवाली अर्जी तैयार करने की आज्ञा दी। इसका तात्कालिक परिणाम रास्ते खुलने में आये या न आये, परन्तु लोक-शिक्षण तो खूब होगा ही, हस्ताक्षर करानेवाले खादी का प्रचार करेंगे और रुढ़ि के विरुद्ध लोकमत प्रबल है, यह बताकर सरकार को मजबूर करेंगे अथवा लज्जित करेंगे।

दूसरे दिन* प्रातःकाल की प्रार्थना में सत्याग्रही के धर्म के बारे में विस्तार से विवेचन किया:

"मुझे अफसोस है कि आपके साथ सम्पूर्ण और सन्तोषकारक बातें किये बिना मुझे आज जाना पड़ेगा। परन्तु इसके सिवा चारा नहीं। मुझे सलाह मिली है कि वाईकोम के अलावा दूसरे स्थानों की स्थिति का भी मुझे आन्दाजा ले लेना चाहिए। मैंने यह सलाह मानी है और मैं देखूँगा। परन्तु अपने अनुभवों पर से मैं ऐसी राय रखने लगा हूँ कि किसी भी आन्दोलन में सफलता बाहर की मदद से नहीं, परन्तु अपने बल से मिलती है। अगर आपमें कुछ न हो या काफी भाग न हो तो मेरे जैसे एक यात्री की हाजिरी से आया हुआ उत्साह कुछ काम नहीं आएगा। परन्तु मैं न आया होता और लोगों में भी उत्साह न होता तो भी यदि आप निष्ठापूर्वक काम करते होते तो कुछ भी हानि न होती। ऐसे काम में तो आपका काम ही उत्साहप्रेरक सिद्ध होता। इसीलिए कहता हूँ कि मैं यहाँ अधिक समय रुक सकता तो अधिक लाभ होता। परन्तु जो मित्र यहाँ मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं, उनकी अवहेलना मैं नहीं कर सकता।

---

* ता. ११-३-१९२५

"आपकी तरफ से मेरी क्या अपेक्षा है, वह आपको संक्षेप में कहूँगा।

"आप इस लड़ाई में से राजनैतिक तत्त्व निकाल देना। इससे मैं इनकार नहीं करता कि इस लड़ाई का कुछ-न-कुछ राजनैतिक परिणाम आएगा। परन्तु स्वयं आपको इसके साथ कोई वास्ता न हो। अगर आप ऐसी किसी झंझट में पड़ेंगे तो उल्टे रास्ते लग जायँगे और लड़ाई जब विकराल रूप धारण करेगी, तब उसमें टिक नहीं सकेंगे।

"इसीलिए आपको घबराहट होती हो तो भी इस लड़ाई का सच्चा स्वरूप आपको समझाने के लिए उत्सुक हूँ। हिन्दुओं के लिए यह लड़ाई अत्यंत धार्मिक है। हम हिन्दुत्व का काला कलंक धो डालने के लिए प्रयत्नशील हैं। जिस पूर्वग्रह के विरुद्ध हमें लड़ना है, वह सदियों पुराना है। वाईकोम में अस्पृश्यों के लिए सार्वजनिक रास्ते खुले कराने की हमारी लड़ाई तो तुलना में गौण है। यदि लड़ाई का इतना ही मुद्दा होता, तो मैं इस पंचायत में पड़ता ही नहीं। इसलिए अगर आप मानते हों कि यह मुद्दा निपटते ही लड़ाई पूरी हुई तो आप बिलकुल भूल कर रहे हैं। रास्ता तो खुलना ही चाहिए। हमें इसे खुलवाना ही है। परन्तु यह तो केवल शुरुआत ही है। अंत तो तब आया कहा जायगा, जब सारे त्रावनकोर राज्य में ऐसे तमाम रास्ते सबके लिए खुल जायँगे। इतना ही नहीं, परन्तु अस्पृश्यों और अनुपगम्यों के सब प्रकार के दुःख दूर हो जायँगे।

"इसके लिए भारी त्याग करना पड़ेगा, क्योंकि वह सब करने में हमें विरोधी पक्ष के प्रति हिंसा का मार्ग नहीं अपनाना है। हिंसा से हमें उनका हृदय-परिवर्तन नहीं कराना है। यह समझ लेना कि अगर धार्मिक मामलों में हम इस नीति को अपनायेंगे तो हम मर ही गये। इसलिए केवल अहिंसा से, केवल स्वयं सहन करके हमें यह लड़ाई चलानी है। सत्याग्रह का यही अर्थ है। प्रश्न यह है कि इस लड़ाई में कोई दुःख आ पड़े, उसे सहन करने की और सहन करते-करते भी अपने प्रति-पक्षी के प्रति आपके मन में जरा भी कड़वाहट पैदा न हो, इस प्रकार की शक्ति आपमें है या नहीं? मैं तो कहूँगा कि आप अपने प्रतिस्पर्धी के प्रति प्रेम दिखायें।

"परन्तु यह शक्ति अपने-आप नहीं आती। यह तभी हो सकता है, जब जितने प्रामाणिक आप अपने हेतु मानते हैं, उतने ही उनके हेतु भी प्रामाणिक समझें। मैं जानता हूँ कि इस तरह मानना कठिन है। मैं स्वीकार करता हूँ कि कल अपने सनातनी मित्रों के साथ जब चर्चा कर रहा था, तब ऐसा मानना मेरे लिए भी कठिन था। मैं स्वीकार करता हूँ कि चर्चा में स्वार्थ निहित था। मैंने उनसे यह कहा और यह भी कहा कि आपके हेतुओं की प्रामाणिकता की मैं कद्र करता हूँ। कल और आज इस बारे में विचार करते हुए मैंने अपने-आपसे पूछा कि

इसमें उनका क्या स्वार्थ अथवा निजी लाभ हो सकता है? यह सही है कि उन्हें भी अपने हेतु पूरे करने होते हैं। परन्तु यह तो हमारी बात भी है। फर्क सिर्फ इतना है कि हम यह मानते हैं कि हमारा हेतु शुद्ध है और इसलिए वह निःस्वार्थ है।

"परन्तु ऐसे मामले में यह निर्णय कौन करे कि अमुक जगह स्वार्थ शुरू होता है और अमुक स्थान पर खत्म होता है। निःस्वार्थता कभी-कभी शुद्ध स्वार्थ का स्वरूप ले सकती है। यह मैं महज दलील के लिए नहीं कहता, परन्तु मुझे जो लगता है, वह कहता हूँ। मैं इन मित्रों के दृष्टिबिन्दु से विचार करता हूँ—अपने दृष्टिकोण से नहीं। मैं न होता तो कल इन लोगों ने जिस ढंग से मेरे साथ बात की, उस तरह से न करते। और हम उनकी दृष्टि से विचार करें तो तुरंत ही हमें उनके दृष्टिबिन्दु की कल्पना हो जाय। मैं जानता हूँ कि ऐसा करने में हमें अपने-आपको भूल जाना पड़ेगा। ऐसा करना बहुत कठिन भी है। फिर भी सत्याग्रही के लिए ऐसा करना जरूरी है। हम प्रतिपक्षी के दृष्टिबिन्दु से विचार करें तो दुनिया के पौन भाग के दुःख और गलतफहमियाँ दूर हो जायँ। हम या तो उनके मत के साथ तुरंत ही मिल जायँ या उन्हें जो कहना हो, उसे समझें। हमारे इस मामले में हमारा ध्येय उनसे भिन्न है, इसलिए हमारा मिलना तो होगा ही नहीं। ये लोग जो कहते हैं, वही वे मानते हैं, इतना हमें स्वीकार करना चाहिए। वे यह कहते हैं कि हम अछूतों के लिए यह रास्ता खुलवाना नहीं चाहते। उनका स्वार्थ या अज्ञान उन्हें ऐसा कहने को प्रेरित करता है।

"हम यह मानते हैं कि ऐसा कहना गलत है। इसलिए हमारा यह धर्म हो जाता है कि उन्हें यह समझायें कि जो वे कहते हैं, वह गलत है। और यह स्वयं दुःख भोगकर करें। अनुभव से मुझे मालूम हुआ है कि जहाँ पूर्वग्रह गहरा हो, वहाँ बुद्धि काम नहीं करती। इसीलिए कहता हूँ कि स्वयं दुःख भोगेंगे तो ही उनकी आँखें खुलेंगी और हम उनके अन्तस् तक पहुंच सकेंगे। हमारे कृत्य में जबरदस्ती का अंश भी नहीं होना चाहिए। इसलिए हमें अधीर नहीं होना चाहिए।

"हम जो उपाय आजमाना चाहें, उसमें हमारी पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। अभी हम जो उपाय काम में लेते हैं, वह यह है कि हम चारों तरफ की बाड़ तक जायँ, वहाँ बैठकर सतत कातें और ऐसा करके रास्ते खुलवायें । मैं जानता हूँ कि यह बहुत कठिन और धीमी क्रिया है। परन्तु आपको सत्याग्रह की शक्ति में श्रद्धा हो तो यह दुःख और यातना सहन करने में आपको आनंद आना चाहिए और रोज-रोज इस तेज धूप में बैठने में आपको असुख नहीं लगना चाहिए । यदि आपकी साध्य; साधन और ईश्वर में श्रद्धा होगी तो यह धधकता हुआ सुर्य

आपके लिए शीतल हो जायगा । आपको थकावट लगनी नहीं चाहिए, ऊबना नहीं चाहिए और चिढ़ना नहीं चाहिए ।

"हिन्दू-धर्म में घुसे हुए इस पाप को धोने के लिए आपका यह तप प्रमाण में कुछे नहीं है । मैं आपको इस लड़ाई के सिपाही मानता हूँ । आपमें से प्रत्येक इसके बारे में बुद्धिपूर्वक विचार कर सके, यह संभव नहीं है । आप इस आश्रम में आकर रहे हैं, क्योंकि आपको इसके व्यवस्थापकों में श्रद्धा है । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि आपको मुझमें श्रद्धा है, क्योंकि मुझे व्यवस्था करना आता ही नहीं । मैं तो फकत इसके ध्येय और सामान्य निर्देशों के बारे में ही मार्गदर्शन कर सकता हूँ । इसलिए आपका विश्वास तो उसी पर होना चाहिए, जो व्यवस्था करता हो । इस मामले में पसन्द आपको करनी है । परन्तु जब आप एक बार पसन्द कर लेते हैं अ आश्रम में आ जाते हैं, फिर यह तय करने का काम आपका नहीं कि यह करना चाहिए और यह नहीं करना चाहिए । यदि हमें एक महान् प्रजा बनना हो तो समय-समय पर आपको जो सुचनाएँ दी जायँ उनका आपको पालन करना चाहिए । ऐसा करें तो ही राजनैतिक या धार्मिक जीवन बनाया जा सकता है। आपने अपने लिए कुछ सिद्धान्त निश्चित किये होंगे और तदनुसार ही आप यहाँ आये होंगे ।

"जो आश्रम में ही रहकर काम करते हैं, वे भी बाड़ के सामने जाकर बैठनेवालों के बराबर ही काम करते हैं। संस्था का प्रत्येक अंग दूसरे अंगों जितना ही महत्त्वपूर्ण है । इसलिए संस्था में सफाई का काम बाड़ के सामने बैठकर कातने जितना ही महत्त्व का है। और यदि यहाँ पाखानों और मैंदान वगैरह की सफाई का काम कातने से अधिक अरुचिकर हो तो यह काम कातने से अधिक महत्त्व का माना जाना चाहिए । आपको अपना एक क्षण भी निरर्थक बातों में या निरर्थक जिज्ञासा तृप्त करने में नहीं खोना चाहिए । आपके सामने जो काम हो, उसीमें लगे रहना चाहिए। हममें से प्रत्येक व्यक्ति यदि इस तरह चले तो आपको मालूम होगा कि काम करने में ही असली आनंद है।

"इस जगह पर जो भी चीज-वस्तु है, उसे आप अपनी ही समझें और लेशमात्र दुरुपयोग न हो, इसका खयाल रखें । अनाज के एक कण अथवा कागज के एक टुकड़े का भी अपव्यय नहीं होना चाहिए । यही बात आपके समय के बारे में है। समय हमारी सम्पत्ति नहीं है। वह देश की सम्पत्ति है। हम तो उसका उपयोग करनेवाले ट्रस्टी ही हैं । मैं जानता हूँ कि यह सब आपको मुश्किल लगेगा । मैं कहता हूँ कि अरुचिकर भी होगा । परन्तु इन सबका कोई और अर्थ लगाना या और किसी तरह आपसे कहना संभव नहीं, क्योंकि यदि मैं यह कहकर कि यह सब तो सभी जगह होता है, अपने को या आपको धोखा दूँ तो ठीक न होगा ।

"हमारे धर्म में बहुत सड़ांध फैल गयी है । एक प्रजा के रूप में हम आलसी बन गये हैं। हमें समय का भी भान नहीं रहा । हमारे कृत्य स्वार्थप्रेरित होते हैं। हमारे सर्वोच्च नेताओं में परस्पर ईर्ष्या भरी हुई है। हम एक-दूसरे के प्रति असहिष्णु हैं। इन सब दोषों की तरफ अगर मैं आपका ध्यान न खींचूँ तो उन्हें छोड़ना संभव नहीं होगा । सहन करने में सत्य की निर्दय खोज और अन्त में उस तक पहूँचने का निश्चय समाया हुआ है। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि आप इस बात का खयाल रखें कि आप क्या करते हैं। यदि आपने खयाल रखा हो तो आपका मार्ग सरल बनेगा । सरल इसलिए कि आप कठिनाइयों में आनंद अनुभव करेंगे और जब दूसरे सब निराश हो जायँगे, तब आप आशा में हँसते होंगे ।

"हमारी धार्मिक पुस्तकों में कवियों ने दृष्टान्त दिये हैं । उनमें मेरी आस्था है। जब सुधन्वा को उबलते हुए तेल में डाला गया होगा तब वह हँसता रहा, इस बात को सचमुच सही मानता हूँ, क्योंकि इसे तो ऐसे तेल में तले जाने की अपेक्षा अपने करतार को भूल जाना अधिक कष्टदायक था । हममें यह सुधन्वा-वृत्ति न हो तो इस लड़ाई में भी थोड़े अंश में ऐसा ही हो सकता है ।

"मुझे जो कहना था, वह मैंने कह दिया है । आपको कुछ प्रश्न पूछने हों तो पूछ सकते हैं। मैं उनके उत्तर दूँगा ।"

प्र.: "इस तरह कब तक चलाया जाय?"

गांधीजी: "लड़ाई तो थोड़े दिन चल सकती है और हमेशा भी चल सकती है । जब मैंने दक्षिण अफ्रीका में लड़ाई छेड़ी, तब मेरा खयाल था कि एकाध महीने में पूरी हो जायगी । परन्तु वह तो पुरे आठ वर्ष चली थी!"

प्र.: "हममें से प्रत्येक व्यक्ति को इस सत्याग्रह की लड़ाई में कूदना है?"

गांधीजी: "जितनों की जरूरत हो, उन सबको अवश्य यहाँ रहना है। और जितने अधिक हों, उतना अच्छा । क्योंकि यहाँ का जीवन तो आपके लिए बनने का काल है। निःस्वार्थता एक प्रकार से एक तरह का अति शुद्ध स्वार्थ है। आप यहाँ अपने-आपके लिए ही आये हैं। आप यहाँ विकास कर रहे हैं और शिक्षा पा रहे हैं। इसमें कितना समय जाता है, यह सोचने की बात ही नहीं है। फिर भी आप जायँ तो कोई सबल कारण हो तो ही जायँ और मंत्री से पूछकर जायँ।"

प्र.: "हमें यह मानना है कि हमारे दूसरे कर्तव्य हमें पूरी तरह छोड़कर और भूलकर यहाँ रहना है? या इसके लिए थोड़े समय जा सकते हैं और वापस आ सकते हैं ?"

गांधीजी: "यह प्रश्न मैं दूसरी तरह रखना चाहता हूँ। जिसे कोई अपना फर्ज समझता है, उसे छोड़कर किसीको यहाँ नहीं आना है। मिसाल के लिए, किसीके अंधे माँ-बाप हों और उनका वह एक ही आसरा हो तो उसके यहाँ आने की बात ही नहीं हो सकती। यदि वह आये तो वह न अपने-आपका कल्याण करता है, न देश का कल्याण करता है। अपने अंधे माँ-बाप की देखभाल रखने में ही उसकी सेवा समाप्त हुई है। इसलिए आप सब जो यहाँ आये हैं, वे यह समझकर हो आये हैं कि आपको दूसरे कामों से बचाया जा सका है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरी जगह जाने के लिए आपको यहाँ से किसी दिन मुक्त किया ही नहीं जा सकता। परन्तु इसका निर्णय आप नहीं, परन्तु मंत्री कर सकता है। फिर यह भी हो सकता है कि आप जब यहाँ आये, तब आपको कोई मुश्किल दिखायी नहीं दी थी, परन्तु आने के बाद अचानक आपको ऐसा लगे कि कुछ कठिनाइयाँ पैदा हो गयी हैं। ऐसे हालत में मेरी तो सलाह यह है कि यदि आपका फर्ज यहाँ रहने का हो तो आपको यह फर्ज नहीं छोड़ देना चाहिए—फिर भले ही घर पर बाप या पत्नी मृत्युशय्या पर ही हो। ऐसा हो, तब धर्म-संकट पैदा हो जाता है। परन्तु हमारा मार्ग तो सरल है। आपका स्वधर्म तो यह है कि आपको यहाँ रहना चाहिए; और यदि मंत्री इस निर्णय पर पहूँचें कि आपको मुक्त नहीं किया जा सकता, तो आपकी पत्नी या माता-पिता को भी जो आन पड़े, उसे सहन करना चाहिए, यह मानकर आपको सन्तोष करना चाहिए। जिन्दगी ऐसी ही लड़ाइयों से भरी हुई है।"

प्र.: "सनातनी तो ढीले होते ही नहीं। वे कब तक हमें तपायेंगे?"

गांधीजी: "यह दृष्टि ही गलत है। इस दृष्टि से हम इस प्रश्न को हल नहीं कर सकते। आप सब यहाँ अपनी उन्नति के लिए, आत्मशुद्धि के लिए हैं, इसलिए आपकी तपश्चर्या जैसे बढ़ती जाय, वैसे आपको आनंद होना चाहिए। सामनेवालों को पश्चात्ताप होता है या नहीं, इसका विचार ही न करो। इतना विश्वास रखो कि इस रुढ़ि की दीवार किसी दिन जरूर टूटेगी; फिर वह आज टूटे या कल, इसकी आपको कोई परवाह नहीं होनी चाहिए। तब तक आप उस पर एकचित्त से प्रहार चलाते ही रहें। परन्तु आपको इतना विश्वास जरूर दिला दूँ कि आज आप जो उपाय कर रहे हों, उससे अधिक त्वरित गतिवाला और कोई उपाय नहीं है ! सत्याग्रह का ढंग बदल दें, परन्तु मूल सत्याग्रह तो जारी ही रहे, यद्यपि आजतो प्रचलित तरीका भी बदलने का मेरा विचार नहीं है। परन्तु आज जोतपश्चर्या कर रहे हो, वह साध्य और साधन दोनों है, मैं चाहता हूँ कि आप यह समझें ।"

प्र.: "आजकल हम प्रत्येक द्वार पर तीन-चार आदमी भेजते हैं, उसके बजाय पचास भेजें तो?"

गांधीजी: "आज नहीं। इस तरह जल्दी में आम नहीं पकते। हम ऐसा करके न चाहते हुए भी कदाचित् अपनी प्रवृत्ति में हिंसा ले आयेंगे। यह संभव है; परन्तु आज संभव नहीं, इष्ट भी नहीं। इसके दो कारण हैं और वे दोनों निर्णयात्मक हैं। एक तो सत्याग्रह का अर्थ समझने और उसका उपयोग करने के मामले में हम सब अभी नये-नये हैं। आपमें से कोई इसका निष्णात नहीं है। इसलिए इन्हें और आपको बहुत सावधानी से चलना है। अत: मुझे तो ऐसा लगता है कि बड़ी संख्या भेजने से गलतफहमी पैदा होने का डर है।

"दूसरे, आपके पास काफी संख्या में स्वयंसेवक नहीं हैं। और मैं तो कहता आया हूँ कि काफी मात्रा में बुनियादी काम असल में हुआ ही नहीं है। अभी क्षेत्र साफ करने का बहुत काम बाकी है। आप कहते हैं कि लोकमत आपके पक्ष में है। मैं मानता हूँ कि कुछ अंश में यह सच है। परन्तु आप यह सिद्ध नहीं कर सके कि वह आपके ही पक्ष में है। यह सिद्ध करने के लिए बड़ा संगठन चाहिए। ऐसे संगठन का कोई चिह्न मैं नहीं देखता-- यहाँ, अन्यत्र या सारे भारत में। आपने तो नींव ही डाली है, तामीर सारी बाकी है। वह पूरी होगी, तभी आपको पता लगेगा कि लोकमत आपके पक्ष में है। परन्तु यदि आप जरूरत से ज्यादा जल्दी से काम लेंगे तो लोकमत आपके विरुद्ध जायगा। इसलिए जान लीजिये कि आपने अभी तो शुरुआत ही की है।

"मैं यदि आपके बीच रहता होऊँ तो यहाँ दूसरी कई प्रवृत्तियाँ आरंभ करूँ। उदाहरण के लिए, आपको हिन्दी नहीं आती। क्या यह दयाजनक नहीं है? मैं यह निश्चय करके काम करूँ कि तीन मास में सब हिन्दी जानने लगें। आपने स्वच्छता और स्वास्थ्य-रक्षा का अध्ययन कहाँ किया है? किया हो तो आपके पाखाने आदर्श हों और आप त्रावणकोर के लिए मिसाल कायम करें, सारी एज्डुआ और पारिया जाति को स्वच्छ बना दें। मैं तो संस्कृत की पढ़ाई भी जारी करूँ और विरोधी क्या कहना चाहते हैं, उसका सुक्ष्म अध्ययन कराऊँ। इतने दिनों में तो आपको ढेर सारा सूत कात डालना चाहिए था और आपमें से बहुत सारे बुनकर बन जाने चाहिए थे—ताकि आप अपने पेट के लायक तो आश्रम को कमाकर दे ही देते। आप ऐसा जीवन बिताने लग जाइए कि आपको देखकर सब आपकी तरफ आकर्षित हों, आपका हिसाब चाँदनी जैंसा साफ हो और आपकी मदद करने के लिए राहचलते लोगों का भी मन हो जाय। मैं आपके लिए सहायता प्राप्त करता हूँ, परन्तु इसमें मुझे रस नहीं है, यह आपसे कह दूँ। आप हो सके तो वाईकोम से ही और न हो सके तो त्रावणकोर से ही अपनी जरूरत के लायक जुटा लें और ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि बाहर की सहायता पर कभी आधार न रखें। आपके मन ऐसी स्थिति में पहूँच जाने चाहिए कि आप प्रसन्नता से कहें कि 'वाईकोम को यह प्रवृत्ति चाहिए तो

वाईकोम हमारा निभाव करे, नहीं चाहिए तो भले ही हमें भूखों मरने दे ।' आपको ऐसी सलाह दे रहा हूँ, क्योंकि मैंने ऐसा ही किया है। चम्पारन या खेड़ा की लड़ाई अथवा अहमदाबाद के मिल-मजदूरों की लड़ाई के लिए बाहर के प्रान्तों से कोई मदद नहीं माँगी गयी। दक्षिण अफ्रीका में जब लड़ाई खूब जोर से चल रही थी, तब मुझे रुपये की कोई जरूरत नहीं हुई थी । रुपये आये, तब तीन-चार लाख शेष लेकर मैं भारत आया । आज आपको मिलती है उससे मुझे बहुत थोड़ी मदद मिली है, ऐसे दिन भी मैं याद कर सकता हूँ । उस समय 'महात्मा' पद का अपमान मुझे मिला नहीं था। 'महात्मा' तो मैं यहाँ आने के पश्चात् कहलाया । परन्तु अब मुझे वे दिन याद आ रहे हैं, जब मुझे आपकी अपेक्षा बहुत थोड़ी सहायता मिलती थी । परन्तु हमारे पास एक ऐसी चीज थी, जो आपके पास नहीं है—सत्य में और हमारी लड़ाई की यथार्थता में संपूर्ण श्रद्धा । आपको भी जब सत्य में, आपकी लड़ाई में और आपके साधनों में पुरी श्रद्धा हो जायगी, तब आप भी बाहर की तमाम मदद छोड़ देंगे और कहेंगे कि यह लड़ाई जीतेंगे या लड़ते-लड़ते मर जायँगे । ऐसा करोगे तो सिक्खों ने गुरु के बाग के सिलसिले में जितना कष्ट सहन किया, उससे भी अधिक आपका कष्ट-सहन माना जायगा। तुलना की दृष्टि से वह कष्ट-सहन आषके कष्ट-सहन से कम महत्त्व का था । इसलिए जब आपको लगेगा कि सत्य आपकी तरफ है, तब आपको अपने में रहनेवाली अग्नि मिल जायगी और काम करने के लिए समय भी कम पड़ेगा । इसलिए अभी तुरंत तो अधिक सैनिक भेजने का कोई तेज कदम मत उठाइए । उलटे, आपको अपच न हो जाय, इसके लिए अभी जो काम करते हैं, वही करते रहिए ।"

प्र.: "उपवास करें तो? "

गांधीजी: "बाड़ के आगे उपवास करने का कोई अर्थ नहीं है । हाँ, अपने-आपके विरुद्ध अथवा आपकी अपनी पवित्रता के लिए कर सकते हैं। परन्तु ये तो दो दिन के, पाँच दिन के; सप्ताहभर के हो सकते हैं । अथवा सप्ताह में एक दिन या एक समय के हो सकते हैं। परंतु वह लोगों को दिखाने को न हों । किसीके विरुद्ध करने का तो नाम ही नहीं लेना ।"

प्र.: "मान लीजिए, किसीको ऐसा लगा कि जब तक यह अन्याय जारी है, तब तक जीना व्यर्थ है और इसलिए उपवास करना है। ऐसों को उपवास न करने देने में अन्याय नहीं है?"

इस समय सैनिकों ने बाहर से मदद लेने में अप्रसन्नता बतायी । ३७ आदमियों ने केरल द्वारा बाहर से आनेवाली मदद न लेने का निर्णय प्रकट किया ।

गांधीजी: "अगर आपने यह फैसला गुस्से में किया हो तो यह खराब है । मगर शुद्धि के लिए किया है, तो ठीक है। आपको बाहर से सहायता न लेनी हो तो आप ऐसा निर्णय जरूर कर सकते हैं । परन्तु इसका ढिंढोरा पीटने की आवश्यकता नहीं है ।"

राजाजी: "मौत आये अथवा शरीर को भारी हानि पहूँचे, तब तक इस तरह काम करने दिया जाय?"

गांधीजी: "इन लोगों को ऐसा करने की सलाह मैं नहीं दूँगा । आपको ऐसा नहीं करना चाहिए, जिससे आपको खिलाने के लिए लोगों की दयावृत्ति को उत्तेजना मिले । शर्त इतनी ही है कि केरल में मदद न मिले तो लड़ाई वापस लेकर समेट ली जाय ।"

प्र.: "हममें से कोई मर जाय तो?"

गांधीजी: "आप किसीमें दया उत्पन्न करने के लिए भूखों मर जायँ तो आपको मर जाने देने की मैं लोगों को सलाह दूँगा । इस तरह मरना मूर्खता है, पाप है, अपराध है । स्थायी अनशन तो कोई विरला ही कर सकता है। यह हम-आप जैसे नहीं कर सकते । इसके लिए अपार शक्ति चाहिए। यह अनशन ईश्वर के प्रति हो सकता है, मनुष्य के प्रति नहीं । और इस बारे में दुनिया को बताने की बात हो ही नहीं सकती । आप किसी गुफा में बन्द होकर ईश्वर से कहें कि 'अब या तो मैं मुर्ख हूँ अथवा तू मुझे सताता है । बचाना हो तो बचा, मारना हो तो मार ।' "

क्वीलोन

रात को नाव द्वारा रवाना हुए और सबेरे क्वीलोन पहूँचे ।* क्वीलोन त्रावणकोर के चार-पाँच बड़े शहरों में से एक है । अहमदाबाद के एक सज्जन की मिल भी वहाँ है। यहाँ भी नगरपालिका का मानपत्र तो था ही । सभा बड़ी हुई थी और यहाँ पहली बार गांधीजी नें त्रावणकोर की स्त्रियों की पोशाक के लिए अपना मोह प्रकट किया और इनसे खादी का सरल और अत्यन्त अनुकूल मंत्र स्वीकार करने की सिफारिश की । नायरों के इस गढ़ में पालिका के मानपत्र में पहली बार करुण ढंग से लिखा हुआ देखा गया: "हमारे यहाँ आपके पहली ही बार चरण पड़ रहे हैं, यह हम अपना सौभाग्य समझते हैं, परन्तु हमारे राज्य की एक अभागी रूढ़ि के कारण आपको यहाँ आना पड़ा है, यह बात हमारे लिए असह्य दुख की है।"

---

* ता. १२-३-१९२५

वरकला

क्वीलोन से आगे दक्षिण में वरकला है । क्वीलोन से ही खाड़ी नहीं रह जाती और पहाड़ी प्रदेश शुरू हो जाता है । इस पहाड़ी प्रदेश की रमणीयता उस जलमय प्रदेश की रमणीयता से कम नहीं है । और हवा उससे बढ़िया है, क्योंकि सुखी है। इस मोटर-यात्रा के रास्ते में कई छोटे-छोटे गाँवों के अनेक छोटे-छोटे बच्चों को पट्टी और किताब लेकर पाठशाला जाते देखा ।

वरकला हवा के लिए भी बढ़िया जगह मानी जाती है । इसलिए महारानी भी कुछ समय वहाँ बिताती हैं। महारानी के आग्रह से हम उनके मेहमान बनकर रहे। उनके साथ की बातचीत में उन्होंने स्वीकार किया कि यह रूढ़ि भद्दी है । परन्तु लोगों पर जबरदस्ती नहीं हो सकती । स्वतंत्रता प्रत्येक को होनी चाहिए । "चोर और डाकू को भी स्वतंत्र रखेंगी? इनसे समाज की रक्षा नहीं करेंगी?" इस प्रश्न से रानीजी परेशान हुई। अन्त में उन्होंने कहा: "लोकमत पर सास आधार है। आप सबल लोकमत बतायें तो कल रास्ते खुल जायँ ।'"

उन्हें गांधीजी के सुझाये हुए तीनों मार्ग बहुत पसन्द आये ।

थियाओं के गुरु का मुख्य मठ शिवगिरि भी वहीं है । यह मठ जिस सुन्दर पहाड़ी पर स्थित है, उस पर नहा-धोकर भस्म-विभूषित होकर आये हुए सैकड़ों थियाओं के सामने बोलते हुए गांधीजी ने कहा:*

"माननीया महारानी स्वयं तो आपके प्रति सहानुभूति रखती हैं । वे उनके साथ हैं, जो अपने दुःख दूर करने के लिए पच रहे हैं। आपसे यह कहने की मुझे छूट मिली है कि वे यह मानती हैं कि वाईकोम के और इसी तरह दूसरे स्थानों के रास्ते सब जातियों के लिए खुले होने चाहिए, परन्तु इस मामले में जब तक लोकमत का पृष्ठबल न हो, तब तक वे कुछ नहीं कर सकतीं । इसलिए जब तक वाईकोम में नियमित रूप से शान्ति और विधानपूर्वक लोकमत शिक्षित न हो और लोकमत विधानपूर्वक-परन्तु सबल रूप में—पेश न किया जाय, तब तक जहरी राहत देने में वे असमर्थ रहेंगी। मैं स्वयं यह स्थिति पूरी तरह स्वीकार करता हूँ। अन्धे सनातनियों का विरोध तोड़ डालने का काम अब मेरा और आपका है। ऐसा करने में आप जब तक प्रमुख भाग नहीं लेंगे, तब तक छूट और स्वतंत्रता क्या है, इसकी कल्पना आपको नहीं होगी।

---

* ता. १३-३-१९२५

"मैं सनातनियों से मिला। उन्होंने कर्म का सिद्धान्त मेरे सिर में मार दिया। कर्म के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि प्रत्येक को अपने कर्म का फल मिले और जिसने जिसका उत्तराधिकार पाया हो, उसे वह भोगना पड़े। और यह ठीक ही है। हिन्दू-धर्म कर्म के सिद्धान्त को मानता है और विज्ञान भी मानता है। हिन्दू-धर्म तो जीवन में उतारा हुआ विज्ञान है। विज्ञान तो यह भी कहता है और हिन्दू-धर्म भी कहता है कि मनुष्य अपने कर्म को उससे विरोधी कर्म करके धो डाल सकता है। यदि पिछले जन्म में मैंने कोई पाप किया हो तो उसे पुण्य करके धो डालना मेरे हाथ में है। और जैसे पुण्य करके पाप धोना हमारे हाथ में है, वैसे ही अन्धे बिगाड़कों के हाथ में पाप करके अपने पुण्य धो डालने का भी सामर्थ्य है। कर्म का सिद्धान्त किसीका लिहाज नहीं करता; राव और रंक, ब्राह्मण और अन्त्यज इसके लिए समान है।

"परन्तु सनातनियों को आप भूल जाइए, मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है और आप भी अपने भाग्य के विधाता बनें। मैं अन्धी रुढ़ि-पूजा और रुढ़ि के बलिदानों के बीच कड़ी बनने का प्रयत्न करता हूँ। अर्थात् आप दोनों को अपना बना लेना चाहता हूँ। इसलिए आज श्री नारायण गुरु स्वामी के सामने मैंने अपने को भंगी बताया। और मैं चाहता हूँ कि कोई भी भंगी अपने पेशे के कारण अपने को लज्जित अनुभव न करे। भंगी अपने धंधे का वफादार हो तो वह स्वास्थ्य-रक्षक होना चाहिए। मैंने अपना परिचय जुलाहे, कातनेवाले और किसान के रूप में भी दिया था। सनातनी कहते हैं कि दलित-वर्ग दलित रहने के लिए पैदा हुए हैं, क्योंकि वे अवगुण लेकर जन्मे हैं। हमें इन्हें बताना होगा कि मनुष्य एक भी अवगुण लेकर नहीं जनमता। कुछ भी लेकर जनमता है तो वह गुण लेकर जनमता है। अपनी शक्ति का उसे पता चल जाय तो मनुष्य लगभग देवता बन जाता है और मैं चाहता हूँ कि हम सब जैसे हैं वैसे ही न रहें, परन्तु जैसे बनना चाहिए, वैसे बनें।

"आपमें बहुत-से पढ़े-लिखे हैं। आपमें वकील, डॉक्टर और बड़े रोजगार-धंधेवाले हैं। यह जानकर मुझे आनन्द होता है, परन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता। यह सब अच्छा है, परन्तु इतने से सन्तुष्ट होकर बैठा नहीं जा सकता। अन्त में तो चरित्र का ही असर पड़नेवाला है—अक्षर-ज्ञान से नहीं पड़ेगा । इसलिए आप अपने सत्त्वगुण विकसित कीजिए और आप देखेंगे कि आपके सामने कैसी ही ताकत क्यों न हो, वह खड़ी नहीं रह सकती । दलित वर्गों के अपना उद्धार करने के बहुत-से उदाहरण मैं जानता हूँ और मैं चाहता हूँ कि आप उनके जैसा कर.सकें । मैं चाहता हूँ कि आप अपने को हिन्दू-धर्म की प्रतिष्ठा के रक्षक समझें ।

"आज आपमें से कुछ लोग अधीर हो गये हैं—त्रावणकोर में ही नहीं, परन्तु सारे भारत में । यह अधीरता ठीक नहीं है, अधीर होने से आप स्थायी सुधार प्राप्त नहीं कर सकेंगे । अधीर तो प्रत्येक को अपने साथ होना

चाहिए—प्रतिपक्षी के साथ नहीं । अंग्रेजों के साथ व्यवहार के लिए भी मैंने यही उपाय सुझाया है और सनातनियों के साथ व्यवहार में भी मैं आपको धीरज और शान्ति के उपाय ही सुझा सकता हूँ । हममें जो-जो दोष और अपलक्षण आरोपित किये जाते हैं, वे सब टूर करके दुनिया के आगे साफ होकर खड़े रहेंगे, तो यह निश्चित समझिए कि सनातनियों के पास कहने को कुछ नहीं रह जायगा ।

"आप कहेंगे कि आम रास्तों पर जाने में भी चरित्र और दोष-शुद्धि का क्या वास्ता? परन्तु मैं आपसे जरा गहरे जाकर विचार करने का अनुरोध करता हूँ । सनातनियों ने कुछ सार्वजनिक मार्गों के उपयोग के साथ धर्म को इतना ज्यादा मिला दिया है कि उससे इसे अलग नहीं किया जा सकता । उनकी वृत्ति गलत, अनुचित और पापी है । परन्तु यह तो मेरी दृष्टि से और आपकी दृष्टि से है; सनातनियों की दृष्टि से नहीं। एक समय ऐसा था, जब हमारे पूर्वज मनुष्यों की बलि चढ़ाते थे । वह रिवाज पैशाचिक था, अधर्मय था, परन्तु वे ऐसा नहीं मानते थे । उन्हें तो पाप ही पुण्य लगता था, इसलिए आज उन्हें हमारे हिसाब से नापें, तो बड़ा अन्याय करें । यदि उनके साथ न्याय करना हो, तो हमें स्वयं को उनकी स्थिति में रखना चाहिए और यह समझना चाहिए कि जब नरमेध बन्द हुआ, तब उन्हें कैसा लगा होगा । यह जो मैं कह रहा हूँ, सो भूतकाल के पापों के बचाव में नहीं, परन्तु यह बताने को कहता हूँ कि उनके पाप के मूल में उनका अज्ञान था। हम इतना जान लें तो संभव है, हम उनके साथ अन्याय न करें।

"आज के अंध रूढ़िपुजकों की स्थिति भी आप ऐसी ही समझिए । इनमें भी अज्ञान भरा हुआ है। इसके मुझे कटु अनुभव हैं। मेरी अपनी स्त्री के और मेरे बीच में पूर्वग्रह की जो दीवार खड़ी है, उसे मैं तोड़ नहीं सका हूँ। परन्तु उसके साथ मैं अधीर नहीं हो सकता । उसके प्रति अत्यंत भावना है । अत्यंत विवेक और उससे भी अधिक ममता रखकर मैं उसके विचार बदलने की आशा रख सकता हूँ। मेरे अपने व्यवहार के बारे में अत्यंत सख्त रहूँ, मेरे अपने दोषों के बारे में अधीर बनूँ; परन्तु अपनी स्त्री के साथ अधीर होने से मेरा काम नहीं चल सकता। मैं चाहता हूँ कि सनातनियों के साथ आप इसी तरह बरताव करें। सच्चे धर्म-जीवन का यह रहस्य है।

"कल मेरे साथ बातचीत में स्वामीजी ने एक जाति, एक धर्म की बात की। मैंने उनका विरोध किया था और यहाँ भी करने की इजाजत चाहता हूँ। जब तक अलग-अलग दृष्टि रखनेवाले मनुष्य हैं, तब तक मति भी भिन्न-भिन्न होगी और धर्म भी अलग-अलग होंगे ही। परन्तु धर्मनिष्ठ जीवन का रहस्य तो यह है कि एक-दूसरे के मत और धर्म के बारे में हममें सहिष्णुता हो। किसी अन्य धर्म के आचार में हमें पाप जैसा लगता हो, परन्तु उन्हें ऐसा न लगता हो। भेद तो हैं ही और रहेंगे। इस बारे में आँखें बंद करके नहीं चल सकते। इसे नजरअंदाज

कर देने की इच्छा हो तो भी नजरअंदाज किया नहीं जा सकता। ऐसा होते हुए भी मैं जिनसे अलग हो जाता हूँ, उनके साथ भी ममता रखना ही एक उपाय है।

"यह न्याय सारी दुनिया के लिए सही है। सृष्टि में आपको कोई दो चीजें समान मालूम नहीं होंगी। हम जिस पेड़ के नीचे बैठे हैं, उसके दो पत्ते या दो शाखाएँ बिलकुल एक-सी नहीं हैं, यद्यपि उसकी जड़ एक है। परन्तु समान न होने पर भी ये सब जैसे एक-दूसरे से लगे हुए हैं और सुन्दर वृक्ष बनाये हुए हैं, उसी प्रकार भेदों से भरी मानव-जाति के अनेक भेद होते हुए भी हमें उसे स्नेह से बँधी हुई और परस्पर बद्ध बनाना चाहिए। यह तब बने, जब प्रेम का मार्ग, सहिष्णुता का मार्ग अपनाया जाय। अर्थात् अंधे रुढ़िपूजकों का घोर अज्ञान मुझे साफ दिखाई देता है, तो भी उनके साथ मैं अधीर नहीं बनूँगा; और धर्मनिष्ठ जीवन बितानेवाले को और इसी जन्म में आत्मा को पहचानने की इच्छा रखनेवाले को अपने विचार, वाणी और प्रत्येक व्यवहार में प्रेम और अहिंसा का ही मार्ग मैं बता सकता हूँ।

"इसीलिए आज मैं आपसे कहने आया हूँ कि वाईकोम-सत्याग्रह पूरे अहिंसक ढंग से चलाया गया होता और उसे जितना चाहिए, उतना सहारा आपकी तरफ से मिला होता तो इस लड़ाई का कभी से अन्त आ गया होता। मैंने सत्याग्रहियों की प्रशंसा की है। उन्होंने काम अच्छा किया है और मुझे उसकी प्रशंसा करना उचित प्रतीत हुआ है। परन्तु यह तो एक तरफ की बात हुई। अगर दूसरी ओर की बात आपको न सुनाऊँ तो मेरा अपने-आपको धोखा देना होगा। परन्तु यहाँ भी अहिंसक ढंग से ही काम करूँगा। मैं इनका दोष नहीं बताता। इन्होंने तो यथाशक्ति सब कुछ किया है। परन्तु मैं चाहता हूँ कि अब आप और अधिक करें। इन लोगों ने किसीको शारीरिक पीड़ा नहीं पहूँचायी। परन्तु इनके विचार और मन अहिंसक नहीं थे। इनके साथ की चर्चा में से मुझे यह जानने को मिला। इनके मन में सनातनी लोगों के प्रति रोष है, सनातनी मानस के प्रति रोष है और उनके तथा सरकार के हेतुओं के बारे में शंका है। मैं कहता हूँ कि यह सब सत्याग्रहियों को शोभा नहीं देता। मैं तो सरकार जो कहती है, उसमें विश्वास रखता हूँ। और सनातनी लोग यह कहते हैं कि मेरे उस रास्ते पर से गुजरने में उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहूँचती है, तो उनके कहने पर भी विश्वास करूँगा। इस प्रकार विश्वास रखकर ही मैं उनके मन का वहम और विरोध शांत कर सकता हूँ। उनकी नजर में मेरी इज्जत बढ़े तो मैं अपना स्थान मजबूत बना सकता हूँ। और ऐसा करके मैं उन्हें जाग्रत करता हूँ।

"मैं चाहता हूँ कि आप भी ऐसा मानस बनाइए। क्योंकि मैं मानता हूँ कि कर्म की अपेक्षा विचार ही अधिक शक्तिशाली है। कर्म तो विचार का बहुत थोड़ा प्रतिबिंब है। मानसशास्त्रियों को हमारे कृत्य का

पृथक्करण करने में और यह ढूँढने में कि उसका मूल विचार में रहता है, कोई कठिनाई नहीं होती। ऐसा करके वे खोज लगा सकते हैं कि अमुक कृत्य करनेवाला कितना उमदा और बलवान् मनुष्य है—और ऐसा बहुत बार होता है—या वह कितना अभिमानी और क्षुद्र है। मेरे कहने का भावार्थ यह है कि अपना मोक्ष हमें स्वयं ही प्राप्त करना है। और इसके लिए हमें स्वाश्रयी और प्रयत्नशील बनना पड़ेगा।

"आपके सामने आनेवाले दूसरे सब काम दूर रखकर इस सत्याग्रह को सफल बनाने में ही आपको लगे रहना चाहिए। यह एक टेस्ट केस है। इसे सफल बनाने के लिए आपको सत्याग्रहियों की परंपरा बनानी चाहिए और दूसरे सब प्रकार से इनकी मदद करनी चाहिए। मुझेसे, प्रान्त में दूसरे लोगों से, और वाईकोम के बाहर से भी सहायता प्राप्त करने में आपको शर्म आनी चाहिए। मतलब यह कि इस सत्याग्रह का पोषण करने के लिए जो कुछ करना पड़े, वह सब आपको कर देना चाहिए। सत्याग्रहियों की धारा सूख नहीं जानी चाहिए। आपको इतने से संतोष नहीं मान लेना चाहिए कि कई दिनों तक प्रखर ताप में तपनेवाले थोड़े-से बहादुर नौजवान निकल आये हैं। आपको भी अपना हिस्सा अदा करना चाहिए। आप भी तप करें और तप में शरीक हों।

"त्याग—बलिदान—तो पुण्य का काम है। इसलिए उसे पवित्र हृदय से करना चाहिए। आपको चारित्र्य शंका से परे होना चाहिए। आपको सत्यवादी बनना चाहिए। मौज-शौक में मत पड़ना। फिलहाल तो अपना ऐश आराम कम-से-कम कर डालिए और सब बंधनों से मुक्त हो जाइए। अपने बड़ों से मुक्त होने के बाद पीठ फेरकर मत देखना। मुक्त होने के बाद उनकी कठिन स्थिति हो जाय, तो भी वे आपको आशा न करें। इस प्रकार आप सर्वथा सत्य आचरण करें। ऐसा करेंगे तो आपको अनुभव होगा कि आपने दुनिया में स्थान प्राप्त किया है। वह इतना अनोखा होगा कि दुनिया की कोई ताकत उसे आपसे छीन नहीं सकेगी।

"मैं जानता हूँ कि सब शायद यह सब न भी कर सकें। परन्तु यदि इसे न कर सकें तो दूसरा सामाजिक उत्थान का काम कर सकते हैं। शराबबंदी का काम तो है ही, इसे शुरू कर दें। यहाँ और क्या खराबियाँ हैं, इसका मुझे पता नहीं है। आपको अन्त्यजों की आपस की छुआछूत दूर करनी है। जो इससे दबे हुए हैं, उनसे आप मिलें, उनसे दोस्ती करें और उनको मदद दें। चरखे और खादी का काम भी कर सकते हैं। सब कातें और सब खादी पहनें, यह काम जल्दी शुरू कर देने की जरूरत है। मैं सुनता हूँ कि कुछ वर्ष पहले आप सब उत्तम कातनेवाले थे। हजारों को बुनना आता था। ये दोनों धंधे उमदा हैं। मुझे तो विश्वास हो गया है कि केवल कातने में ही भारत का उद्धार समाया हुआ है। कोई एक आदमी काते, इससे उसे लाभ न हो, परन्तु जब सब कातें,

तब सारे देश को लाभ होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि कातने के हिसाब से देश की आर्थिक स्थिति की कल्पना हो सकती है।

"स्वामीजी ने जब मुझसे कहा कि वे स्वयं चरखा चलायेंगे, तब मुझे अत्यंत आनंद हुआ। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि शुद्ध खादी के कपड़े पहने बिना आनेवाले किसी भी भक्त को वे अपने पास नहीं आने देंगे। मैं आशा रखता हूँ कि आपमें से पढ़े-लिखे लोग कातने और खादी पहनने का महत्त्व समझेंगे। त्रावणकोर में खादी पहनना अपराध नहीं है। मैं आशा रखता हूँ कि आप अपनी स्त्रियों को भी यह बात समझाएँगे। आप तो यहाँ भारी साड़ियाँ भी नहीं पहनतीं। तमिल देश में बहुत रंगीन वस्त्र भी कोई नहीं पहनता। त्रावणकोर की स्त्रियों के सफेद कपड़े देखकर मुझे आनंद होता है। यहाँ की स्त्रियों और पुरुषों को कुछ ही गज कपड़ा काफी होता है। मांचेस्टर और अहमदाबाद पर आपको आधार रखना पड़े तो आपको ऐसा लगना चाहिए कि इसमें लज्जा और हीनता है। तभी यह माना जायगा कि आपने इस लड़ाई में मदद दी।

"ऐसा डर मत रखना कि यह लड़ाई बहुत लम्बे समय तक चलेगी। स्वामीजी कहते हैं कि मैं नहीं समझता कि इस लड़ाई का अन्त हमारे जीवन-काल में आ जायगा और यह सारी आपत्ति दूर होने से पहले मैं तो दूसरा अवतार ले लूँगा। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। इसका अन्त मैं अपने जीवन में और इसी जिन्दगी में देखने की आशा रखता हूँ। परन्तु यह आपकी सहायता के बिना नहीं होगा। अपनी तमाम शक्तियों से मुझे मदद दीजिए और जब तक यह बुराई भूतकाल की बात न बन जाय, तब तक उस मदद को जारी रखिए। अपना फर्ज हिम्मत से अदा कीजिए और मैं यह पाँचवाँ वर्ण बिलकुल खत्म करके दिखाने की जिम्मेदारी लेता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह सब आपके गले उतारने के लायक बल और निश्चय स्वामीजी को दे; और जो पुण्य-कार्य आपने शुरू किया है, उसे सफलतापूर्वक पूरा करने योग्य समझदारी और ताकत आपको दे।

"स्वामीजी के आतिथ्य और आदर-सत्कार के लिए मैं फिर आभार मानता हूँ। आपने जो मानपत्र दिया है और जिस धीरज से आपने मेरा कहना सुना है, उसके लिए आपका भी फिर से शुक्रिया अदा करता हूँ। परन्तु आपसे सबसे बड़िया भेट तो मैं यह माँगता हूँ कि आपने जो सुना है, उसे अपने जीवन-कार्य में उतारें।"

वरकला से आगे बढ़कर दक्षिण में त्रावणकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम् आया। यहाँ गांधीजी को दीवान साहब से मुलाकात करनी थी। गांधीजी उनसे मिले, तब उन्होंने बताया कि कानून की रू से तो मन्दिरवालों को ये रास्ते अंत्यजों के लिए बंद करने का हक है; और सरकार को इस हक की रक्षा करनी चाहिए अथवा

कानून रद्द करना चाहिए। कानून रद्द करना हो तो उसके पीछे लोकमत चाहिए। यह लोकमत उन्हें नहीं दिखाया गया हो तो थोड़े समय दिखा दिया जाएगा, यह आश्वासन गांधीजी उन्हें दिला आये।

यहाँ राजमाता के भी दर्शन हुए। राजमाता यानी महारानी की बहन और नाबालिग महाराजा की माता। राजमाता ने स्वयं गांधीजी को आमंत्रण दिया था कि "कृपा करके मिल जाइए और मेरे पुत्र को आशीर्वाद दीजिए।" इसमें मुझे इनकी धर्म-निष्ठा की प्रतीति हुई। अस्पृश्यता की बात निकलने पर उन्होंने अत्यंत खेद प्रकट किया और कहा कि यह प्रथा असह्य है।

परन्तु ये मुलाकातें तो मानो गौण हो गयीं और मुख्य कार्य लोगों से मिलने और अनेक पाठशालाओं तथा विद्यालयों में जाने का हो गया। लाख आदमियों की बस्ती में चार कॉलेज—इनमें से एक स्त्रियों का कॉलेज और एक कानून का कॉलेज—जिसके सदृश दूसरा एकमात्र मद्रास में ही है। और पाठशालाएँ तो 'हाईस्कूल' के ढंग की सात-आठ। और क्यों न हों? त्रिवेन्द्रम् में हजार पुरुषों में ७५० और हजार स्त्रियों में ३५० लिखना-पढ़ना जाननेवाली हैं! महारानी के मेहमान होने पर गांधीजी के पास आने में आफसरों को क्या डर हो और अंग्रेजों को भी क्या घृणा हो?

अंग्रेज कहते ही याद आता है कि इस सुव्यवस्थित दिखाई देनेवाले राज्य में भी कॉलेजों के—स्त्रियों और कन्याओं की संस्थाओं के—प्रिंसिपल अंग्रेज तथा एंग्लो-इंडियन हैं। यह देखकर सखेदाश्चर्य हुआ। जिस राज्य में पढ़े-लिखों की इतनी अधिक मात्रा, जिस राज्य में अंत्यजों में अनेक वकील, बैरिस्टर और एक तो मद्रास हाईकोर्ट के न्यायाधीश हुए हैं, उस राज्य में शिक्षा-संस्थाएँ चलानेवाले देशी आचार्य न मिलें? जैसे पढ़े-लिखों की सेना देखकर हैरत होती है, वैसी ही भावना इन विदेशियों को शिक्षा-संस्थाओं के नायक के रूप में स्वीकृत देखकर हुई।

हाँ; जेल के सुपरिंटेंडेंट और जेलर दोनों देशी देखे। और जेल के लिए क्या अपार सौंदर्य का स्थान! त्रिवेन्द्रम् में सबसे ऊँची पहाड़ी पर यह जेल स्थित है। इस जेल पर खड़े रहकर मीलों तक उतरती-चढ़ती झाड़ियों के झुंड का और एक तरफ अरब सागर का दर्शन होता है। जेल के भीतर की सफाई भी असाधारण थी। मैं गांधीजी के साथ नहीं गया था, अकेला ही गया था और अचानक गया था। इसलिए किसी के आने की तैयारी के कारण इतनी स्वच्छता हो, सो बात थी ही नहीं। सुपरिंटेंडेंट ने भलमनसाहत से सब भाग दिखाये।

दवाखाने में एक भी दीवार नहीं! सुपरिंटेंडेंट ने हँसते-हँसते कहा: "बहुत लोग इसे सेनेटोरियम कहते हैं। हमारे अभिमान करने की तो नहीं, परन्तु राज्य के लिए तो है, क्योंकि इतनी स्वच्छ हवा और कहाँ मिले? और देखिए न, हमारी जेल की जमीन ही १०० एकड़ है।" जेल में केवल ३०० कैदियों के लिए सुविधा है और दूसरे सब स्थानों में तो कच्ची जेल है, इसलिए अपराधों की संख्या भी बहुत कम होगी, यह अनुमान लगाना शायद अनुचित न हो। हाँ, शराब और नशीले पदार्थों से होनेवाली विपुल आय कदाचित् उलटा ही प्रमाण दे। परन्तु कौन-से अपराध कितने होते हैं, इसके आँकड़ों की जाँच-पड़ताल मैंने नहीं की, इसलिए इस मामले में अधिक तर्क नहीं करता।

राजपरिवार नायर है, इसलिए नायरों के उत्तराधिकार नियम के अनुसार राजा के पुत्र को कभी विरासत या गद्दी नहीं मिलती, परन्तु बहन के बेटे को गद्दी मिलती है। इस प्रकार मौजूदा महाराजा को गद्दी का हक मिला है।

कुल मिलाकर राज्य द्वारा किये गये गांधीजी के सम्मान में जितना एक अग्रगण्य नेता के सम्मान का भाव था, उतना ही एक साधु-पुरुष के सम्मान का भाव था, ऐसा मुझे महसूस होता है। यह धर्म-निष्ठा एक बड़ी पहली है। 'धर्म हमारा देव है' (**धर्मोऽस्माकम् दैवतम्**) यह सूत्र अनेक प्रकार से राज्यव्यवहार में आया है। राज्य के चिह्न के रूप में दो हाथी सामने खड़े हैं, परन्तु वे मध्यस्थ शंख के अधीन होकर खड़े हैं। शंख अर्थात् पद्माभ देव—शंखचक्रधारी—का प्रतीक। त्रिवेन्द्रम् में पद्माभ का मन्दिर है। भावना यह है कि यह पद्माभ का राज्य है। जहाँ देखिए, वहाँ यह शंख नजर आता है। राज्य के सिक्कों पर न तो राजा की मूर्ति है, न कोई ऐसी तलवार है, जैसी राजा अपने पराक्रम की निशानी के तौर पर रखते हैं, परन्तु पद्मनाभ का शंखमात्र है; अतिथि-भवन में अनेक मेजें, परातें, लोटे शंख के ही आकार के हैं और शहर के घरेलू बगीचों में शंखों और सीपियों की बनायी हुई सुशोभित आकृतियों में शंख ही दिखाई देते हैं।

पद्मनाभ के प्रति जहाँ इस प्रकार का भाव रहा है, बल्कि जहाँ सब कुछ पद्मनाभ के लिए है, वहाँ अंत्यजों के प्रति इतना अन्याय? यही हिन्दू-धर्म की पहेली है। ब्राह्मणों के लिए इस राज्य में इतना पक्षपात है कि यह प्रथा भी इस पक्षपात की ही ओट में टिकी हुई है। राजपरिवार नायर, परन्तु कन्याओं को तो नाम्बूद्री के साथ ही विवाह करना होगा ! और तो और, जेल में भी नाम्बूद्री को संध्यावंदन की सारी सामग्री मिलती है और अपना खाना बनाने दिया जाता है ।

परन्तु पक्षपात पर अवलंबित प्रथा भी अंतर जाग्रत होने पर मिट जायगी । त्रिवेन्द्रम में अधिक नहीं तो नौ भाषण गांधीजी को देने पड़े ! साइन्स कॉलेज का प्रिंसिपल आ चिपका, तो गांधीजी ने वहाँ जाकर आधुनिक विज्ञान की मर्यादा पर भाषण दिया, जनकल्याण और अहिंसा के दो अंकुश उसके लिए सुझाये और अपने जीवन की कई घटनाएँ सुनाकर विद्यार्थियों को अनुरंजक बोध दिया। इतने में आ गयीं पासवाली कन्या पाठशाला की शिक्षिकाएँ। इसलिए गांधीजी वहाँ गये और यह कहा जा सकता है कि वहाँ तो एक सुन्दर कक्षा ही ले डाली ।

"कहो, मैं तुम्हारे साथ किस बारे में बातें करूँ?"

कोई उत्तर नहीं ।

"यों शरमाओगी तो मैं भाग जाऊँगा । कहो, बोल दो, तुम कहो उसी विषय पर बातें करें ।"

इस पर एक सयानी-सी लगनेवाली लड़की बोली: "हमारे कर्तव्य के बारे में कहिए।"

"अरे जा रे पगली, ऐसे भारी-भरकम विषय की मुझसे चर्चा होगी! कोई और विषय सुझा ।"

इस पर दूसरी ने उठकर कहा: "हमारे देश के प्रति कर्तव्य के बारे में कुछ कहिए ।"

"यह भी मेरे लिए कठिन होगा । और कोई बता ।"

यहाँ तो पहेलियाँ शुरू हो गयीं । "बताओ, मैंने अपने मन में क्या सोचा है?" यह कहने जैसी बात हुई । बेचारी लड़कियाँ असमंजस में पड़ गयीं—एक ने बहादुरी से जवाब दिया: "आप अपने ही बारे में कुछ-न-कुछ कहिए ।"

हँसते-हँसते गांधीजी कहते हैं: "ओ हो! मेरे बारे में तो तुम सब जानती हो, क्योंकि मैं तो बहुत प्रसिद्ध हो गया हूँ न? और मैं ही कुछ कहूँ तो केवल अपने बखान ही करूँ, इसलिए दूसरा विषय ढूँढो।"

गरीब बहनें हारीं। दो-तीन बोल उठीं: "आपको सूझे उस विषय पर बोलिए।"

इस पर गांधीजी बोले: "अच्छा, तो कातने के बाबत कुछ कहूँ तो?" तो सारी कक्षा खिलखिलाकर हँस पड़ी। कइयों ने पुकारकर कहा: "हाँ, हाँ।" और फिर तो कातने के विषय में कैसी सुन्दर गोष्टी हुई होगी, इसकी कल्पना पाठक को कर लेने को कहूँगा। जरा मदद के लिए शीर्षक बता देता हूँ—"तुम्हारी रोटी कहाँ

से आती है?"—"घर में चूल्हे हैं या नहीं?"—"गरीबों को जानती भी हो?"—"गरीब के प्रति अनुकम्पा कैसे बताओगी?' इ.

ये हाईस्कूल की लड़कियाँ थीं। घर गये तो वहाँ कॉलेज की सौ के लगभग लड़कियाँ अपनी अध्यापिकाओं को लेकर खड़ी थीं। उन्हें भी इन्हीं बातों के सिवा और क्या मिलता?

सबसे बड़े हाईस्कूल में गये। वहाँ भी गांधीजी ने कक्षा चलायी।

"कौन-सा इतिहास सीखती हो? भारत का इतिहास तो सीखती होगी?"

"हंटर का नाम जानती हो? हंटर का नाम न जानती हो, तो तुम्हारे शिक्षक का क्या करना चाहिए?" फिर एक भारतीय की वार्षिक आय-सम्बन्धी हंटर के आँकड़े दिये और गरीबी की बात हुई और यह पूछा गया कि कितने कातते हैं। "कोई नहीं" यह बताने पर गांधीजी ने कहा: (अंग्रेजी में ही बातचीत हो रही थी) "हजारों विद्यार्थियों में एक भी न काते और त्रिवेन्द्रम् जैसे स्थान में एक भी चरखा न हो, यह tragedy (दयनीयता) है। अब tragedy का अर्थ अपने शिक्षक से पूछ लेना" कहकर वहाँ से बिदा हुए।

आम सभा तो थी ही। बीस-पच्चीस हजार आदमी होंगे, परन्तु अपार शान्ति। शान्त सभाओं के लिए त्रावणकोर जैसा एक भी प्रदेश नहीं होगा।

सभा को सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

"आपके दिये हुए मानपत्रों के लिए अभार मानता हूँ। मैं आशा रखता हूँ कि आप ऐसी अपेक्षा नहीं रखते होंगे कि इनमें उल्लिखित सभी मुद्दों का जवाब मैं दूँगा। खिलाफत कमेटी के दिये हुए मानपत्र की मैं कदर करता हूँ। इसका विशेष उल्लेख मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मेरे इस प्रवास में अलीभाइयों में से एक भी मेरे साथ नहीं है, इसके लिए मुझे बहुत अफसोस होता है। दोनों इतने महत्त्व के कामों में फँस गये थे कि मेरे साथ आना उनके लिए संभव ही नहीं था।

"हिन्दी प्रचार सभा द्वारा दिये गये मानपत्र का मैं खास तौर पर उल्लेख करना चाहता हूँ। यहाँ मैं जब-जब अता हूँ, तभी मुझे परेशानी होती है। प्रत्येक बार मुझे ऐसा लगता है कि यदि मुझे जनता को समझाना हो, तो यह अंग्रेजी भाषा द्वारा हरगिज नहीं हो सकता। उत्तर दक्षिण से अलग पड़ गया है; और दक्षिण हिंदी सीखने से इनकार करके उत्तर से अलग हो गया है। यद्यपि अंग्रेजी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय बनती जा रही है, फिर भी वह

सारे भारत की भाषा नहीं बन सकती। साधारण जनता अंग्रेजी भाषा सीख लेगी, ऐसी आशा रखना गलत है। परन्तु दक्षिण भारत के आप पढ़े-लिखे लोगों के लिए हिन्दुस्तानी सीख लेना आसान है। मैं आपसे कहता हूँ कि दक्षिण अफ्रीका में जिन तमिलियों और दक्षिण भारत के भाइयों को मैं जानता था, उन सबको हिंदी सीखना जरा भी मुश्किल नहीं लगा था। मुझे आशा है कि हिंदी जो मुफ्त सिखाई जाती है, सीख लेने का लाभ आप सब ले लेंगे।

"आप सब जानते हैं कि वाईकोम में बहुत कठिन परिस्थितियों में सत्याग्रही लड़ई लड़ रहे हैं। मैं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करने आया हूँ। मेरी इच्छा थी कि महारानी साहिबा और दीवान साहब की मुलाकात का लाभ मिले, तो वह भी ले लूँ। मुझे इन दोनों से मुलाकात करने का सम्मान मिला है। दोनों ने धीरज और नम्रता से मैंने जो कहा, उसे सुना है। इसके लिए मैं इन दोनों का आभार मानता हूँ।

"श्री नारायण गुरु स्वामी से मिलने का लाभ भी मुझे मिला है। इनके जैसा मनुष्य भी वाईकोम के रास्ते पर न गुजर सके, इसका भान होने पर शर्म के मारे मेरा सिर झुक गया। इनके भव्य मठ में इनका अतिथि होने का मुझे सम्मान मिला है। अपनी सुन्दरता से वह भव्य लगता है। वहाँ रखी जानेवाली सफाई की मैं कद्र करता हूँ। वहाँ के कुछ पुलया लड़कों ने मंत्र सुनाये। उनकी तरह बोलनेवाले संस्कृत के विद्वान भी बहुत थोड़े होते हैं। बहुत-से नामांकित एज्हुआ भाइयों से मिलने का भी मुझे लाभ मिला। देश में उच्च माने जानेवाले दूसरे मनुष्यों जितने ही शक्तिशाली और साफ ये लोग हैं। ऐसे आदमी भी वाईकोम के रास्तों पर नहीं जा सकते, इसका भान होने पर धर्म, मानवता और राष्ट्रीयता की मेरी कल्पना को आघात पहुँचा।

"सर्वण हिन्दुओं के लिए यह मामला बहुत गंभीरता से विचार करने योग्य है। उन्हें खयाल रखना चाहिए कि दूसरे धर्मों के साथ हिन्दू-धर्म की भी परीक्षा हो रही है। उसे भी शास्त्रों के आधार पर नहीं, परन्तु बुद्धिपूर्वक परीक्षा में पास होना पड़ेगा। कोई काम गलत हो, वह, भले ही अनादिकाल से चला आ रहा हो, परन्तु पवित्र नहीं बन जाता। और यदि वेदों में भी ऐसा कुछ लिखा हो कि जो नीति और न्याय के साथ मेल न खाता हो, तो उसका भी त्याग करना पड़ेगा।

"मैंने अपनी शक्ति के अनुसार हमारे शास्त्रों को समझने का प्रयत्न किया है। शास्त्रों के मेरे अति अल्प ज्ञान में मुझे सहायता देनेवाले पंडितों की मदद से मैंने वृद्धि की है। इस पर से मुझे ज्ञात हुआ है कि आज जैसी हम समझते हैं, वैसी अस्पृश्यता और अनुपगम्यता के लिए कोई आधार नहीं है। इसलिए मुझे यह कहने में

संकोच नहीं होता कि ये बुराइयाँ मानवताविहीन, अनैतिक और अन्यायपूर्ण हैं। और आज भी मैं यही कहता हूँ। यदि मुझे यह जान पड़ता कि अस्पृश्यता और अनुपगम्यता हिंदू-धर्म के मूलभूत अंग हैं तो इस धर्म को छोड़ने में मुझे जरा भी आनाकानी न होती।

"दूसरे भले ही इनकार करें, परन्तु मैं तो अपने को सनातनी हिंदू मानता हूँ। इस धर्म के लिए मेरे मन में प्रेम भरा है, तो भी और इस धर्म के रीति-रिवाजों में पला हूँ, तो भी इस निर्दय प्रथा के विरुद्ध मेरी आत्मा उबल उठती है। और मैं प्रत्येक ब्राह्मण से और अस्पृश्य न माने जानेवाले प्रत्येक ब्राह्मण से कहता हूँ कि आप भी यह बुराई मिटाने के लिए मेरी तरह ही अधीर हो जायँ। स्वर्गीय गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थे, तब कहते थे कि इम हिंदुओं ने अछूतों का एक वर्ण बनाया है। इसके फलस्वरूप दुनिया में हम भी अछूत माने गये हैं। दक्षिण अफ्रीका में हमारे अच्छे-से-अच्छे लोगों के लिए भी अलग बस्तियाँ बना देने के प्रश्न के सिलसिले में जब मैंने अपने अंग्रेज और यूरोपियन मित्रों के सामने विरोध प्रकट किया था, तब उन्होंने मुझे कह दिया था और उनका कहना सच ही था कि हम भारत में अछूतों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं।

"वाइकोम में सनातनी मानसवालों के साथ मेरी जो चर्चा हुई, उसके बारे में मैं आपको थोड़ा-सा कहना चाहता हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि उनकी और से सम्मान होने से मैं उनसे खुले मन से मिलने गया था। मेरी उनके साथ लम्बी चर्चा हुई। परन्तु मुझे यह बताते हुए अफसोस होता है कि परिस्थिति की गंभीरता के बारे में मैं उन पर असर नहीं डाल सका; और वे अपने कथन की यथार्थता मुझे नहीं समझा सके।

"उनकी स्वीकृति के लिए मैंने उनके सामने तीन विकल्प रखे। ये विकल्प चर्चा में से ही निकले थे। उन्होंने कहा कि अस्पृश्यों की तरफ से होनेवाली माँग के प्रति सवर्ण हिंदुओं का विरोध है। मैंने तुरंत ही सुझाया कि वाइकोम में या सारे त्रावणकोर में सवर्ण हिंदुओं का मत ले लें। मैंने यह सुझाव इस कारण दिया कि मुझे विश्वास था और आज भी है कि सवर्ण हिंदुओं का बड़ा भाग इस सुधार के पक्ष में है और अंधा सनातनी नहीं है। मुझे यह बताते हुए खेद होता है कि चर्चा करने आये हुए मुखियों ने यह सुझाव मानने से इनकार कर दिया। मैंने उनसे यहाँ तक कहा कि लोकमत से जो निर्णय आयेगा, उसे स्वीकार करने की सत्याग्रहियों की ओर से मैं जमानत देता हूँ और यदि लोकमत आपके विरुद्ध निकले तो उसे अस्वीकार करने को आप स्वतंत्र हैं। तो भी उन्होंने सुझाव नहीं माना। उन्होंने कहा—और मेरा खयाल है कि वह ठीक ही था—कि 'बहुमत जो कहे, वह स्थापित मान्यतावालों के लिए बंधनकारक नहीं हो सकता।'

"इस पर मैंने उन्हें इन स्थापित मान्यताओं के लिए आधार बताने को कहा। ये किसका आधार बताएँगे, यह जानने को मैं आतुर था। मेरे बड़े और तीव्र आश्चर्य के बीच उन्होंने कहा कि हम शंकराचार्य का आधार बताएँगे। मैंने आराम की सांस ली, क्योंकि शंकराचार्य के बारे में जो थोड़ा-बहुत मैं जानता था, उससे मुझे विश्वास था कि अस्पृश्यता और अनुपगम्यता को सहन करने को वे कह ही नहीं सकते। मुखियों ने आधार भेजने को मुझसे कहा था, परन्तु अभी तक वह मुझे मिला नहीं। मैंने यह भी कहा था कि आप जो आधार बताएँ, उसे हम भारत के किसी पंडित को दिखा लेंगे और यद्यपि मैं तो शास्त्रों के आधार और निषेध मानता नहीं, फिर भी इस मामले के लिए मानने को बाध्य रहूँगा। और इस बार भी मैंने अपने सनातनी मित्रों से कहा कि निर्णय मेरे लिए बंधनकारक है, परन्तु वह आपके विरुद्ध जाय तो आप उसे न मानने को स्वतंत्र हैं।

"मैंने कहा: 'परन्तु पुस्तकालयों में खोज करने पर भी आपको आधार न मिले तो मैं तीसरा विकल्प सुझाता हूँ। शास्त्रार्थ करने के लिए सत्याग्रहियों की तरफ से एक विद्वान् शास्त्री को मैं नियुक्त करूँ, आपकी तरफ से दूसरे एक को आप नियुक्त करें और दीवान साहब को निर्णयाधिकारी नियुक्त किया जाय और जो निर्णय आये, वह दोनों पक्षों के लिए बंधनकारक माना जाय।'

"ये तीन विकल्प अभी तक खुले ही हैं। वे इन्हें स्वीकार कर सकते हैं। परन्तु मैं तो आपसे—त्रावणकोर के सवर्ण हिन्दुओं से और आपके द्वारा त्रावणकोर की समस्त जनता से—प्रार्थना करता हूँ कि अस्पृश्यों के साथ जो अन्याय हो रहा है, उसे दूर करने का आग्रह रखिए और लोकमत के दबाव के अधीन होकर वाईकोम के अस्पृश्यों के लिए रास्ते खुलवाइए।

"बाद में मैं माननीय महारानी से मिला और तीनों विकल्प उनके सामने रखे। सुधारकों का सारा मामला उनको समझाया। आज दीवान साहब के सामने भी ऐसा ही किया। आपको बताते हुए मुझे आनंद होता है कि इन दोनों ने मेरे सुझावों की कद्र की है, सुधारकों के प्रति सहानुभूति दर्शायी है और सुधार-आंदोलन को कानून बनाने की एक बात छोड़कर बाकी सब तरह की, बने जितनी मदद देने का वचन दिया है। लोकमत अपनी तरफ खींचने के लिए सुधारकों को हर तरह की सहायता का वचन दिया है।

"कानून बनाने के मामले में उन्होंने अपने मार्ग की कठिनाइयाँ मुझे बतायी हैं। मेरे वकील मित्रों की राय यदि भिन्न न हो तो मेरा खयाल है कि इन कठिनाइयों में बहुत तथ्य है। परन्तु उनकी ओर से मैं समझा हूँ कि लोकमत जाग्रत और संगठित करने का काम हो जाय, तो उनकी तरफ से काफी मदद मिलेगी। परन्तु यह

वकील जानते हैं कि कानून तैयार करने में कितना अधिक समय लगता है; और लोकमत जाने बिना एक संवैधानिक शासक के मार्ग में क्या-क्या विघ्न होते हैं, यह मैं जानता हूँ। वह तो केवल लोकमत का ही अनुसरण कर सकता है।

"इस प्रकार उपाय मेरे सत्याग्रही मित्रों के हाथ में है। यह मैंने उनसे बार-बार कहा है। परन्तु उतना ही उपाय आपके हाथ में है। मैं जानता हूँ कि आपमें से प्रत्येक को सत्याग्रहियों के बराबर सहन करने को मैं नहीं कह सकता। परन्तु यदि आपको लगता हो कि वे सदा निष्ठावान रहे हैं, अहिंसक रहे हैं और प्रामाणिक रहे हैं, तो आप उनका साथ देकर और लोकमत जाग्रत करके बहुत कुछ कर सकते हैं।

"मैं कहना चाहता हूँ कि आपसे जितना हो सकता है, उतना सब आप कर चुके, ऐसी बात नहीं है। मेरी माँग है कि अपनी राजनैतिक संस्थाओं में और विधानसभाओं में आपने जितना किया है, उससे कहीं अधिक आप करें। लोकमत प्राप्त कर देने में मदद देने के लिए मैंने महारानी साहिबा से प्रार्थना की है। परन्तु लोगों में जाग्रति लाकर लोकमत प्राप्त करने के लिए आपके मार्ग में कोई रुकावट नहीं है। मैं और आप जानते हैं कि आलोचना सहानुभूतिपूर्ण और अहिंसक होगी तो आलोचकों की आलोचना के उग्र तेज के सामने अंधा सनातनीपन टिक नहीं सकेगा। जनगणना-विवरण के अनुसार त्रावणकोर में साठ हजार ब्राह्मण हैं, लगभग आठ लाख अब्राह्मण हैं और सत्रह लाख अस्पृश्य हैं। मुझे यह जानकर आनंद हुआ कि यहाँ अस्पृश्य भी दूसरी जातियों की तरह शिक्षित हैं, ईश्वर की कृपा और राज्य की प्रगतिशीलता के कारण इन्हें अपनी स्थिति का भान होता जा रहा है। इन्हें सब प्रकार की शिक्षा देना और सामान्य मानवता के अधिकार न देना, यह नहीं हो सकता। इन हालात में मुझे तो यह दिखाई देता है कि यदि यह बुराई यथासंभव जल्दी दूर न हुई तो इस रमणीय राज्य में उथल-पुथल मचेगी।

"यहाँ एक और महत्त्व की बात - चरखे और खादी की - कह दूँ। जैसे मैंने क्वीलोन में कहा था, वैसे यहाँ भी कहता हूँ कि मेरे मन में तो त्रावणकोर की इन स्त्रियों के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है। इनके बेदाग और बेकिनार सुन्दर सफेद वस्त्रों पर मैं मोहित हो गया हूँ। इनकी सफेदी उनके मन की भीतरी पवित्रता का प्रतीक है। परन्तु त्रावणकोर की इन सुन्दर और उमदा स्त्रियों के और इनके सुन्दर पुरुषों के शरीर पर मांचेस्टर और अहमदाबाद में बना हुआ कपड़ा देखकर मुझे पीड़ा होती है । मैं यदि त्रावणकोर का निवासी होऊँ तो त्रावणकोर के बाहर से लाया हुआ कपड़ा अपने शरीर से छुआने में मुझे शर्म आये । बहुत ही थोड़े वर्ष पहले इस सुन्दर देश में घर-घर में चरखा था । एज्हुआ लोगों में आज भी एक हजार जुलाहे हैं। सरकारी दफ्तरों से

जानकारी मिलती है कि भारत के लोगों को साल में चार महीने बेकार बैठे रहना पड़ता है। जहाँ ऐसा हो, वहाँ कोई भी राज्य या प्रजा लम्बे समय तक टिक नहीं सकती । इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप फिर से घर-घर में चरखे की स्थापना करें और उससे बनी हुई खादी पहनें । इससे लाखों रुपये बचेंगे और त्रावणकोर के किसानों को एक सहायक धंधा मिलेगा ।

"म्युनिसिपल पाठशालाओं में खास प्रस्ताव करके चरखा जारी करने के लिए त्रावणकोर की विधानसभा का अभिनंदन करता हूँ। परन्तु आपको इस मामले में काफी चिन्ता रखने की जरूरत है। मैंने जब चरखा देखने को माँगा, तो मेरी नजर के सामने तो सिर्फ खिलौने ही रखे गये ।

"पुरुष और स्त्री की शिक्षा के बारे में राज्य ने जो असाधारण प्रगति की है, उससे मुझे सानंदाश्चर्य हुआ है । चरखा और खादी के विषय में जो सार्वजनिक प्रश्न मैंने आपके सामने पेश किया है, उसका अध्ययन करने का मेरा आपसे सुझाव है। और यदि आपको इसमें कोई भूल न लगे तो मैं चाहता हूँ कि इसे अपने घर में बसाने लायक बल और प्रेम आपमें आये । जनता के साथ एकरूप होने के लिए चरखे को कड़ी बनाइए । वाइसराय और उनका चपरासी, महारानी साहिबा और उनका द्वारपाल जब तक नख-शिख खादी न पहनने लगें, तब तक मुझे सन्तोष नहीं होगा । मुझमें जो श्रद्धा है, मैं चाहता हूँ कि उसकी छूत आपको लगे । ऐसा होगा तो आपको तुरंत ज्ञात होगा कि भारत की घोर दरिद्रता इससे दूर होगी ।

"इस मानपत्र में बताया गया है कि महारानी साहिबा ने पशुओं का बलिदान देने का रिवाज बंद कर दिया है। इस बड़े कदम के लिए उन्हें मानपत्र देनेवालों की ओर से जो अभिनन्दन किया गया है, उसमें मैं भी अपना नम्र स्वर मिलाता हूँ । मैं ऐसा नहीं मानता कि शरीर के पोषण के लिए पशु का वध करना चाहिए । परन्तु ईश्वर के नाम पर और ईश्वर की सेवा के लिए जब उसका बलिदान दिया जाता है, तब तो यह मुझे सर्वथा राक्षसी कृत्य ही लगता है। ईश्वर बलिदान जरूर माँगता है, परन्तु वह पशुओं का नहीं, परन्तु हमारे भीतर के दुष्ट भावों का ।

"एक बार फिर आपके मानपत्रों के लिए आपका आभार मानता हूँ । जिस धीरज से आपने मेरा कथन सुना है, वह मैं कभी भूलूँगा नहीं । परन्तु आपसे सच्चा और सात्त्विक इनाम तो मैं यह माँगता हूँ कि वाईकोम के समान लड़नेवाली मंडली को सक्रिय सहायता दें ।"

इसके बाद म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र तो था ही । यह मानपत्र जिस पेटी में रखा गया था, वह कला का नमूना थी । शीशम की पेटी में हाथीदाँत का काम था । ढक्कन पर तो, जैसा मैं वर्णन कर चुका हूँ, हाथी और शंख होता ही, परन्तु चारों ओर हाथीदाँत से त्रावणकोर के सुन्दर दृश्य दिये गये थे । एक ओर त्रावणकोर के जंगल, दूसरी ओर मंदिर, तीसरी तरफ वह सुन्दर लम्बा सरोवर और उसमें की सुन्दर नावें तथा चौथी ओर नारियल तोड़ने को चढ़े हुए वीरों के साथ नारियल का वन ।

मानपत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी बोले:

"दस मिनट जल्दी आने के लिए आपसे माफी माँगता हूँ । जल्दी आना भी देर से आने जितना ही दोषयुक्त है । मुझे कई कार्यक्रम पूरे करने होते हैं, इसलिए निश्चित समय पर ही आना सब जगह संभव नहीं होता ।

"त्रावणकोर में जो कुछ थोड़ा-बहुत मैंने देखा है और जाना है, उससे मुझे आनन्द हुआ है। राजपरिवार के लिए मुझे आदर पैदा हुआ है। मित्रों से मैं कह रहा हूँ कि राजपरिवार की अनुपम सादगी देखकर मैं तो चकित हो गया हूँ । हमारे देश के बहुत-से रजवाड़ों के जीवन का मुझे अनुभव है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि यहाँ के रजवाड़े में व्याप्त सादगी के लिए मैं जरा भी तैयार नहीं था । मेरा खयाल है कि ऐसी दिलचस्प सादगी के बारे में मैं सार्वजनिक रूप से न बोलूँ तो मैं अनम्र कहलाऊँ ।

"मद्रास में मैंने कहा था कि मैं अपने-आपको भंगी मानता हूँ । वहाँ कोई हलका मुहल्ला-ढेढवाड़ा जैसा—है या नहीं, इसके लिए तलाश की । सारे शहर में तो घूमना संभव नहीं था, परन्तु ये स्थान तो मुझे आँखों देखने ही थे । मैंने ऐसे बहुत स्थान देखे । इनमें दो तो वहाँ की गंदगी के कारण खास तौर पर ध्यान खींचते थे ।

"एक प्रजा के तौर पर हमें शहरों में रहना नहीं आता । मल-मूत्र का उचित निपटारा करना हमें आता नहीं । प्रत्येक म्युनिसिपल सदस्य को अपने-आपको अपने शहर का स्वास्थ्य-रक्षक मानना चाहिए। अधिकांश रोग गंदगी, कूड़ा और खराब हवा के कारण और गंदे तथा अपेय पानी के कारण पैदा होते हैं । मैं त्रिची गया, तब जिस घर में मुझे ठहराया गया था, उसकी खिड़की में से नदी के ऊपर का जो दृश्य मैंने देखा, वह भयंकर था। और ऐसा तो रोज सबेरे होता था । मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह आप समझ गये होंगे । इस प्रकार दूषित हुआ नदी का पानी लोग पीते हैं क्या, इस बारे में पूछताछ की तो मालूम हुआ कि ऐसा ही होता था और उसके

प्राणघातक परिणाम होते थे । वहाँ के लोगों ने साफ पानी मुहैया करने की ओर जो लापरवाही रखी है, उससे तो मैं स्तंभित हो गया ।

"इसलिए आपसे कहता हूँ कि अपने शहर की सफाई की तरफ लापरवाह न रहना । भारत तो संसार के ऐसे देशों में से एक है, जहाँ मरी से कोई मरना नहीं चाहिए, क्योंकि हमारे यहाँ सूर्य भगवान् की कृपा है। हम उसका सदुपयोग करें, तो उससे डरने की जरूरत नहीं है। मगर हम तो उसके आगमन का विरोध करते हैं, धूप से दूर भागते हैं और ऐसे बन्द मकान में छिपकर बैठते हैं, जिसमें हवा न आ सके । इसीलिए मुझे यह देखकर आनन्द हुआ कि इस प्रदेश में लोग अलग-अलग झोंपड़ों में रहते हैं। मुझे पता नहीं कि सफाई के मामले में आपने कितना और क्या किया है।

"ऐसे एक मामले की तरफ, जिससे बच्चों की तंदुरुस्ती को खतरा हो सकता है, आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ । यह मामला है दूध का । दूध दुहने की हमारी पद्धति भी त्रुटिपूर्ण है।

"म्यूनिसिपल जीवन के प्रति मुझे प्रेम है। परन्तु मैं अपना सारा जीवन इस कार्य में नहीं दे सका, इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूँ ।

"मैंने म्युनिसिपल प्रशासन का अध्ययन किया है। दक्षिण अफ्रीका एक महान् देश है और वहाँ की आबोहवा सुन्दर है । वहाँ के कुछ निवासी बहुत उच्च कोटि के हैं और दुनिया में क्या हो रहा है, इससे परिचित रहनेवाले हैं । राजनैतिक दृष्टि से वहाँ का वातावरण इस समय घोर अंधकारमय है। फिर भी मुझे इसमें आशा की किरण दिखायी देती है और वहाँ रहनेवाले बहुत लोगों को भी ऐसा ही लगता है।

"परन्तु यह तो एक बीच की बात हुई । उनमें रंगभेद था और मैं उसका विरोध करता था । परन्तु म्युनिसिपल प्रशासन के मामले में मैंने उनसे बहुत सीखा था। प्रयत्न करके उन्होंने गंदे स्थानों को बगीचों में बदल दिया । जोहान्सबर्ग शहर एक सुन्दर नगर है। वहाँ के कितने ही घर आलीशान हैं। परन्तु जीवन इतना सुन्दर नहीं है। खदानों का प्रदेश इतना सुन्दर नहीं है। परन्तु स्वास्थ्य की रक्षा करना उन्हें आता है। वहाँ जब काला आजार की मरी भड़क उठी, तब उसे दबा देने के लिए पानी की तरह रुपया उन्होंने बहाया; और जब उन्हें मालूम हुआ कि यह रोग बाजार में घुस गया है, तब सारा बाजार जलाने में वे नहीं हिचकिचाये । ऐसा करके चौबीस घंटे में उन्होंने इस संक्रामक रोग को दबा दिया । इसे मैं म्युनिसिपैलिटी का उत्तम अर्थतन्त्र और उत्तम आरोग्यतन्त्र कहता हूँ । अगम वृद्धि इसी का नाम हैं ।

"राजनैतिक विषयों पर मैं वहुत बार बोलता हूँ, परन्तु उससे मुझे आनन्द नहीं होता । म्युनिसिपल जीवन और राजनैतिक जीवन में फर्क है। यह बात सही है कि यह अन्तर बहुत सूक्ष्म है; और भारत में तो हमें अकसर राजनैतिक जीवन में घुस जाना पड़ता है। परन्तु आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि म्युनिसिपल प्रवृत्ति का ध्येय लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा और काफी खुराक और शिक्षा देना होना चाहिए। शिक्षा पर अंकुश होना ही काफी नहीं है। बालकों का सर्वांगीण विकास करने का काम भी इनके क्षेत्र में होना चाहिए ।

"इसके अलावा पुलिस-दल भी इनके अधीन होना चाहिए । ऐसा नहीं है, यह बड़ी दुःखद स्थिति है। दक्षिण अफ्रीका के दो शहरों की म्युनिसिपैलिटियों का मुझे अनुभव है। मैं स्वेच्छा से उनका सेवक बना था । वहाँ पुलिस-दल पर इन लोगों का पूरा नियंत्रण था । ऐसे जीवन के लिए हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए । इनके कार्यक्षेत्र में केवल रास्तों पर रोशनी करना ही नहीं था । त्रावणकोर जैसे सुव्यवस्थित राज्य का यदि मैं मंत्री होऊँ तो प्रत्येक म्युनिसिपैलिटी को पुलिस का काम सौंप दूँ और ऐसा करके सम्बद्ध नगर को चोर-डाकुओं से संरक्षण दूँ ।

"आप सोचिए कि कोई भी चोरी किसलिए करता है? लोग स्वभाव से चोर नहीं हैं। वे चोरी की तरफ झुके, इसमें संयोग जिम्मेदार होते हैं।

"ये जो कुछ फुटकर विचार आपके सामने पेश किये हैं, उन पर उचित प्रतीत हो तो विचार करना ।

"आपने अपनी पाठशालाओं में चरखा चालू करने के बारे में प्रस्ताव किया है, इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ । उसे प्रत्येक पाठशाला में जारी करके उसे सफल बनाने की कोशिश करना । लोगों के साथ एक बनने के लिए चरखे जैसा दूसरा एक भी कामयाब साधन नहीं है। आप सबसे—मेरे देशी भाइयों और बहनों से ही नहीं, परन्तु मेरे पूरोपियन मित्रों से भी—यह कहता हूँ । ये लोग भी त्रावणकोर राज्य में कमाने के लिए आते हैं। इसलिए आपसे कहता हूँ कि खादी को अपनाना बहुत बड़ा काम नहीं है। भारतीय लोग भारत में जो कुछ करते हैं, वह यदि अनैतिक न हो तो आप भी कीजिए । यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। जिस देश में आप रहते हैं, उसमें बननेवाली चीजों को पसन्द करने में कोई बुराई नहीं है। आप जितनी मात्रा में खादी खरीदेंगे, उतनी मात्रा में भूखों मरते हुए अनेक लोगों की जेब में थोड़े-से पैसे जायँगे । इसमें आप कोई गलत काम नहीं करते । मुलायम खादी भी आसानी से मिल सकती है । मुझे आशा है कि इस वर्ष के अन्त तक तो आप-हम ढाका की मलमल और शबनम जैसी खादी पैदा करने लग जायँगे। आज भी आंध्र में बहुत बारीक सूत काता

जाता है। उससे बननेवाला कपड़ा पेरिस की बढ़िया मलमल से बढ़िया होता है। थोड़े ही समय में आंध्र की मलमल उससे टक्कर लेगी। भारत देश सौंदर्य, कला और कौशल से भरा है। इन चीजों का अभिमानपूर्वक जतन करना और ऐसा करके गरीबों के आशीर्वाद प्राप्त करना, क्योंकि गरीबों के आशीर्वाद ही प्रजा को सुशोभित करते हैं।"

लॉ कॉलेज में दिया गया भाषण तो ऐसा था, जिसे सुनने की कानून के अनेक रसिकों की इच्छा हो। उसमें सैकड़ों वकील और बाहर के हजारों स्त्री-पुरुष आये थे। गांधीजी अपने पुराने धंधे के मित्रों को देखकर जरा खिलखिलाये और अत्यंत लम्बा बोले:

"आपके मानपत्र के लिए आपका आभार मानता हूँ। ऐसा लगता है कि जो गुण मुझमें नहीं थे वे मुझमें थे, ऐसी तर्क-बुद्धि दौड़ाने का काम कानून के पंडित ही कर सकते हैं। आपने मेरी विद्यार्थी-जीवन की उज्ज्वल कारगुजारी का उल्लेख किया है। इसलिए अपने पिछले जीवन के बारे में थोड़ा-सा कहने की इच्छा रखता हूँ। मैं पहले से ही कह दूँ कि इससे मुझे जरा भी शर्म महसूस नहीं होती।

"मेरी कारगुजारी उज्ज्वल नहीं थी। अपनी सारी जिन्दगी में मैं ठूँठ ही रहा हूँ। जब मैं विलायत गया, तब आप नहीं मानेंगे, परन्तु मैं सच-सच कहता हूँ कि पूरे दो वाक्य भी मुझे शुद्ध बोलना नहीं आता था। आगबोट का तो मुझे पहला ही अनुभव था। अपने जीवन में मैंने पहली बार समुद्र-यात्रा की थी। आगबोट में मैं आलसी-अहदी था। मुझे डर ही रहा करता था कि बोलने में मैं व्याकरण की या उच्चारण की भूलें तो नहीं कर दूँगा। मेरे रवाना होने से पहले मेरे विद्यार्थी मित्रों ने मुझे मानपत्र दिया था। वह मानपत्र इसलिए नहीं दिया गया था कि मैं बहुत होशियार विद्यार्थी था, परन्तु इसलिए दिया गया था कि विलायत जानेवाला मैं सबसे पहला था। मानपत्र का उत्तर देते समय मैं कुछ न कुछ बड़बड़ाया, मेरी जबान तुतलाने लगी और मेरे पैर काँपने लगे। मैं उत्तर दे ही न सका। मुझमें कोई मानसिक दुर्बलता हो, सो बात नहीं थी, परन्तु 'थैंक यू' कहने जितनी हिम्मत भी मेरे में नहीं थी। उस समय सारा काम गुजराती भाषा में ही होता था। (आजकल की तरह मातृभाषा भूल जाने जितनी 'प्रगति' हमने नहीं की थी !) तो भी मेरी यह स्थिति थी। विलायत में मैं तीन वर्ष रहा, तो भी आलसी और अहदी की तरह ही। मैं किसी जगह कुछ बोल नहीं सकता था। कोई युवती सामने मिल जाती तो मैं शरमा जाता, क्योंकि सभ्यता से बात करना भी मुझे नहीं आता था। अर्थहीन विषयों पर बोलना मुझे नहीं आता था, जब कि आजकल तो जमाना ऐसा है कि सामनेवाले आदमी के गुणगान करने में ही सभ्यता समायी हुई है, ऐसा सब मानते हैं। मेरी विद्यार्थी अवस्था की कारगुजारी इस तरह पूरी हुई।

"फिर दूसरा प्रवास शुरू हुआ। मैं वकालत का काम कहाँ सीखूँ? मैंने सर फीरोजशाह मेहता का नाम सुना था। सब कहते थे कि फौजदारी कानून के नियम और शहादत का कानून तो उनकी उँगलियों पर हैं, और मुझे तो इनका कुछ ज्ञान नहीं था। उस समय स्वर्गीय फ्रेडरिक पिकट का नाम सुना। यद्यपि वे ब्रिटिश अनुदार दल के थे, परन्तु कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के सदस्य भी थे। मैं उनसे मिला और उनसे अपनी परेशानी कही। उनके सुन्दर सफेद दाढ़ी थी। एक बुजुर्ग की तरह उन्होंने मेरे साथ बात की।

" 'मैं क्या कहूँ? समन्स शब्द से मैं तो काँपता हूँ। मुकदमा लड़ना मुझे आता ही नहीं।'—मैंने कहा।

"शिक्षा और आश्वसन देते हुए उन्होंने कहा: 'लड़के, तुझे फीरोजशाह मेहता तो बनना नहीं है न?'

" 'बिलकुल नहीं। मैं तो उस गली में कदम रखने की आशा भी नहीं रखता।'[१]

" 'भारत में वकील-बैरिस्टर बहुत हैं।'—उन्होंने कहा।

"यह बात चालीस वर्ष पहले की है। मक्खी मारनेवाले बैरिस्टर की क्या दशा हो सकती है, इसका मुझे आज खयाल आता है।

"उन्होंने कहा: 'जो मुकदमा हाथ में आये, उसके सम्बन्धी कानूनी बारीकियों और दावपेचों से मत घबराना, परन्तु ब्योरे का अच्छी तरह अध्ययन करना और मनुष्य-स्वभाव का भी अध्ययन करना। इतना करेगा तो तू ठीक काम कर सकेगा।'

"यह मुलाकात मेरे लिए स्मरणीय सिद्ध हुई। उन्होंने मुझे कुछ पुस्तकें पढ़ने की सिफारिश की। एक थी लॅवेटर की मुखसामुद्रिक विद्या।[२] दूसरी इसी विषय पर शेमल पॅनिक की पुस्तक थी। मैं ये दोनों पढ़ गया, परन्तु मैं कुछ नहीं समझा। परन्तु मैं तो श्रद्धालु मनुष्य था। पिंकट की शुभेच्छाओं के लिए मुझे उनके प्रति आदर था। इसलिए मुझसे हो सका, उतनी लगन से मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। उनके कहने का भावार्थ मैंने समझ लिया था। 'अपने मुवक्किल को अच्छी तरह जान लो। देखना कहीं वह तुम्हें पट्टी तो नहीं पढ़ा रहा है? विरोधी पक्ष को पहचानना आसान है, परन्तु अपने मुवक्किल को पहचानना उतना आसान नहीं है। मामूली वकील मुवक्किल जो कहे उसे मान लेता है और जैसा वह कहे, वैसा करने को तैयार हो जाता है। परन्तु जो ऐसा करता है, वह मुवक्किल खो देता है और दावा हार जाता है।'

"मैंने यह सुनहरी नसीहत मान ली। जो मेरे मुवक्किल कह दें सो ब्रह्मवाक्य, यह मैंने कभी नहीं माना। मैं अपने मुवक्किलों से जिरह करता, उनके साथ चर्चा करता और उनसे कहता कि अपने मामले के कमजोर मुद्दे मुझसे पहले कहो। जो मुद्दे तुम्हारे पक्ष में हों, उनकी बात मत करो। और मैं यह भी कहता कि यदि तुम्हारे मुद्दे सच्चे न हों तो कृपा करके मेरे दफतर से चले जाओ। मुझे गलत रास्ते पर उनके चलाये नहीं चलना था।

"दूसरी बात जो मैंने सीखी, वह यह थी कि सिर्फ रुपया कमाने की खातिर ही वकालत नहीं करनी, परन्तु जो गरीब हों, कुचले हुए हों और जिन पर अन्याय हो रहा हो, उनकी मदद करनी। ब्रूम जैसे नामी वकील ने कहा है कि अपने मुवक्किल के मुकदमे का इंसाफ तुम न करो। तुम्हारा, वकील का काम तो उसके गुण-दोषों की छानबीन करना है, और यदि तुम्हें ऐसा लगे कि केस निकम्मा है तो उसे फेंक दो। अपनी अन्तरात्मा शुद्ध रखो, रुपये के लिए अपने-आपको मत बेचो। मुवक्किल से कहना: 'तुमने मुझे मेरी फीस का रुपया दे दिया, अब तुम जाओ और मुझे शिक्षा देने मत बैठो।' यदि तुम इस प्रकार अलगपन का बरताव रखोगे तो तुम्हारी कारगुजारी सफल होगी और पिछली जिन्दगी में अन्तरात्मा नहीं टोंचेगी।

"मैंने वकीलों और उनकी रीति-नीति के बारे में कहा। सो किसलिए? मैंने इसलिए कहा कि इनके कपट-जाल का मुझे पता है। मेरी मान्यता में मिलावट नहीं है। मैं जानता हूँ कि यदि चाहे तो वकील बहुत उपयोगी सेवा कर सकता है। मैं जानता हूँ कि कितने ही नामांकित वकीलों ने देश-सेवा की है। मैं सर फीरोज-शाह महता, बदरुद्दीन तैयबजी वगैरह का उल्लेख कर रहा हूँ। यह बात नहीं कि वे उत्तम कक्षा के वकील ही थे। वे उच्च कोटि के वक्ता थे और गवर्नर से भी घबराते नहीं थे।

"परन्तु मैंने अपने सामने जो आदर्श रखा था, वह तो दूसरा ही था। मैं यहाँ सर फीरोजशाह के राजनैतिक जीवन की बात नहीं करता, परन्तु उनमें जो असाधारण सामान्य बुद्धि थी, उसकी बात करता हूँ। सच्चे और कमजोर मुद्दे पहचानने की उनमें निर्णयात्मक शक्ति थी। इसमें उनका कोई सानी नहीं था। यह आदर्श में आपके सामने रखना चाहता हूँ। मनमोहन घोष गरीबों के बेली थे। उनका मुवक्किल गरीब होता, तो उससे फीस लेना वे हल्का काम मानते थे। बंगाल में जब नील-उत्पादकों पर जुल्म होता, तब उन्होंने इन लोगों का पक्ष लिया था। मैं चाहता हूँ कि आप ऐसे मनुष्यों के जीवन का अध्ययन करें और उनसे सवाये बनें। आपके जिन पूर्वजों का आपको उत्तराधिकार मिला है, उनसे बढ़िया काम करके दिखाइए। आप गरीबों के बेली बनें, तभी आप अपने पेशे को सुशोभित कर सकेंगे। आज अधिकांश वकीलों के सामने तो एक ही दृष्टि होती है—आजीविका

कैसे प्राप्त करें और आगे कैसे बढ़ें। परंतु मैं तो कहता हूँ कि आप मानव-जाति और देश की सेवा के लिए अपना धंधा करें—झगड़े बढ़ाने के लिए नहीं।

"मैं जब अपने वकालती जीवन का विचार करता हूँ तब आदमियों के साथ सम्बद्ध लोगों का विचार करते हुए काँपता हूँ। न्यायाधीश अप्रामणिक नहीं होते और यह भी नहीं कि न्याय नहीं करते, परंतु काम को ढील में डालने की वकीलों की तरकीबों का वे सामना नहीं कर सकते। यह त्रुटि मौजूदा न्याय-पद्धति में ही रही है। आज लोगों को न्याय मिलता है, तब भी उसे प्राप्त करने के लिए वे काफी चूसे जाते हैं। कहतावत है कि जीतता वही है, जिसकी शैली बड़ी है। मैंने अनुभव किया है कि यह कहावत सच्ची है और इसलिए न्याय प्राप्त करना कठिन है। इसलिए मुझे लगा कि जीवन में यह धंधा करने से अच्छे और कई काम विद्यमान हैं। परंतु मैं इस हद तक जाने को नहीं कहता। मेरा तो इतना ही कहना है कि अपने मुकक्किल की आप अच्छी तरह परीक्षा लें। पद्धति दूषित होने पर भी आप इसके लिए जरूर कुछ कर सकेंगे।

"भारत के सब विद्यार्थियों के सामने दो बातें रखता हूँ। अपना ज्ञान सेवा के लिए इस्तेमाल करो और केवल आजीविका प्राप्त करने के लिए उसका दुरुपयोग मत करो। ज्ञान वह कहलाता है, जो हमारे नैतिक जीवन को ऊँचा उठाये, जो हमें आत्मा की प्रतीति कराये और जिससे हमें यह भाव हो कि हमें देखनेवाला हमारा सर्जनहार है।

"मेरी यह नम्र सीख तुम्हारे गले उतरे, तो तुम्हें एक और धंधा सीख लेना पड़ेगा। वह है शरीर-श्रम—हाथ-पैरों की मेहनत, जिससे शरीर को पोषण मिले। मस्तिष्क के विकास के लिए मांस-मछली की जरूरत नहीं है। शरीर का पोषण शरीर के श्रम से ही प्राप्त करना चाहिए। टॉल्स्टॉय ने किसी जगह कहा है कि जो मनुष्य काम करे, वही रोटी पाये। ऐसा कहनेवाला महान् है। भगवद्गीता भी यही कहती है। वह कहती है कि अपने शरीर को जितना कसोगे, उतने ही तुम अधिक उजले दिखाई दोगे और अधिक पचा सकोगे। तुम्हारे टेनिस कोर्ट यह परिणाम नहीं ला सकेंगे। परंतु खेतों में और रास्तों में काम करो और जितना अधिक करोगे, उतना ही तुम्हें अपने शरीर-श्रम और त्याग के फल का भंडार मिलेगा।

"इसके लिए मैंने एक अमूल्य वस्तु की खोज की है । वह है चरखा । आज लोग लच्छेदार भाषण देनेवाले गांधी की पूजा करते हैं, परन्तु काम करनेवाले और भंगी-गांधी को तो कोई पुछता ही नहीं । यहाँ आने को जब मैं सहमत हुआ; तब यह बात तुम्हारे मन में ठसाने का मैंने विचार किया था । मैंने अपने वकालत के

दिनों में कोई गलत काम नहीं किया था और इसीलिए तुमसे भी आज कहता हूँ कि तुम्हें अपने-प्रापकी और पड़ोसी की सेवा करनी हो तो जो मैं कह रहा हूँ, उसे मानना । भारत की मुक्ति उत्तम भाषणों से नहीं होगी, परन्तु केवल चरखे से ही होगी । भारत में जो भुखमरी है, उसका मुख्य कारण आलस्य है । आलसी मैं उसे कहता हूँ, जो उपन्यासों के पन्नों पर पन्ने पढ़ते हैं और बेन्थाम की थियरी ऑफ लेजिस्लेशन पढ़ते हैं। मैं यह नहीं कहता कि इसे पढ़ने के लिए समय न निकालो, परन्तु शरीर-श्रम के लिए भी समय निकालना चाहिए। अगर गॉल्फ खेलने के लिए दो घंटे निकाल सकते हो तो चरखा चलाने के लिए क्यों नहीं निकाल सकते? एक अंग्रेज ने कहा है कि कातना एक उत्तम शौक[3] है । मेरा सिर उसके सामने झुक गया । मगर चरखा कातना इस शौक से कुछ विशेष है। भारत में तो वह जनता के और हमारे बीच की कड़ी है। उन्हें मेरी आँखों में चरखा दिखाई देता है। वे मानते हैं कि उनके लिए मेरे पास कोई सुन्दर वस्तु है। मैं भी एक मजदूर और गरीब आदमी हूँ, यह जानकर उन्हें आश्वासन मिलता है ।

"तुम वकील जरूर बनो, परन्तु गरीबों और दलितों के लिए अपने अन्तर में स्थान रखना । मैं भी एक समय वकील था, इसलिए अधिकारपूर्वक तुमसे कहता हूँ कि तुम इन सब बातों पर विचार करो और चरखे को अपनाओ । विदेशी वस्त्र पहननेवाले वकीलों पर मुझे दया आती है । आप तो देश के मार्गदर्शक हैं । आप ही विदेशी कपड़े पहनेंगे तो देश को आप कैसे रास्ता दिखायेंगे? आप क्या चाहते हैं? लोग प्रमाण-शास्त्र पढें या घास काटें? लोग दंताली लें या चरखा लें? अपने कानून के पोथों से आप उनका पेट नहीं भर सकेंगे । जो कोई मनुष्य रोज आध घंटा भी कातता है, वह एकाघ झादमी को रोजी देता है । गरीबों को रुपये का दान मत देना, परन्तु उनसे काम लो या उन्हें काम दो तो ही आप पर ईश्वर के आशीर्वाद की वर्षा होगी ।"

---

१. I do not even hope to touch the hem of his garment.

२. Physiognomy

३. Hobby

कन्याकुसारी के रास्ते[१]

त्रिवेन्द्रम् तक गये तो कन्याकुमारी गये बिना लौटा जाय? क्योंकि वहाँ से कन्याकुमारी तो केवल ५७ मील है। रास्ते में नागरकोइल—राज्य का दूसरा मुख्य शहर और मजदूरों का बड़ा केंद्र-आता है। उन लोगों का तो निमंत्रण था ही। परन्तु सारे रास्ते थोड़े-थोड़े मील की दूरी पर छोटे-छोटे गाँव और कस्बे आते, वे भी मानपत्र देते। ऐसे बीसियों मानपत्र लेते हुए गांधीजी नागरकोइल पहुँचे। अलवाई में एक भी चरखा ढूँढने पर नहीं मिला था, त्रिवेन्द्रम् में तो कातने का एक रसिक अद्भुत पूनियाँ और अत्यन्त बारीक सूत की नारियल की सली और हाथीदाँत की चक्रीवाली कई कूकड़ियाँ लेकर आया था और चरखा भी लाया था। परन्तु नागरकोईल जाते हुए बलरामपुरम् स्थान ऐसा आया, जहाँ हजारों अंत्यज इकट्ठे हुए थे और जहाँ अंत्यजों की पाठशाला में कई चरखे चल रहे थे और पास के एक हाट में बिकते हुए हाथकते सूत के अनेक थान बुने जाते थे।

---

१. ता. १४-३-१९२५

नागरकोइल में मनुष्यों का समूह प्रचंड था, सभा होना ही असंभव लगा था, फिर भी हम कन्याकुमारी जाकर आये तो यह सागर भी शान्त होकर बैठा था!

रास्ते में शचीन्द्र नामक एक तीर्थ स्थान है। वहाँ एक अजब दृश्य देखा। मन्दिर के आसपास के रास्ते की हद के आगे एक हजार अंत्यजों की भीड़ थी। मानपत्र लेकर खड़े थे। शोरगुल में मानपत्र क्या लें और जवाब भी क्या दें? गांधीजी मोटर में दसेक मिनट खड़े रहे तो शांति हो गयी। इसलिए एक आदमी ने कहा: "सवर्ण हमें यह रास्ता पार नहीं करने देते।" गांधीजी पूछते हैं: "सवर्ण कहाँ हैं?" अंत्यजों से सटी हुई सवर्णों की भीड़ खड़ी थी! गांधीजी आये, तब उन्होंने तो दोनों समूह मिले-जुले देखे! उत्साहमत्त होकर घुल-मिल जायँ, एक-दूसरे को छू भी लें, परन्तु उत्साह का अवसर बीता कि फिर प्रतिष्ठा की अस्पृश्यता अपनाकर बैठें!

कन्याकुमारी पर गांधीजी ने लेख लिखा है,* इसलिए मुझे उस बारे में पागल होकर लिखने का मौका नहीं रहा। परन्तु गांधीजी के वर्णन में एक-दो बातें जोड़ने की घृष्टता करूँ? गांधीजी ने भारतमाता के शिखर पर कश्मीर और हिन्दूकुश बताये हैं। मैं तो कैलाश को ही मानता हूँ। और कैलाशपति शिव को शिखर पर बैठाकर उन्हें जीतनेवाली कन्याकुमारी उमा को भारतमाता के चरणों में बैठाने में भी कुछ अजीब सार्थकता दिखाई

देती है। देश का पादस्पर्श करने पर तपस्या के दर्शन और शिखर पर पहुँचने पर भी तपस्या के दर्शन होते हैं, यह तो स्पष्ट ही है।

---

* देखिए परिशिष्ट १

तपस्विनी उमा के दर्शन तो मुझे भी नहीं हुए। प्रदक्षिणा तो अँधेरे में मशाल की मदद से मैं कर आया, परन्तु लौटने पर सुना कि सत्याग्रहियों को तो घुसने ही नहीं देते। सत्याग्रही का अर्थ है वाईकोम-सत्याग्रहवाले!

कन्याकुमारी से लौटकर नागरकोइल में एकत्रित लोगों की सभा में गांधीजी बोले:

"आप सबके मानपत्रों और उनमें प्रकट की गयी भावनाओं के लिए मैं आपका अन्त:करणपूर्वक आभार मानता हूँ। अलीभाइयों में से एक भी इस प्रवास में मेरे साथ नहीं हैं, इसका मुझे अफसोस है। परन्तु वे कोई इस बार आ नहीं सकते थे।

"मेरी अनेक प्रवृत्तियों का आपने उल्लेख किया है। उनमें से एक प्रवृत्ति के सिलसिले में मैं वाईकोम और फिर सारे त्रावणकोर में आया हूँ। मैंने कई बार कहा है और आज भी कहता हूँ कि अस्पृश्यता और अनुपगम्यता हिन्दू-धर्म का सबसे बड़ा कलंक है और जब तक यह अस्तित्व में होगा, तब तक प्रत्येक हिन्दू को शर्म से सिर नीचा करना होगा। इसलिए आप सबसे, जो सवर्ण हिन्दू माने जाते हैं, मैं कहता हूँ कि यह बुराई दूर करने के लिए जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उन्हें आपना हार्दिक समर्थन दीजिए। मैंने कई बार कहा है कि यदि मुझे लगे कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का एक अंग है तो मैं इस धर्म को छोड़ दूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरी ऐसी कोशिश हो सके कि इस प्रश्न पर जितना मुझे महसूस हो रहा है, उतना सभी हिन्दू स्त्री-पुरुषों को होने लगे।

"मैं कन्याकुमारी से आ रहा हूँ। वहाँ मैं मन्दिर देखने गया। परन्तु जो अस्पृश्य और अनुपगम्य माने जाते हैं, वे उस मन्दिर में नहीं जा सकते। जब मैं ऐसा जाना, तब मुझे आघात पहुँचा। मैं नहीं मानता कि जिस प्रभु को और सबकी तरह हिन्दू भी भजते हैं, उसके मन में मनुष्य-मनुष्य के बीच ऐसे भेदभाव होंगे। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि जब तक यह कलंक बिलकुल मिट न जाय, तब तक आप शांत मत होना।

"आपने अपने मानपत्र में लोगों की गरीबी और उसके उन्मूलन के लिए चरखे के सिवा और कोई उपाय न होने के मेरे कथन का उल्लेख किया है। मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि देश के एक भाग में, जो किसी समय

कताई और बुनाई के लिए मशहूर था, अब कातनेवाला वर्ग खत्म हो गया है। जब मैं राजाओं, आलसियों, पुरुषों और स्त्रियों तथा लड़के-लड़कियों से रोज आधा घंटे कातने को कहता हूँ, तब उसमें भावार्थ यह होता है कि चरखे को आपने आग लगायी है तो इस पाप का प्रायश्चित्त कीजिए। हम मध्यमवर्ग के लोग और राजा जब तक चरखा नहीं कातने लगते, तब तक देश के हजारों गरीबों को ऐसा करने के लिए हम नहीं कह सकते और जापान और बम्बई का हम पर से पंजा दूर करने के लिए इस धंधे को लाभदायक नहीं बना सकते । यदि हमें लोगों का सचमुच दर्द महसूस होता हो और उनका सम्पर्क बनाये रखना हो, तो चरखा अपनाना और उससे पैदा होनेवाला सूत बुनना हमारा धर्म है । आप खादी खरीदते हैं, तव प्रत्येक गज पर गरीब आदमी की जेब में दो-तीन आने डालते हैं। इसलिए मैं आशा रखता हूँ कि मेरे प्रति ममता बताने के लिए यहाँ आये और एकत्र हुए प्रत्येक व्यक्ति को मेरा यह सन्देश सबके पास पहुँचाना चाहिए और कातना शुरू करने में जरा भी विलंब नहीं करना चाहिए ।

"इतने ही महत्त्व की बात हिन्दू-मुसलिम-एकता की है। जब मैं हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य की बात करता हूँ, तब मेरे मन में भारत में रहनेवाले सभी लोगों के ऐक्य की बात होती है, परन्तु सौभाग्य से आपके यहाँ तो यह प्रश्न ही नहीं है, इसलिए मैं इस बारे में कुछ नहीं कहता । यहाँ की म्युनिसिपैलिटी लोगों की भलाई और शहर की सफाई के लिए जो कदम उठा रही है, उसके लिए उसे मुबारकवाद देता हूँ। मैं फिर इन सब मानपत्रों के लिए आप सबका आभार मानता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह मेरा सादा उपदेश—जो सारे भारत को दे रहा हूँ—स्वीकार करने की आपको बुद्धि दे ।

"एक मित्र याद दिलाते हैं कि स्कॉच क्रिश्चियन कॉलेज के विद्यार्थियों की तरफ से दिये गये मानपत्र के विषय में मैं कुछ बोलूँ । मैं जानता हूँ कि विद्यार्थियों के और मेरे बीच में मजबूत गाँठ बँधी हुई है । मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ-वहाँ विद्यार्थी और गरीब लोग हमेशा मेरे पास आते हैं । और विद्यार्थी तो मैं कभी-कभी कटु सत्य कहता हूँ, तो भी सुन लेते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी बात वे धीरज से सुन तो जरूर लेते हैं, परन्तु उसे हमेशा अमल में नहीं लाते । विद्यार्थी मित्रो, भारत का भविष्य तुम्हारे हाथों में है। तुम पढ़ाई को गाँवों की दृष्टि से समझने की कोशिश करो । अपनी लम्बी छुट्टियों में तुम गाँवों में जाओ, वहाँ के लोगों के जीवन का अध्ययन करो, उनके साथ एकरूप होओ और उनके दुःख में साथी बनो । इसीसे तुम्हें व्यावहारिक ज्ञान मिलेगा, स्वास्थ्य-रक्षा के बारे में तुमने कॉलेज में जो कुछ सीखा हो, उसे अमल में लाओ । अपने साथ चरखा ले जाओ और देहातियों के बीच में बैठकर, कातकर उन्हें समझाओ कि इसका क्या अर्थ है । अपने साथ थोड़ी-सी खादी भी ले जाओ

और खादी का अर्थशास्त्र उन्हें समझाओ । थोड़ी-सी दवाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करके उन्हें भी अपने साथ ले जाओ और गरीबों और बीमारों को दो । उनके तालाबों और कुओं की जाँच करो और यदि तुम्हें मालूम हो—और मुझे विश्वास है कि मालूम जरूर पड़ेगा—कि उनका पानी शुद्ध नहीं है, तो उसे शुद्ध करने के लिए कदम उठाओ। हाथ में झाड़ू लो और बोले बिना स्वयं अपने हाथ से गंदगी दूर करके उन्हें पदार्थपाठ सिखाओ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि तुम अपनी लम्बी छुट्टियों में इतना करोगे तो तुम्हारे अध्ययन से कहीं अधिक कीमती काम तुमने किया, ऐसा अनुभव होगा।"

त्रिवेन्द्रम् से मोटर के रास्ते वापस वाईकोम गये,* जिससे गांधीजी चंगानूर और कोट्टायम के दोनों ईसाई-केंद्रों में जा सके। ईसाई मित्रों के साथ अनेक बातें हुईं। सत्याग्रह में मदद करने की उनकी उत्सुकता गांधीजी ने कैसे भंग कर दी, इस बारे में गांधीजी का स्पष्टीकरण जानने की सबकी इच्छा थी। "शीआ-सुन्नी के झगड़े में मैं या आप पड़ते हैं?" यह तर्क करके गांधीजी ने खूब समझाया और राजनैतिक ढंग से इस प्रश्न का निपटारा कराने में मदद देने का उन्हें सुझाव दिया।

---

* ता. १५-३-१९२५

१८-३-१९२५

वाईकोम से लौटते समय वहाँ के सनातनी नाम्बूद्रीपादों ने गांधीजी से मिलने और उनके माँगें हुए शास्त्र-प्रमाण देने की माँग की थी। गांधीजी ने आभार मानते हुए बताया था कि आज आप रुढ़ि का जिस तरह अमल कर रहे हैं, उसके लिए श्री शंकराचार्य का प्रमाण लायें तो मैं खुशी से देखूँगा। इसलिए गांधीजी उनसे मिलने गये और नाम्बूद्रिपादों ने 'शांकरस्मृति' नामक ग्रंथ निकाला और उसमें से अग्निवेदी के आगे रजस्वला, सूतकी, चांडाल आदि न जा सके, वास्तुघर के आगे से इतने गज दूर रहना चाहिए, ऐसी उक्तियाँ बतायीं। परन्तु मंदिर का नाम-निशान न मिला; और न ऐसा उल्लेख मिला कि आज के शीया और पारिया चांडाल हैं। परन्तु उन्होंने आग्रह रखा कि "आज की रुढ़ि के अक्षरश: प्रमाण नहीं मिलते। हम तो इन प्रमाणों से आज की रुढ़ि का अनुमान लगाते हैं।" इसके सिवा यह भी बताया कि "हमारी रुढ़ियाँ तो इन प्रमाणों से भी पहले की हैं, इसलिए यह प्रमाण अधूरा मालूम हो, तो भी हम रुढ़ि नहीं छोड़ेंगे।"

गांधीजी: "आप मुक्त हैं और मैं बंधा हुआ हूँ। परन्तु जान लीजिए कि यह कोई गुप्त मंत्रणा नहीं है। मैं यह सब दुनिया के सामने रखूँगा और यह बताने के लिए कि सनातनियों की स्थिति बेढंगी है, कदम उठाने के लिए सरकार से कहूँगा।"

जवाब: "हमारे ये आधार जहाँ तक अनुपगम्यता के सामान्य प्रश्न से संबंध रखते हैं, वहाँ तक ठीक हैं। यह सही है कि इनमें रास्तों का उल्लेख नहीं है।"

गांधीजी: "ये सारे आधार वही कहते हैं, जो मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य कहते हैं। आपको तो मुझे वे आधार बताने चाहिए, जिनमें आपके अपनाये हुए रवैये का समर्थन किया गया हो । आप तो यह कहकर हट जाना चाहते हैं कि शास्त्रों का आधार है । मेरी माता या पत्नी रजस्वला हो तो मैं उससे दूर रहूँ—भागूँ—वह मुझसे नहीं । अस्पृश्यों से बचना हो तो हम खुद दूर रहें । किसीको ५० गज दूर रहना हो तो हम ५० गज दूर रहें; सामनेवाले को न कहें कि 'तू ५० गज दूर भाग।' "

जवाब: "परन्तु मन्दिर किस तरह दूर भाग सकते हैं?"

गांधीजी: "इसका अर्थ यह कि इन प्रमाणों में मन्दिरों का समावेश ही नहीं होता । और अभी तो पहले यह सिद्ध होना चाहिए कि शांकरस्मृति भी श्रीमत् शंकराचार्य का प्रमाणभूत ग्रंथ है ही।"

राजाजी: "ये आधार आधारभूत हैं या नहीं और कुछ मनुष्य केवल जन्म के ही कारण कुछ रास्तों पर गुजर नहीं सकते, ऐसी केरल के सनातनियों की आपत्ति साधार है या नहीं, यह निश्चित करने के लिए इन आधारों वगैरह के बारे में किसी पंडित का मत प्राप्त करने की सूचना अब आप स्वीकार करते हैं?"

गांधीजी: (केरल के कार्यकर्ताओं को सम्बोधन करके) "हृदय-विहीन बुद्धि वेश्या[१] जैसी है । अब तो आप ही लोकमत प्राप्त करें । इस प्रदेश में जगह-जगह सभाएँ करें और आवेदन-पत्र भरायें । इस प्रदेश के साठ हजार ब्राह्मणों में से आधों के हस्ताक्षर भी आप प्राप्त कर लेंगे, तो काफी है । सरकार रास्ते खोल देने के पक्ष में है, परन्तु इसके लिए वह कानून बनाने की जरूरत मानती है । वह कहती है कि यह यकीन हुए बिना कि ऐसे कानून के पीछे लोकमत है, कानून बनाना या राज्य की ओर से घोषणा करना ठीक नहीं है । ऐसा करके वह हमारा सवाल निपटाने का रास्ता बताती है । अब आप लोकमत प्राप्त करके सरकार को ही बता दीजिए कि वह जो मानती है, वह ठीक नहीं है।"

आश्रम में पुलयों की सभा रखी गयी थी ।[२] उसमें उन्होंने गांधीजी को मानपत्र दिया । गांधीजी एक के बाद एक सवाल पूछने लगे: "तुममें से कितने पढ़ सकते हो?" "कितने शराब पीते हो?" "कितने ताड़ी निकालते हो?" "कितने अपनी जमीन जोतते हो?" "मुर्दार जानवर का मांस खानेवाले कितने हैं?"

---

१. Intellect divorced from the heart is a prostitute.

२. ता. १७-३-१९२५

फिर उन्हें सम्बोधन करके बोले:

"तुमसे यहाँ मिल सका, इससे और तुम्हारे मानपत्र से मुझे बहुत आनन्द हुआ, क्योंकि इसी तरह तुम्हारे और मेरे बीच सम्बन्ध कायम किया जा सकता है ।

"देश के इस भाग में जो लोग अस्पृश्यता का एक प्रकार से उन्मूलन करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, उनके दुःख में भाग लेने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। बहुत हिन्दू यह मानते हैं कि तुम्हारा स्पर्श करने में पाप है। मैं अपने को हिन्दू मानता हूँ, परन्तु यह कहने या मानने को ही पाप समझता हूँ कि तुम्हें छूने में पाप है। यह कभी हो ही नहीं सकता कि किसी भी मनुष्य को छूने में पाप होता है। कोई मनुष्य गंदा हो तो उसे न छूएँ, कोई छूत

के रोग से पीड़ित हो, तो उसे न छूएँ ; परन्तु यह तो हरगिज नहीं कह सकते कि इन्हें छूने में पाप है। ऐसे किसी मनुष्य को छूने से उसका दुःख हल्का होता हो या उसे दवा पिलाने के लिए उसे छूना पड़े, तो यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें कोई पापकर्म हो गया।

"परन्तु जो अपने को सवर्ण हिन्दू कहते हैं, वे तुम्हें क्यों नहीं छूते, यह यहाँ नहीं कहना चाहता। उलटे तुम्हें यह कहना चाहता हूँ कि तुम ऐसे किस तरह बनो, जिससे सब तुम्हें इज्जत की नजर से देखें। ये लोग कहते हैं कि तुम गंदे रहते हो, शराब पीते हो, मुर्दार जानवर का मांस खाते हो और गाय का मांस खाते हो, इसलिए वे तुम्हें नहीं छूते। मैं जानता हूँ कि यह तो केवल उनका बहाना ही है, क्योंकि ऐसे बहुत-से सवर्ण हिन्दू हैं, जो गंदे होते हैं, जो शराब पीते हैं, जो गाय का मांस खाते हैं और जो इससे भी हलके काम करते हैं; और फिर भी ये लोग अछूत नहीं माने जाते। ऐसा करके मनुष्य मनुष्य के साथ अन्याय करता है। परन्तु तुमसे तो मुझे इतना ही कहना है कि तुम इस तरह से रहो-सहो, जिससे कोई कह ही न सके कि ऊपर बताये हुए दुर्गुण तुममें हैं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम गौ-मांस छोड़ दो। कभी मुर्दार मांस न खाना। ऐसा मांस अक्सर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। मेरी मानो, तो मैं तो कहूँगा कि तुम मांस ही न खाओ। ईश्वर ने जानवरों को बनाया है, तो हमारे खाने के लिए नहीं, परन्तु सृष्टि को सुन्दर बनाने के लिए बनाया है। हमारे लिए तो प्रभु ने साग, फल, फली, अनाज वगैरह बनाये हैं।

"इसी प्रकार मुझे तुमसे कहना है कि तुम शराब पीना छोड़ दो। जो शराब पीते हैं, उन्हें जानना चाहिए कि शराब पीनेवाला अपने-आपको भूल जाता है। वह भान भूल जाता है और उस अवस्था में वह ऐसे काम करता है, जिसके लिए नशा उतरने के बाद उसे शर्म आती है। मदिरा पिया हुआ मनुष्य पशु से भी बुरा है। इसमें उसे कोई आनन्द नहीं मिलता। यह तो तुम सबका निजी अनुभव है कि अन्त में शराब दुःख पैदा करती है। संसार का प्रत्येक धर्म शराब पीने की मनाही करता है। हमें प्यास लगे, तो उसे बुझाने के लिए ईश्वर ने हमें ताजा पानी दिया है। तुम्हें और कुछ चाहिए तो दूध पियो। तुम्हें कुछ सवादिष्ट चाहिए तो गरम पानी में शक्कर डालकर पियो। इससे तुम्हें और पोषण मिलेगा। तुम्हें तीखा चरपरा चाहिए तो उसमें मिर्च-मसाला डालकर पियो। प्रयत्न करके देख लो और याद रखो कि आज शाम को यह बुड्ढ़ा बुजुर्ग क्या कहता था। मुझे यकीन है कि इस प्रकार चलोगे तो मुझे आशीर्वाद ही दोगे।

"मैं देख सकता हूँ कि तुम रोज नहीं नहाते। तुम्हारे सिर के बाल देखकर, मैं यह कह सकता हूँ। तुम्हारे बाल गंदे और धूलभरे हैं। अगर हम सब किसी बन्द मकान में इकट्ठे हुए होते तो तुममें बदबू आती। रोज न

नहाना बुरा है। हमारे शरीर के लिए रोज कम-से-कम एक बार अच्छी तरह रगड़कर नहाना जरूरी है। जो लम्बे बाल रखते हैं—स्त्री हों या पुरुष—उन्हें अच्छी हालत में रखना चाहिए और कंघी करना चाहिए। तुम्हारे कपड़े भी मैंले हैं। पानी तो ईश्वर ने बहुत दिया है। उसके लिए दाम नहीं खर्च करना पड़ता। तुम्हें अपने कपड़े रोज धोने चाहिए। ऐसा करोगे तो तुम्हारे विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकेगा।

"शरीर की भाँति तुम्हें अपने हृदय भी साफ रखने चाहिए। हृदय पवित्र रखने के लिए हिन्दू-धर्मशास्त्रों ने एक बहुत ही बढ़िया, इतना सरल उपाय बताया है कि हम मान भी नहीं सकते। रोज प्रातःकाल चार बजे स्त्री, पुरुष, बच्चे सब उठें, मुँह धोयें और प्रभुका नाम लें; और प्रार्थना करें कि 'हे प्रभु, हमारे हृदय साफ रख और पापकर्म से हमें दूर रख। उन्हें इतने पवित्र रख कि हमारी चोरी करने या किसीका कोई बिगाड़ करने की इच्छा ही न हो।' रात को सोते समय भी ऐसी प्रार्थना करो और यह भी माँगो कि नींद में बुरे सपने न आयें।

"मुझे पता नहीं कि तुम लोग ईश्वर को किस नाम से भजते हो। मुझे और तुम्हें बनानेवाले को भजने के बारे में शायद तुमने विचार ही नहीं किया होगा। परन्तु मैं तुम्हें एक सादा नाम बताऊँ—जो सादा हिन्दी भाषा में बोला जा सके—सरल और आसान। वह है राम। वह बोलने में सरल है। फिर भी उसमें गहरा अर्थ भरा हुआ है और वही सत्य है। हजारों वर्ष पहले हो गये तमाम महान् सन्त पुरुषों ने इस नाम को रटा है और इसे भजा है। ऐसा करके वे लोग भवसागर तर गये। ऐसे संत-पुरुषों को और किसी नाम की जरूरत नहीं पड़ी थी। मुझे आशा है कि यह बिलकुल सीधी बात तुम्हारे अंतर में गहरी उतर गयी होगी।

"अब एक और बात करके मैं अपनी बात पूरी करूँगा। तुमने शायद खादी का नाम सुना होगा। तुम्हें और मुझे अपना तन ढँकने के लिए बहुत कम कपड़े चाहिए। परन्तु मेरा इतना ही कहना है कि जो कपड़े चाहिए, वे विदेशी या मिल के बने मत पहनो। तुम्हारे अपने ही हाथ का बनाया हुआ कपड़ा पहनो। तुम्हें बनाना न आता हो तो यहाँ आकर सीख लो। यहाँ सीखने के लिए कुछ देना नहीं पड़ता। अपने बच्चों को यहाँ की पाठशाला में भेजने लगो।

"मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह सब जो मैंने तुमसे कहा है, वह याद रखने और उसे प्रयोग में लाने योग्य बल वह तुम्हें दे। तुम सब आये, इसके लिए तुम्हारा आभार मानता हूँ। ईश्वर तुम्हें सुखी करे।"

वाइकोम-सम्बन्धी अन्तिम स्थिति अब यह है:

गांधीजी के वाइकोम छोड़ने से पहले पुलिस-कमिश्नर प्रस्ताव लेकर आये थे कि पुलिस का जो पहरा रखा जाता है, वह हटा लिया जाय, तो सनातनी हिन्दू, जो यह मानते हैं कि उन्हें सरकार का समर्थन है, ऐसा

मानना बन्द कर दें, इसलिए यदि सत्याग्रही हद लाँघकर आगे न जायँ तो पुलिस का पहरा उठा लिया जाय और लकड़ी की जो बाड़ है, वह भी हटा ली जाय। गांधीजी ने उनके इन सुझावों पर विचार करके अलवई पहुँचने पर जवाब दिया कि आपके सुझावों में बहुत सार नहीं मालूम होता, फिर भी थोड़े समय के लिए मैं यह प्रयोग करने को तैयार हूँ। अलबत्ता सनातनी हिन्दुओं के दिल सत्याग्रहियों के ऐसे शान्त सत्याग्रह से न पिघलें, तो फिर सत्याग्रही हद लाँघें और उनमें साधारण कानून के अनुसार कार्रवाई की जाय; इसके लिए दूसरी शर्त यह है कि सरकार इस हद का उल्लंघन करने की निषेधाज्ञा भी रद्द करे। पुलिस-कमिश्नर ने तार से जवाब दिया है कि ७ तारीख से उपर्युक्त हुक्म रद्द कर दिया जायगा और सत्याग्रही हद पार न करने की स्वीकृति का पालन करें।

ये बातें स्वीकार करने के लिए गांधीजी ने तार भी कर दिया है और सत्याग्रहियों को भी ऐसी हिदायत कर दी है।

इसका परिणाम यह आयेगा कि सरकार को यह बताने का मौका मिलता है कि वह सनातनियों का समर्थन नहीं करती; सनातनी एकाध महीने में नहीं समझेंगे तो हद पार करके साधारण फौजदारी कानून के अनुसार कार्रवाई कराई जायगी और उसका एक प्रयोग का मुकदमा हो जायगा। इसमें यदि लोक-पक्ष जीतेगा, तो रास्ते खुल जायँगे, नहीं जीतेगा तो महारानी कानून में परिवर्तन करेंगी। इस बीच समस्त सवर्ण हिन्दुओं के इस मामले में मत लेने की कार्रवाई की जा रही है।

एक सभा* में भाषण करते हुए गांधीजी बोले:

"भाइयो और बहनो—मद्रास जैसे शहर की अपेक्षा ऐसे छोटे गाँवों में जाने में मुझे अधिक आनन्द आता है। तुम लोग जितना बढ़िया बुन सकते हो, उतना बढ़िया बुनना मुझे नहीं आता, तथापि मैं मानता हूँ कि तुम्हारा भाई समझा जाने का मुझे हक है। मैं अपना परिचय किसान, कातनेवाला और बुनकर के रूप में देता हूँ। मुझे बुनना, कांजी लगाना और अन्य क्रियाएँ करना नहीं आता। परन्तु मैंने अपने दो पुत्रों को ये सारी कलाएँ सीखने भेजा था। उन्होंने ये सीखी हैं। परन्तु रुपया कमाने के लिए नहीं, तुम जैसों की सेवा करने के लिए सीखी हैं।

"मैं देखता हूँ कि तुममें से बहुतों के शरीर पर खादी नहीं है। तुम खुद बुन सकते हो, तो भी बहुत-सी बहनें यहाँ ऐसी हैं, जिनके शरीर पर खादी नहीं है। इससे मुझे बहुत दुःख होता है। मान लो कि तुम ऐसा करते होते—यहाँ से रोटी पकाकर तुम मद्रास भेजते हो और वहाँ से पकाया हुआ खाना मँगाते हो—तो यह तुम्हें

कितना पसंद होता? तुम इस बात को हँसी में ही उड़ा देते। परन्तु आज हमारी ऐसी ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। हम खुद कपड़ा बुनते हैं, फिर हमारी जरूरत का कपड़ा बाजार से मँगाते हैं। मुझे आशा है कि यह गलत रिवाज तुम बंद कर दोगे।

"मुझे मालूम हुआ है कि अब भी कुछ बुनकर हैं, जो हाथकता सूत बुनते हैं। ऐसी कुछ बहनें हैं, जो अपने हाथ से सूत कातती हैं। ये बहनें तुम्हारी जाति की न होने पर भी तुम्हारी बहनें हैं, यह समझकर दूसरा सूत छोड़कर उनका सूत बुनने में तुम्हें अभिमान मानना चाहिए। यह बात सही है कि हाथ से काता हुआ सूत मजबूत नहीं होता, इसलिए उसके बुनने में कठिनाई होती है। परन्तु तुम यह हाथकता सूत ही बुनने का आग्रह रखोगे, तो वह अपने-आप मजबूत बनेगा। कहो, तुम यह हाथकता और हाथबुना कपड़ा ही पहनोगे? (पुरुषों ने हाथ उठाए, स्त्रियों ने भी) अपनी रंगीन साड़ियों के लिए तुम क्या करोगे? या फिर मलाबार की अपनी बहनों की तरह तुम सफेद वस्त्र ही पहनोगी?"

---

* यह भाषण किस तारीख का और किसके सामने दिया गया होगा, इसकी जानकारी दर्ज नहीं है।

वाइकोम त्रावणकोर के उत्तरी सिरे पर ही है, ऐसा कह सकते हैं। हाँ, जरा आगे उत्तर में पारूर और पूर्व में अलवाई आते हैं, उन्हें वाइकोम जाते समय छोड़ दिया था। दक्षिण होकर लौटते समय वाइकोम से चलकर सुबह साढ़े चार बजे पारूर पहुँचे।* यह रास्ता भी समुद्र से अलग होकर आये हुए पानी से बने हुए समुद्र की समानान्तर रेखा पर उत्तर-दक्षिण में फैले हुए छिछले पानी के सरोवर में ही है। आगे चलकर समुद्र के साथ उसका यह बच्चा मिल जाता है, इसलिए जैसे माता के पास खड़ा बालक निडर होकर ऊधम मचाता है, वैसे ही इस सरोवर में भी समुद्र की लहरों की खलबली अनुभव होती है। बाकी किनारे का सुभग सौंदर्य तो पूर्ववत् ही रहता है। परन्तु अलवाई आते ही वहाँ छोटी-खाड़ी में नाव उतर जाती है और मीलों तक इस छिछले पानी के और २५-३० फुट चौड़ी इस खाड़ी में से ही नाव जाती है।

फिर मोटर से अलवाई गये।

---

* ता. १८-३-१९२५

अलवाई

अलवाई देखकर तो पुस्तकों में वेनिस का जो वर्णन पढ़ते हैं, वह याद आया। वेनिस छोटे-छोटे टापुओं पर है। अलवाई के बहुत-से घर छोटे-छोटे टापुओं पर हैं और प्रत्येक घर नारियल के पेड़ों की बाड़ से सुरक्षित किले जैसे लगते हैं। एक-दूसरे के यहाँ जाना तो नावों से ही होता है।

यहाँ इस भाग में पहले-पहल एक पारसी परिवार के दर्शन हुए। दो सौ वर्ष से यह परिवार वहाँ बसा हुआ है और बड़ा भारी व्यापार करता है। यह सारा कुटुम्ब अत्यन्त प्रेम से गांधीजी से मिलने आया था। कुछ गुजराती सज्जन भी वहाँ बसे हुए हैं। व्यापार सारा नारियल और नारियल के पेड़ों से उत्पन्न होनेवाली अनेक वस्तुओं का, केले और केले के तने और पत्तों से बननेवाली चीज़ों का और केतकी से बननेवाली रस्सी वगैरह का है।

आम तौर पर स्वदेशी धर्म का—कपड़ों को छोड़ दें तो—जितना इस प्रदेश में पालन किया जाता है, उतना और कहीं शायद ही किया जाता होगा। खाने में तो तीनों बार चावल, दाल या दाल का पानी वगैरह में नारियल और फलों में केला। खाने के लिए केले के पत्ते, केले के दोने, इतना ही नहीं, परोसने में कलछी वगैरह भी नारियल के कवच वगैरह की ही बनी होती है। मान्यता तो यह है कि नाम्बुद्री तो परप्रान्तों में होनेवाली एक भी चीज इस्तेमाल नहीं कर सकते और नायर सुघड़ता वगैरह में इनका पूरा अनुकरण करते हैं। और कपड़े भी त्रावणकोर में कतवाये-बुनवाये हुए पहनने होते हैं। परन्तु जो नाम्बुद्री अपने कथित ६४ आचारों में से अधिकांश पर कायम हैं, वे ही कपड़े सम्बन्धी स्वदेशी धर्म को छोड़ बैठे हैं!

परन्तु यह तो मैं फिर नाम्बूद्रियों के रीति-रिवाज पर चला गया, यद्यपि ये रीति-रिवाज ऐसे अटपटे हैं कि उनमें डुबकी मारने लगें तो भीतर से बाहर निकलना कठिन हो जाय। इसी जगह इनके ६४ आचारों में से दो की बात कर ही लूँ। ये आचार अर्थात् विधि-निषेध हैं। विधियों में शौच के कुछ नियम बहुत बड़े हैं, परन्तु नाम्बुद्री कभी सूत न काते, यह नियम जरा विचित्र लगता है। संभव है, जिस समय नाम्बुद्रियों के आसपास सभी कातते होंगे, उस समय इसलिए यह निषेध लगाया गया हो कि नाम्बुद्री भी कातने लगेंगे तो शायद उनकी प्रतिष्ठा-हानि होगी। नाम्बुद्रियों के कुटुम्ब में सबसे बड़े बेटे को ही विवाह करने की छूट है! यह नियम तो आज भी कड़ाई से पाला जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि दूसरे पुत्र नायर स्त्रियों के साथ सम्बन्ध कर लेते हैं, जो 'विवाह' न कहलाकर 'सम्बन्ध' ही कहा जाता है! दूसरा परिणाम यह होता है कि नाम्बुद्री परिवारों में

लड़कियाँ बड़ी उम्र तक कुँवारी रहती हैं और कुछ तो कुँवारी ही मरती हैं। नायर स्त्रियों के साथ सम्बन्ध कर लेने पर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? यह प्रश्न सहज ही उठता है। परन्तु जहाँ वर्णाश्रमधर्म सिर्फ खाने-पीने या छुआछूत में ही समा गया है, वहाँ मनुष्यों ने अपने-अपने मन को समझाने के अनेक रास्ते निकाल लिए हैं। नायर की स्त्री के साथ सम्बन्ध कर लिया जाए, उसके साथ खाया-पिया न जाय! बच्चे माँ के साथ ही रहते हैं। इसमें फिर नायरों का उत्तराधिकार का कानून सामने आता है, इसलिए अटपटेपन का अन्त नहीं रहता। अब इस अन्तर्कथा को यहीं पूरा करता हूँ।

अलवाई में तो सभा के समय इतनी सख्त बरसात हुई कि सभा हो ही नहीं सकी। केवल नगरपालिका ने मानपत्र दिया और लोगों ने थैली भेट की। इस स्थान पर कह देना चाहिए कि त्रावणकोर में दी गयी तमाम थैलियाँ वाईकोम-सत्याग्रह के लिए ही खर्च की जायँगी, यह समझकर लोगों ने दी थीं।

अलवाई के अद्वैताश्रम के संस्कृत मानपत्र के उत्तर में गांधीजी बोले:

"आपने जो सुन्दर मानपत्र दिया है और जो एक अंत्यज लड़के ने पढ़कर सुनाया है, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मुझे खेद है कि मैं आपको संस्कृत में जवाब नहीं दे सकता। फिर भी मैं संस्कृत का पंडित होता, तब भी मैं संस्कृत में उत्तर न देता, क्योंकि आज दुर्भाग्य से हम हिन्दुओं ने संस्कृत के अध्ययन की अवहेलना की है, इसलिए आम लोगों से तो ऐसी आशा रखी ही नहीं जा सकती कि वे संस्कृत समझेंगे। परन्तु यहाँ के संस्कृत वातावरण के अनुकूल होने के लिए यदि मैं हिन्दी बोल सकता तो हिन्दी में बोला होता। परन्तु उसे आप नहीं समझ सके होते। यह हमारी दुर्दशा बताता है। मैं चाहता हूँ कि आश्रम के संचालक ऐसी व्यवस्था करें कि यहाँ का प्रत्येक विद्यार्थी हिन्दी समझ सके। यह जरूरी है कि हम अपनी मर्यादा समझें। आज संस्कृत से हमारे जीवन को ओट-प्रोट कर देना या हमारा सारा व्यवहार संस्कृत में करना हमारी शक्ति के बाहर है। परन्तु हिन्दी में हम अपना व्यवहार करने लगें, यह कुछ कठिन बात नहीं है।

“आपका मुद्रालेख है ‘एक जाति, एक धर्म, एक ईश्वर’। श्री नारायण गुरु स्वामी के साथ मेरी इस विषय पर चर्चा हुई थी और आपने मानपत्र में भी आपने इसे प्रमुख स्थान दिया है, इसलिए अपने उत्तर में इसका उल्लेख करना मेरा फर्ज हो जाता है। मुझे लगता है कि इस मुद्रालेख में जो चीज है, वह प्राप्त करना भी हमारी शक्ति के बाहर है। एक ईश्वर का सिद्धांत मैं समझ सकता हूँ। उस एक ईश्वर को हम करोड़ों ढंग से भजें, तो भी उसे हमारी भक्ति पहुँचती है। परन्तु मेरा खयाल है कि जब तक मानव-जाति रहेगी, तब तक अनेक मत

और अनेक धर्म रहेंगे ही, क्योंकि मन एक नहीं, अनेक हैं। कुदरत की तरफ देखेंगे, तो वह हमें बेहद विविधता से भरी हुई दिखायी देगी। और इस विविधता के द्वारा ईश्वर एक से अनेक हो जाता है। मुझे लगता है कि मानव-जाति के इतिहास के किसी भी काल में जगत् एक धर्मवाला और एक मतवाला होगा, ऐसी आशा रखना प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल चाहने के बराबर होगा। अपने परिमित श्रवण, मनन और निदिध्यासन के परिणामस्वरूप मुझे महसूस होता है कि वर्णाश्रमधर्म के बिना मानव-समाज का काम चल नहीं सकता। इसलिए विविध धर्म और विविध मत भी अनिवार्य प्रतीत होते हैं। हमारा लक्ष्य तो सहिष्णुता होना चाहिए। यदि हम सब एक मत के हो जायँ, तो इस उदार गुण के लिए कहाँ गुंजाइश रहती है? परन्तु सबका एक मत हो जाना आकाश-कुसुमवत् है। इसलिए एक-दूसरे के मत को सहन कर लेने की बात ही हमारे लिए संभव दिख पड़ती है। अपने मुसलमान मित्रों के मतानुसार मैं जन्म से मूर्तिपूजक हूँ और जन्म से अवतार और पुनर्जन्म को माननेवाला हूँ। मुझे मूर्तिपूजा को न माननेवाले, अवतार को न माननेवाले और शायद पुनर्जन्म को भी न माननेवाले मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता पैदा करनी ही चाहिए। मैं अवतारों को माननेवाला हूँ; मैं यह नहीं मानता कि ईसा ही एक परमेश्वर था अथवा एक ईसा ही ईश्वर का पुत्र था। परन्तु मुझे यह सहन करना चाहिए कि मेरे ईसाई मित्र ईसा को ही ईश्वर-रूप मानते हैं; और इसी प्रकार मुसलमानों और ईसाइयों को यह सहन करना चाहिए कि मैं कन्याकुमारी और जगन्नाथ को प्रणिपात करता हूँ। यह सहिष्णुता का काल मैं अपने जमाने में ही आता हुआ देखता हूँ, क्योंकि अहिंसा-धर्म के मूल में सहिष्णुता निहित है। सत्यधर्म के मूल में भी यही सहिष्णुता है। ईश्वर की तरह सत्य भी सहस्र प्रकार का है। परन्तु सत्य क्या है, इस बारे में मेरा ही मत सही है और दूसरे का गलत है, यह आग्रह मैं नहीं रख सकता। इसलिए मेरा खयाल है कि अन्योन्य सहिष्णुता और अन्योन्य प्रेम का धर्म प्राप्त होने का समय अब निकट आता जा रहा है। इसलिए श्री नारायण गुरु स्वामी को सहिष्णुता का मुद्रालेख स्वीकार करने को मैं न समझा सकूँ तो उनके वर्तमान मुद्रालेख का अपना अर्थ करके मैं सन्तोष मानूँगा।

"परन्तु यह सूक्ष्म चर्चा छोड़कर जरा मोटे तौर पर विचार करें। यदि एक जाति, एक धर्म और एक मत का आदर्श हम न रख सकें, तो हमारे देश के हित के लिए नित्य नियमित रूप से करने योग्य किसी एक कार्य का आदर्श तो जरूर रख सकते हैं। हम खादी पहनकर देश के सबसे गरीब लोगों के साथ एकरूप होना कब सीखेंगे? गरीबों का और हमारा हित एक करने का एकमात्र मंत्र हम साध सकते हैं। विश्वप्रेम की बात करने के बजाय आहमदाबाद, जापान अथवा इंग्लैंड का केलीको छोड़कर यहाँ का हमारी बहनों और भाइयों का काता

और बुना हुआ कपड़ा पहनने में जो सहज प्रेम है, उसे हम अनुभव कर सकें, तो काफी है। श्री नारायण गुरु स्वामी ने मुझे विश्वास दिलाया है कि वे स्वयं कातेंगे और अपने अनुयायियों को खाली पहने बिना अपने पास नहीं आने देंगे।

"अहिंसा और प्रेम के धर्म का अमल हमें एक और बात में भी करना है। हम अपने ही भाइयों को अछूत और पृथक् रखकर जो पाप करते हैं, उससे हमें देश को मुक्त करना ही चाहिए। एक सवर्ण हिन्दू ने आकर मुझसे कहा कि एज्हुआ अपने से घटिया अंत्यजों को अस्पृश्य मानते हैं। यह जरूर बंद होना चाहिए। और उसने मुझसे यह भी कहा कि एज्हुआ और पुलया शराब छोड़ दें तो अस्पृश्यता के सवाल का निपटारा अपने-आप हो जाय। इसे मैं उचित बचाव नहीं मानता। मगर इस सलाह से लाभ उठाकर हमें तो जो करना चाहिए, वह करने से ही निस्तार है। हम यह उत्तर नहीं दे सकते कि सवर्ण हिन्दू भी चोरी-छिपे पीते हैं। हम अपने ही दोष देखें और दूर करें तो काफी है। मुझे आशा है कि यहाँ के सुसंस्कृत वातावरण में जो कुछ संक्षेप में मैंने कहा, उसे आप हृदय में उतारेंगे और श्री नारायण गुरु स्वामी जिस धर्म का आदर्श रख रहे हैं, उसकी ओर जल्दी बढ़ेंगे।"

एज्हुआओं के विषय में मैं लिख चुका हूँ। इनकी शिक्षा, इनके संस्कारों के बारे में मैंने इशारा किया है। इनकी शिक्षा का कारण यह है कि त्रावणकोर राज्य में सभी पाठशालाएँ अंत्यजों के बच्चों के लिए भी खुली हैं। और अंत्यज बालक उनसे लाभ भी खूब उठाते हैं। ४००० गाँवों में से एक भी गाँव नहीं होगा, जहाँ पाठशाला न हो। भारत में अधिक-से-अधिक साक्षरता त्रावणकोर में है। हजार में से ३८० पुरुष और १७५ स्त्रियाँ और किसी रियासत अथवा ब्रिटिश प्रान्त में शिक्षित नहीं हैं। हमारी दक्षिण की यात्रा सारी पश्चिमी किनारे पर या तो नाव में या मोटर में हुई। क्वीलोन से त्रिवेन्द्रम् जाते हुए सबेरे सैकड़ों बच्चे रास्ते में मिले होंगे। परन्तु तीन-चार वर्ष के बच्चों के हाथों में भी स्लेट और पुस्तक तो थी ही । यह आँखों को तृप्त करनेवाला दृश्य था । और उनमें कितने ही अंत्यज बालक थे ।

परन्तु अंत्यजों ने इस भाग में संघ-शक्ति भी खूब दिखायी है। त्रावणकोर में ही क्या, तमिल प्रान्त में भी अंत्यजों की संघ-शक्ति हमारे यहाँ से बढ़कर है । अंत्यजों के अपने ही नाई, धोबी, लुहार हैं। हमारे यहाँ कहाँ हैं? राजगोपालाचारी ने अपने पुदुपालयम के आश्रम में अंत्यज लिये हैं। इस पर उनके आसपास के गाँवों में खलबली शुरू हुई है। राजगोपालाचारी ने मुझसे कहा कि शायद अंत्यजों के सिवा सब हमारा त्याग कर दें और अंत्यज मुझे विश्वास दिलाते हैं कि बढ़ई, लुहार, नाई भी हमीं जुटा देंगे ।

त्रावणकोर में यह स्थिति अधिक बड़े पैमाने पर है । पहले लिखा जा चुका है कि वरकला में इनके गुरु की गद्दी है । इस गुरु ने अपना मठ एक सुन्दर पहाड़ी पर बनाया है, वहाँ की सफाई आँखों में समा जानेवाली है, वहाँ की पाठशाला के लड़कों का संस्कृत उच्चारण ब्राह्मणों के बच्चों को शरमानेवाला है । एक प्रार्थना में दो बालकों द्वारा किया गया ईशोपनिषद् के मंत्र का शुद्ध उच्चारण आश्चर्यजनक था। मलयालम् भाषा की तो पाठशालाएँ इनकी खूब हैं ही । और केवल थीयों (अथवा एज्डुआओं) से मिला हुआ लगभग २५ लाख का कोष नारायण गुरु स्वामी के पास है और बाग-बगीचों की स्थायी आमदनी है। हम यह भी देख चुके कि स्वामी का दूसरा मठ वाईकोम से कोई साठ मील दूर अलवाई में एक सुन्दर नदी के किनारे है। और वहाँ एक अद्वैताश्रम नामक पाठशाला में संस्कृत की पढ़ाई होती है।

ऐसी और कई संस्थाएँ खोलने की स्वामीजी की इच्छा है । स्वामीजी के पास अनेक ब्रह्मचारी हैं, जो संन्यासी के भेस में रहते हैं। संक्षेप में स्वामीजी ने ब्राह्मणों के आचार का सम्पूर्ण अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। किसी भी चीज का अनुकरण करने की कोशिश की जाय, यही उस वस्तु की महत्ता का प्रमाण है । इसलिए इसमें ब्राह्मणों और थीयों दोनों का श्रेय है । परन्तु ब्राह्मण जाग्रत न हों; तो उनकी स्थिति लज्जास्पद हो जायगी।

दूसरी ओर थीयों पर भी अंकुश की आवश्यकता है। भीतर-भीतर इनकी अपने ही धर्म पर हमला करने की वृत्ति जान पड़ी । इनमें भीतर-भीतर ऐसी वृत्ति हो सकती है कि जिस धर्म के अनुयायी इन्हें अपनाना नहीं चाहते, इतना ही नहीं, बल्कि जिन्हें इनसे घृणा है, उनका त्याग कर दिया जाय और उनके धर्म की अपेक्षा किसी दूसरे धर्म को चलाया जाय, तो क्या बुरा है? मद्रास में तो एक स्वामी-अंत्यज-से गांधीजी को प्रायश्चित्त कराना पड़ा । उन्होंने तो इसी आशय की धमकी दी की हिन्दू न चेतें तो सामूहिक रूप में अंत्यज दूसरे धर्म में मिल जायँगे । इस धमकी के लिए गांधीजी ने उन्हें सख्त डाँट दिलायी और यह समझाया कि हिन्दू-धर्म में रहकर वह किसी पर उपकार नहीं करते। और यह समझाया कि "आपका संन्यासी होकर धमकी देने और डराने की बात करना भगवान् को लज्जित करने जैसा है।" परिणामस्वरूप उनके मन पर इतना असर हुआ कि वे तुरंत सफेद खादी ले आये, अपने भगवे वस्त्र त्यागकर श्वेत खादी धारण करके गांधीजी के सामने पेश हुए और पश्चाताप किया।

नारायण गुरु स्वामी से जब गांधीजी ने पूछा कि "आपका धर्म?" तब इसका सीधा जवाब न देकर उन्होंने कहा था कि "कोई धर्म नहीं। मैं तो एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर को मानता हूँ।" उनके अलवाई

के अद्वैत आश्रम के बालकों ने जो मानपत्र दिया, वह संस्कृत में था और उसमें भी प्रथम वाक्य यह था कि "श्री नारायण परमहंसदेव द्वारा संस्थापित मनुष्यों की एक जाति, एक मत और एक ईश्वरवाला आर्य सत्य प्रचारित करने के लिए स्थापित अद्वैताश्रम के प्रतिनिधि आपका स्वागत करते हैं।" फिर गांधीजी की स्तुति करते हुए यह बताया था कि उनमें "ईसा की त्यागशीलता, पार्थसारथी का धर्मरक्षानैपुण्य, शाक्यदेव की हिंसा-रहिता, श्रीमद्शंकराचार्यकी बुद्धिमत्ता, रन्तिदेव का कारुण्य और मुहम्मद पैगम्बर का स्थैर्य" है। सुना, एक शीया कार्यकर्ता ने अपनी एक लड़की का नाम मेरी रखा था और एक लड़के का नाम मुहम्मद अली रखा था।

त्रावणकोर में अलवाई अन्तिम स्थान था। वहाँ से चलकर त्रिचूर अर्थात् कोचीन की हद में गये। त्रिचूर तो कोचीन के परिव्राजक महाराज से मिलने गये थे। उन्होंने दो-तीन तार देकर बहुत आग्रह किया था कि गांधीजी उन्हें एक दिन जरूर दें। एक दिन तो नहीं, परंतु एक घंटा उन्हें दिया गया।

महाराजा के साथ बातें तो त्रावणकोर और कोचीन में प्रचलित असपृश्यता के बारे में ही हुईं। महाराजा बार-बार अनेक बातों की एक ही बात कहते थे: "बुद्धि, तर्क, न्याय सबसे रुढ़ि ही अधिक बलवान् है, और हम रुढ़ि के गुलाम हैं।" 'गुलाम हैं' ये इन्होंके शब्द हैं और ये शब्द वे उतने ही आनंद से कहते थे, जितना कोई अपने को खुदा का बंदर कहने में मानता हो। रुढ़ि की मूर्तिपूजा का यह अजीब नमूना पहली बार देखा। महाराजा के एक पुत्र विलायत में शिक्षा प्राप्त करके आये हैं, उन्होंने तो अपने पास चरखा भी रखा है और सुंदर कातते हैं। महाराजा से पूछा गया था कि "आपके महल के सामने से मुसलमान ईसाई जा सकते हैं, परंतु नायाड़ी नहीं जा सकता, यह कहाँ का न्याय है?" महाराजा ने उत्तर दिया था: "उनको नहीं रोक सकते, इसलिए नायाड़ी को भी न रोकें, यह कहाँ का न्याय है?"

परन्तु महाराजा के पुत्र अस्पृश्यता के खिलाफ हैं। उन्होंने तो गांधीजी के आगमन के निमित्त से गरीब नायाड़ियों को खादी भेट की थी और गांधीजी से कहा था कि "आशा रखता हूँ कि इस दुःखदायी प्रथा का नाश जल्दी ही होगा।" परन्तु त्रिचूर की विराट सभा या वहाँ कोचीन के भूतपूर्व महाराजा और उनके कुँअर की मुलाकात हृदय को इतना नहीं सालती, जितना वहाँ के नायाड़ियों का कुरुण दर्शन साल रहा है। शहर की ईसाई बस्ती छोड़कर, शहर छोड़कर जब हम पालघाट के रास्ते चढ़ रहे थे, तब इन नायाड़ियों के दर्शन हुए। ऐसा कुरुण, हृदय-विदारक दृश्य तो तब भी नहीं हुआ होगा, जब गांधीजी ने कदाचित् पुरी के भूखों को देखा था। वे तो भूखे थे, उन्हें खिलानेवाले हजारों मिल जाते हैं। ये तो तिरस्कृत हैं। उन भूखों को देखकर दया आती है, दुःख होता है, पर इन नायाड़ियों को देखकर तो शर्म के मारे यह इच्छा होती है कि पृथ्वी फट जाय तो समा

जायँ। नायाड़ियों ने गांधीजी को मानपत्र देने का निश्चय किया था। यह कोचीन के उन उत्साही कुमार ने ही किया होगा। परन्तु मानपत्र देने आने की हिम्मत किसकी हो? मानो अपने जन्म से और जीवन से शरमाते, अपनी छाया से भी डरते ये नायाड़ी ताड़पत्र पर लिखा हुआ मानपत्र लाने में संकोच करके दूर खड़े रहे। गांधीजी ने उन्हें पास आने को कहा, परन्तु वे आये कैसे? उन्हें उठाकर मोटर में बैठाया गया ! परन्तु उन्हें तो यह सब एक भीषण स्वप्न जैसा लग रहा था। अनेक वर्षों से अंधेरी कोठरी में बन्द कैदी जैसे प्रकाश से घबराये, वैसे ये लोग मनुष्य के स्पर्श से डरते थे। इन निष्प्राण, इस लोक और परलोक के बीच पड़े हुए जीवों को वापस मोटर में बैठाकर पहाड़ी पर छोड़ दिया गया और वे अपनी गुफाओं में भाग गये !

त्रिचूर से पालघाट गये। रास्ते की मुसीबतों का मैंने वर्णन नहीं किया। परन्तु दक्षिण का प्रवास कितना कठिन था, इसका नमूना बताने के लिए मैं इन दिनों का कार्यक्रम दे रहा हूँ। प्रभात में ४।। बजे पारूर—सभा; वहाँ से मोटर द्वारा अलवाई—वहाँ तीन सभाएँ; वहाँ से ११ बजे रेल-से त्रिचूर—वहाँ महाराजा से मुलाकात, जुलूस, दो सभाएँ—३ बजे पालघाट के अत्यन्त खराब पहाड़ी रास्ते का सफर—७।। बजे वहाँ; पालघाट में अत्यन्त अव्यवस्थित सार्वजनिक सभा, भीड़ के कष्ट के कारण मंच पर पहुँचने में आठ बज गये ! खूब बारिश; स्त्रियों की सभा ९ बजे; पंडितों का शास्त्रार्थ—१० बजे से रात के १ बजे तक; कृष्णस्वामी अय्यर के शबरी आश्रम गये रात को २ बजे; २।। बजे स्टेशन पर आराम ! यह २२ घण्टे का अखंड कार्यक्रम है। ऐसे और बहुत दिन गुजरे थे। नमूना सिर्फ यह बताने को दिया है कि लोग गांधीजी से कितना काम लेते हैं।

शास्त्रार्थ

इस आधी रात तक हुए शास्त्रार्थ का सार यहाँ नहीं दूँगा। मुझे इतना ही कहना चाहिए कि यह मामूली शास्त्रार्थ नहीं था। गांधीजी ने अपनी वक्तव्य थोड़े में ही सुनाया। फिर पंडितों की तरफ से एक शास्त्री वकील ने अंग्रेजी में अस्पृश्यता के पक्ष में दलीलें दीं। और अन्त में एक शास्त्री ने तमिल में अस्पृश्यता के विरुद्ध तर्क किये। दक्षिण के सनातनियों के बारे में इतना कहना चाहिए कि उनमें हर जगह विवेक, विनय और मर्यादा पायी गयी। पक्ष में बोलनेवाले वकील ने तो कोई डेढ़ घंटे तक आत्मज्ञान, हृदय-शुद्धि और प्रत्येक मनुष्य-शरीर देवमंदिर है—आदि बहुत सारी बातें कीं और अन्त में स्मृतियों में से प्रमाण उद्धृत किये। प्रमाणों में रास्तों पर से जाने देने की आज जो मनाही है, उसका तो एक भी प्रमाण नहीं दे सके, परन्तु यह बताया कि स्मृतियों में जिन प्रतिबंधों का विधान है, उनमें से आज के प्रतिबंध निष्पन्न होते हैं। **चाण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात् परिश्रय:** इतने से मनु के वचन पर सारी अस्पृश्यता की इमारत खड़ी की गयी है, यह बताया; और फिर कुछ व्यावहारिक

दलीलें दीं: "एक बार इन्हें अपने या मन्दिर के पास से गुजरने की छूट दी कि ये आम रास्तों से मांस-मच्छी लेकर निकलेंगे !"

गांधीजी ने 'चांडाल' की व्याख्या पूछी। उन्होंने बताया कि प्रतिलोम विवाह करनेवाले और उनके वंशज सब 'चांडाल'। जब यह पूछा कि आज जिन्हें अछूत कहते हैं, उन्हें 'चांडाल' कहने के लिए कोई प्रमाण है, तो इनकार किया।

सुधारक शास्त्री ने भी अत्यन्त विद्वत्ता से जवाब दिया। उनका इतिहास बताने लायक है। जब गांधीजी ने अस्पृश्यता की लड़ाई छेड़ी, तब ये शास्त्री अस्पृश्यता के समर्थक थे। गांधीजी के आह्वान का उत्तर देने के लिए उन्होंने शास्त्रिय प्रमाण ढूँढना शुरू किया और प्रमाण ढूँढते-ढूँढते वे स्वयं अस्पृश्यता के विरोधी बन गये, क्योंकि जितने प्रमाण मिले, वे आजकल प्रचलित अस्पृश्यता को तोड़नेवाले मालूम हुए। केवल आचार और दैनिक स्थिति-सम्बन्धी अस्पृश्यता रही है और ताल्कालिक स्थान ही शुद्धि के लिए काफी बताया गया है; जैसे रजस्वला चार दिन अछूत रहती है, वैसे अंत्यज अपने मैंला काम करे, उतने ही समय तक अस्पृश्य रहता है; शास्त्रों में पाँचवाँ वर्ण ही नहीं है; स्पर्शदोष या सामीप्यदोष वस्तु पर लागू होता है, मनुष्य पर नहीं; कोई जन्म से पतित नहीं है, परन्तु वृत्ति और कर्म से ही पतित होता है—ब्राह्मण विपरीत कर्म से शूद्र बनता है और शूद्र पवित्र जीवन से ब्राह्मण जैसा बनता है—ऐसा उन्होंने बताया।

गांधीजी ने इनमे भी इस अंतिम कथन के बारे में कुछ प्रश्न पूछे, परन्तु इसकी चर्चा में उतरूँ तो बहुत विस्तार हो जायगा। इतना तो कहना ही चाहिए कि सारा शास्त्रार्थ बड़ा बोधपूर्ण था।

खादीनगर

वहाँ से तिरुपुर गये।* तिरुपुर तो खादीनगर है। वहाँ खादी की दुकानें ही दुकानें हैं। आजकल पाँच लाख तक की खादी बनती है और एक हजार करघे हैं, परन्तु भाई सन्तानम् ने बताया कि खादी झटपट बिक जाए, तो इतने कातनेवाले मिलते हैं कि ५० लाख तक की खादी हो सकती है। शहर की खादी की दुकानवालों ने गांधीजी को प्रत्येक दुकान पर बुलाया और उन्हें खादी और कुछ न कुछ भेट दी। समिति ने कत्तिनों की ओर से एक प्रदर्शनी की थी। वह बड़ी सुन्दर थी। तिरुपुर से कोई तीन मील पर इन्दुवनपलम् नामक एक गाँव है। वहाँ केवल दो करघों के सिवा सभी करघों पर हाथ-कता सूत बुना जाता है। कांजी लगाने तक बुनने की सारी

क्रियाएँ जब हम इस गाँव में गये, तब हो रही थीं। ये काम करनेवाले सब खादी के कपड़े पहने हुए थे; परन्तु गाँव के सारे बुनकर खादी पहनते नजर नहीं आये। इनसे गांधीजी ने खादी पहनने की प्रतिज्ञा लिवायी।

नगरपालिका ने मानपत्र देते हुए गांधीजी को खादीराजा वर्णन किया और कहा कि खादीनगर में स्वागत है।

इसका जवाब देते हुए गांधीजी बोले:

"आपके मानपत्रों के लिए धन्यवाद। अलीभाइयों को दिल्ली और बम्बई में काम है, इसलिए वे आ नहीं सके, इसका मुझे खेद है। नगरपालिका के मानपत्र में इस स्थान को खादीनगर बयान किया गया और मुझे खादीराजा कहा गया है। मुझे अपने नामकरण से अभिमान होता है और लगता है कि यदि किसी भी स्थान को खादीनगर कहा जा सकता हो तो तिरुपुर ही उस नाम के योग्य है।

"परन्तु मुझे अपनी मर्यादाओं का भान है। मैं जानता हूँ कि मैं कैसा दुर्बल खादीराजा हूँ। चरखे फक्त दस हजार चलते हैं, करघे सिर्फ दो हजार चलते हैं, खादी की बिक्री वार्षिक ५० लाख रुपये भी नहीं है। अगर आप यह जान लें कि खादीराजा की क्या अपेक्षाएँ हैं, तो आप समझ सकेंगे कि वह इन आँखड़ों से कितनी दीनता अनुभव करता है। परन्तु बात यहीं नहीं रुक जाती। मुझे कहा गया है कि यह जिला पचास लाख रुपये की खादी उत्पन्न करता है, परन्तु इसमें से दस फीसदी से ज्यादा यहाँ इस्तेमाल ही नहीं होती। इस सभा में बैठे हुओं को देखकर ही मुझे दिखाई दे रहा है कि इस कथन में कितना सत्य है।

"जब कुछ खादी भंडार मैंने देखे, तब खादी के नमूनों की एक पुस्तिका मुझे दी गयी थी। मैं नहीं जानता कि आपको इसकी कल्पना है या नहीं कि तिरुपुर किस-किस प्रकार की खादी पैदा कर सकता है। पुस्तक में दिये गये नमूने देखने पर मालूम होता है कि अनेक प्रकार की और कई तरह के रंगोंवाली खादी बनती है। यह सारी खादी ऐसी ही नहीं है, जो इस आबोहवा में पहनने में मोटी लगे। यहाँ बहुत लोग ऐसे हैं, जो २० और उससे अधिक अंक का सूत बुन सकते हैं। आप इन नमूनों में विविध प्रकार की छोटी और स्वच्छ सफेद कपड़ा भी देख सकते हैं। जिन्हें किनार चाहिए, उन्हें वह भी मिल सकती है। यह बात सही है कि कीमत के हिसाब से बम्बई और लंकाशायर के कपड़े से यह खादी महँगी है। परन्तु यदि आप दोनों प्रकार के कपड़े का टिकाऊपन ध्यान में रखें तो मुझे विश्वास है कि खादी आपको सस्ती लगेगी। इसके सिवाय जो हमेशा खादी पहननेवाले हैं,

उनका अनुभव मैं आपसे कहूँ। खादी पहनने के बाद उनकी रुचियों में इतना अधिक फर्क पड़ गया है कि इन लोगों के जीवन में सादगी आ गयी है।

"यह हो या न हो, परन्तु क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि गाँवों में बसनेवाले हमारे गरीब भाई-बहनों की बनायी हुई चीज लेना हमारा फर्ज है? आपके प्रदेश में बननेवाली चीज की अपेक्षा पंजाब में बनी हुई चीज आप पसन्द करें तो यह कहा जा सकता है कि आपकी प्रेम-वृत्ति उदासीन है। यदि हम दूसरों की जरूरतों का खयाल रखें तो इस देश में कोई भूखों न मरे। खादी का संदेश एक मूल्य संदेश है। मैं आपसे कहता हूँ कि जिन लोगों ने खादी नहीं अपनायी है, वे तुरंत ही अपना लें और प्रत्येक व्यक्ति चरखे की पुनःस्थापना करे। स्वेच्छा से काते बिना हम खादी को सस्ती बना ही नहीं सकेंगे। चरखे में महान् संभावनाएँ हैं, इसका मुझे भान होने से ही मैं महासभा से कातने के मताधिकार की बात स्वीकार करा सका हूँ।

"बहनों को मैंने कातते देखा। बुनकरों के एक आदर्श गाँव को मैं देखने गया। आपने इन बहनों को कातते देखा हो, इनके घरों में फैला हुआ सुखमय वातावरण देखा हो, तो खादी अपनाने में आप जरा भी आनाकानी नहीं करेंगे। मैंने सुना है कि खादी खपती नहीं, इसी कारण खादी बोर्ड हजारों बहनों को काफी काम नहीं दे सकता। म्युनिसिपल सदस्यों से मैं अनुरोध करता हूँ कि वे इन गाँवों में जायँ और जो कुछ करने योग्य हो, उस पर विचार करें।

"आपके यहाँ अस्पृश्यता और अनुपगम्यता के प्रश्न नहीं हैं, यह जानकर मुझे आनंद हुआ है। मुझे तो विश्वास हो ही गया है कि ये दूषण हिन्दू-धर्म के अंग नहीं हैं।

"हिन्दू-मुसलिम-एकता के बारे में बोलते हुए मुझे कहना चाहिए कि यह देश जितनी ऊँची कक्षा पर जा सकने की सामर्थ्य रखता है, उतनी ऊँची कक्षा पर तब तक जाना असम्भव है, जब तक सभी जातियों में ऐक्य स्थापित नहीं हो जाता।

"चौथी बात शराब-बन्दी की है। त्रावणकोर और कोचीन के मेरे भ्रमण में मुझसे कहा गया है कि इस बन्दी के कारण कितने ही घरों के सुखी जीवन का नाश हो गया है। आपके यहाँ यह प्रश्न हो तो मैं आशा रखता हूँ कि आप इस मामले पर भी विचार करें।

"आप सबका फिर से आभार मानता हूँ।"

ता. १९-३-१९२५

राजगोपालाचारी का आश्रम

वहाँ से पुदुपालयम के लिए रवाना हुए। यह छोटा-सा गाँव तिरुचेनगोड नामक तालुके में है और श्री राजगोपालाचारी ने वहाँ जाकर आश्रम स्थापित किया, इसलिए प्रख्यात हो गया है।

यहाँ के श्री रत्नसभापति गवंडर नामक जमींदार की कथा असहयोग के इतिहास में उल्लेखनीय है। जब श्री राजगोपालाचारी का धंधा धड़ाके से चल रहा था, तब इस जमींदार के पिता इनके मुवक्किल थे। एक बार श्री राजगोपालाचारी से उन्होंने कहा था कि मेरे लड़के को आप अंग्रेजी सिखाकर योग्य बना दें तो मैं आपको एक गाँव दूँगा। उन्होंने इनकार कर दिया था, परन्तु वकील और मुवक्किल की आत्मीयता तो उसके बाद बहुत बढ़ गयी थी और अन्त में मुवक्किल के लड़के श्री राजगोपालाचारी को पिता की तरह पूजने लगे थे। वकील ने जब धन्धा छोड़ा, तब उस स्वर्गीय जमींदार के पुत्र बड़े होकर इनके प्रति पहले से अधिक सम्मान रखने लगे। पहले तो श्री राजगोपालाचारी ने उनसे शराब छुड़वायी, फिर कुसंगति छुड़वायी और फिर खादी पहनायी। जब इतना हो गया, तब जमींदार ने श्री राजगोपालाचारी से प्रार्थना की कि पुदुपालयम नामक उनके गाँव में जाकर वे एक आश्रम स्थापित करें। इसके लिए सुन्दर और रमणीक पेड़ों से भरी एक सुन्दर बगीची उन्होंने भेट में दी। और आज उस जमींदार के पड़ोस में श्री राजगोपालाचारी अपना आश्रम बनाकर रहते हैं। आश्रम अर्थात् मट्टी की चार-पाँच दीवारें और ताड़पत्र के छप्परवाले झोंपड़े ! इसमें भाई सन्तानम्, नारायणन् आदि विद्वान् और वकील, एलुवालियार और लंकापति जैसे खादी-कला-निष्णात कार्यकर्ता तथा चार-पाँच अंत्यज बालक शरीक हो गये हैं। आश्रम में रूई इकट्ठी होती है, पूनियाँ बनायी जाती हैं और बुनाई होती है। आसपास के गाँवों से सैकड़ों स्त्रियाँ रूई ले जाती हैं और सूत लाती हैं। अधिकांश सूत २० नम्बर से कम नहीं होता और खादी सुन्दर बुनी जाती है। आश्रम में सत्याग्रहाश्रम के तमाम नियमों का पालन होता है और प्रतिव्यक्ति दस से ज्यादा खर्च नहीं आता।

रात को श्री रत्नसभापति गवंडर का परिवार गांधीजी के सामने आकर बैठा। बड़े परिवारवाले ठहरे, इसलिए सात-आठ स्त्रियाँ और चार-पाँच पुरुष थे। स्त्रियों को देखकर गांधीजी ने कहा: "क्यों, ये सब तो विदेशी वस्त्र हैं न?" श्री राजगोपालाचारी ने अब तक इन लोगों का ज्यादा परिचय नहीं दिया था ! अब दिया: "सब अपना सूत कातते और बुनते हैं और अपने ही सूत के कपड़े पहनते हैं।" दूसरे दिन[१] उस जमींदार के महल में गये। महल में भी ये भाई तो आश्रम ही चला रहे हैं। सभी बहनें एक बाग में बैठकर सुन्दर कात रही

थीं। घर में सफाई और सादगी का पार नहीं था। एक बड़े पिटारे में एक तरफ कांग्रेस को देने के सूत का ढेर मुझे बताया गया और दूसरी ओर अपने कपड़े बुनवाने के सूत का ढेर था !

श्री राजगोपालाचारी ने पाँच लड़के अंत्यजों के रखे हैं, इससे आस-पास के गाँवों में खलबली तो शुरू हो ही गयी है। "जमींदार और उनके कुटुम्ब को तो आघात नहीं पहुँचा न?" — गांधीजी ने पूछा। उन्होंने बताया कि आघात तो पहुँचा है, परन्तु वे समझते हैं कि अस्पृश्यता पाप है, इसलिए आश्रम में आते हैं और मदद देते रहते हैं; सिर्फ उन्हें जरा डर लग गया है कि कहीं गाँववाले रुठ जायँगे तो! परन्तु यह रुठना सहने और लोगों के जीवन सुधारने को तो यह आश्रम खोला ही गया है।

गांधीजी ने इस रम्य स्थान की शांति में दो दिन निवास किया। तीसरे दिन वहाँ से चलते समय गांधीजी ने एक सभा में[२] गाँववालों को आश्रम और उसके उद्देश्य समझाये। सभा में भजनिक तो थे, परन्तु हारमोनियम भी था।

---

१ ता. २०-३-१९२५

२ यह सभा ता. २१-३-१९२५ को हुई थी।

उन्हें सम्बोधन करके गांधीजी बोले:

"सड़क से हटकर एक ओर बसे हुए इस गाँव में आपसे मिलकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। आपका नाटक, संगीत, गीत देखने-सुनने की मेरी इच्छा थी। ये चीजें हमारे राष्ट्रीय जीवन में महत्त्व की हैं।

"परन्तु गीत-गीत में फर्क होता है। गीत कई तरह के होते हैं। एक गीत हमें ऊपर उठाता है और दूसरा नीचे गिराता है। जब हम कोई भक्तिरस का प्रार्थनामय गीत सुनते हैं, तब वह हमें ऊपर उठाता है। ऐसे भजन भारत में जगह-जगह सुनने को मिलते हैं।

"पुराने समय में हमारे यहाँ तंतुवाद्य थे। आजकल हारमोनियम ने उन उमदा वाद्यों की जगह ले ली है। मैं चाहता हूँ कि हम तंतुवाद्यों को फिर से अपनायें। वे जो स्वर निकालते हैं, वे ठेठ दिल में उतर जाते हैं और मुझे तो ऐसा लगता है कि हारमोनियम जो असर करता है, उसकी अपेक्षा तंतुवाद्य अधिक ऊर्ध्वस्थान पर ले जाते हैं। यह तो मेरी कल्पना में भी नहीं था कि इस आश्रम में हारमोनियम जैसा बेसुरा वाद्य हो सकता है।

"परन्तु हमारे दुर्भाग्य से आज तो कुछ भी जो नया हो, वह हमें अच्छा लगने लगता है और जो कुछ पुराना हो, वह नापसन्द होता है। परन्तु यदि हममें समझदारी हो तो हमें अच्छे-बुरे का भान होना चाहिए। पुराना सब खराब ही है, यह मानने की जरूरत नहीं है। इसी तरह यह भी नहीं कि वह सब अच्छा ही है। मैं आपको मिसाल दूँ। पाप पृथ्वी की तरह पुराना है। परन्तु इसीसे वह अच्छा है, ऐसा कहनेवाला कोई नहीं देखा गया। इसी प्रकार सत्य ईश्वर-जितना ही प्राचीन है, फिर भी वह सदा कल्याणमय है।

"आज एक प्राचीन वस्तु, जो अछि थी और जिसे आपने खो दिया है, उसके बारे में, तथा एक और पुरानी चीज, जो खराब थी और जिससे आप चिपटे हुए हों, उसके बारे में मैं कहना चाहता हूँ। मैं देख रहा हूँ कि आप सबके—खास तौर पर बहनों के—शरीर पर विदेशी वस्त्र हैं। मैं चाहता हूँ कि आप इस बात का विचार करें कि विलायती कपड़े पहनने का क्या अर्थ है। लगभग सौ वर्ष पहले हमारे बाप-दादों के समय घर-घर चरखा चलता था। आज जैसे हर घर में रसोई है और चूल्हा है, वैसे प्रत्येक घर में चरखा था और बहनें उस पर कातती थीं। वे जो सूत काततीं, उसे गाँव का जुलाहा बुनता था। इस प्रकार बने हुए कपड़े से हम अपना तन ढँकते थे।

"अब सोचिए। यहाँ ५०० मनुष्य हों और प्रत्येक व्यक्ति साल में आठ रुपये का कपड़ा खरीदे तो वर्ष में चार हजार रुपये खरचने पड़ेंगे। अर्थात् आप अपने गाँव से मांचेस्टर, जापान या बम्बई हर साल चार हजार रुपये भेज देते हैं। यह रुपया आप कहीं भी भेजते हों, परन्तु यह भेजना ही खराब काम है। इस प्रकार हम पुराने समय में एक अच्छा काम अपने देश के लाभ के लिए और भुखमरी से बचने का करते थे, परन्तु अब नहीं करते। फलस्वरूप हमें पता नहीं चलता कि भविष्य के वर्षों में हम क्या करें। इसलिए मैं आपमें से हरएक से कहता हूँ कि आज ही प्रतिज्ञा ले लीजिये कि अब से खादी के सिवा और कोई कपड़ा आप नहीं खरीदेंगे। और भी कहता हूँ कि प्रत्येक घर में चरखा जारी करें। चरखा आपके लिए कामधेनु बन जायगा।

"यह जानकर मुझे बहुत आनंद हुआ कि हमारे मित्र रत्नसभापति गवंडर ने अपने घर में कई चरखे जारी किए हैं। मैं इनके घर गया, तब इनके घर की स्त्रियाँ कात रही थीं। यह दृश्य देखकर मैं बहुत खुश हुआ। ये इस सूत को बुनवाकर खादी बनवाते हैं। इनके और इनके कुटुम्ब के आदमियों के शरीर पर नख-शिख खादी थी। ईश्वर ने इन्हें रुपया दिया है और इन्होंने चरखे और खादी को अपनाया है तो रुपया कमाने के लिए नहीं, अपने देश और धर्म के लिए अपनाया हैं। परन्तु हम तो गरीब हैं। इसलिए हमें तो स्वयं अपने लिए इन्हें अपनाया चाहिए।

"एक भाई ने मुझे थोड़ा-सा रुपया दिया है और कहा है कि गरीबों को कपड़ा और भोजन देने के लिए इसका उपयोग करना। परन्तु जिसके हाथ-पैर साबूत हों, ऐसा कोई गरीब हो तो भी उसे रुपये का दान देना मुझे उचित नहीं लगता। इसी प्रकार कोई गरीब अपना कपड़ा बनवा ले सकता हो तो उसे कपड़ा दिलवाना भी मुझे ठीक नहीं लगता। मेरी ऐसी राय है कि जब कोई रुपयेवाला आदमी अपने आत्मसंतोष के लिए किसीको भी अनाज और दूसरी चीजें देता है, तब वह दान गलत दान बन जाता है। इस तरह जो कुछ दान देना हो, वह अशक्त को—जैसे अंधे, बूढ़े और अपंग को, जो कुछ भी काम न कर सकें उनको—देना चाहिए। इसलिए राजाजी के साथ सलाह-मशवरा करके मैंने फैसला किया है कि इस रुपये का उपयोग गरीब लोगों को बाजार-भाव से सस्ती दर पर खादी देने में किया जाय। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि हम जो खादी उत्पन्न करते हैं, वह आम तौर पर दूसरे बाजारू कपड़े से महँगी होती है। और मुझे बहुत-से गरीब आदमियों ने कहा है कि यदि खादी महँगी न पड़ती हो, तो हम जरूर खरीदें। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आपमें जो गरीब हों और इस कारण खादी खरीद न सकते हों और भविष्य में खादी ही पहनने का व्रत लें, तो उन्हें सस्ते भाव से खादी दी जायगी। और यदि ऐसे बहुत आदमी होंगे और यह मिली हुई रकम कम पड़ेगी तो मैं और रुपया जुटा दूँगा।

"चरखा और खादी, जिन्हें आपने छोड़ दिया है और जिन्हें अब अपनाने को मैं आपसे कह रहा हूँ, वे हमारी पुरानी अच्छी चीजें थीं। अब आपसे अपनी ऐसी दूसरी पुरानी चीज के बारे में कहूँगा, जो खराब है, मगर आप उसे छोड़ नहीं रहे हैं। वह है अस्पृश्यता। हमारे देश और धर्म को नुकसान पहुँचानेवाली सबसे बड़ी बुराई यह है। मैं अपने-आपको सनातनी हिंदू मानता हूँ और स्वयं आपसे कहता हूँ कि हम जिस ढंग से आज अस्पृश्यता को पाल रहे हैं, उस तरह से पालना हमारा धर्म हमें नहीं सिखाता। भगवद्गीता को यदि हम महान् धार्मिक ग्रंथ मानते हों, तो जान लीजिए कि अस्पृश्यता एक महान् पाप है। वर्ण चार ही हैं, पाँच नहीं। यह बात सही है कि कुछ श्लोकों में अस्पृश्यता का उल्लेख है। परन्तु वह इस ढंग से नहीं, जैसा आजकल हम मानते हैं। उनमें जिस अस्पृश्यता का जिक्र है, वह अमुक धंधे के लिए है और अमुक संयोगों के सिलसिले में है। मेरी माँ, बहन या पत्नी को जब मासिक धर्म हो, तब जब तक यह रहे, तब तक मैं उसे न छूऊँ। जब तक मेरी माँ मेरे छोटे भाइयों को धोती हो और नहा न ले, तब तक वह अछूत बन जाती है। इसी तरह पाखाना साफ करनेवाला आदमी जब तक यह काम करके साफ न बन जाय, तब तक वह अछूत रहता है। इस प्रकार अस्पृश्यता एक कामचलाऊ स्थिति है और जिन्हें गन्दा काम करना होता है, उन्हीं तक सीमित है।

"परन्तु यह मानना कि अमुक मनुष्य अमुक जाति में जन्म लेने के कारण ही अछूत बन जाता है, एक अपराध है और पाप है। और शास्त्र भी इतना ही कहते हैं कि ऐसे आदमी को छू लिया हो तो नहा लें। परन्तु अभी जिस तरह अछूतपन रखा जाता है, उससे तो मानव-जाति के पाँचवे भाग को हमने हल्के दरजे में ही रख दिया है, ऐसा कहा जा सकता है। इसमें तो सारे देश के पतन की जड़ समायी हुई है। इससे हमारे यहाँ ऊँच-नीच के भेद पैदा हो गये हैं। सवर्ण हिन्दू अछूतों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अपने भीतर की पाप-वृत्ति से ये उन लोगों को जूठा और गन्दा खाने को देते हैं, खराब रास्ते ही इस्तेमाल करने को बाध्य करते हैं और हर प्रकार से उन्हें नीचा बनाते हैं। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि उनकी तरफ से ऐसा मानवतारहित व्यवहार करने के लिए शास्त्रों में कोई आधार नहीं है। किसीको साँप या बिच्छू काट ले तो यह कहने में कि उसकी सेवा न की जाय, न तो मानवता है और न अहिंसा का धर्म है। उलटे मेरा धर्म तो मुझे यह सिखाता है कि यदि मेरे पुत्र को और एक अछूत को साँप ने काता हो तो नजर पड़ने पर मुझे पहले देखभाल अछूत की करनी चाहिए और उसे बचाने की कोशिश करनी चाहिए। यदि मैं उस अस्पृश्य को भूलूँ, तो ईश्वर मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। आमत्याग के बिना आत्मदर्शन असंभव है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि इस प्रथा को, चाहे वह कितनी ही प्राचीन हो, तो भी छोड़ दो।

"अब तीसरी बात—वह है शराब पीने के पाप की। मैं जानता हूँ कि इस प्रांत में बहुत लोगों को शराब पीने की आदत है। मैं आशा रखता हूँ कि यहाँ उपस्थित लोगों में से, जिनमें यह लत है, वे इसे बिलकुल छोड़ देंगे। मदिरा-पान से इंसान अपने-आपको भूल जाता है, जब तक नशा रहता है, तब तक मनुष्य न रहकर पशु से भी नीचे दर्जे का बन जाता है, अपनी पत्नी और बहन के बीच का अन्तर समझ नहीं सकता और जीव तथा शरीर के अवयवों पर से काबू खो बैठता है। शराब से लेशमात्र लाभ नहीं होता। इसलिए मैं आशा रखता हूँ कि इसे मिटाने को आप सब कटिबद्ध हो जायँगे।

"अस्पृश्यता और शराब की बुराइयों से आपको छुड़ाने और खादी पहनाने को राजाजी यहाँ आकर आपके बीच बस गये हैं। इनकी सहायता में शक्ति-शाली, बुद्धिशाली और स्वार्थत्यागी युवकों की मंडली है। श्री गवंडर ने इनके उपयोग के लिए अपना सुन्दर बगीचा दिया है। ये सब कार्यकर्ता अपने कमाऊ काम-धन्धे छोड़कर आपकी सेवा के लिए यहाँ आये हैं। इनके थोड़े ही मास के परिश्रम से हजारों चरखे चलने लगे हैं। सैकड़ों औरतें हर सप्ताह आकर रूई ले जाती हैं और उसे कातकर बुनने के लिए दे जाती हैं। आपको बुनना हो तो आपको भी यह सूत बुनने के लिए मिल सकता है।

"परन्तु आप खुद इनकी मदद न करें तो ये लोग आपको बहुत सहायता नहीं दे सकते। इस गरीब प्रदेश में पिछले तीन-चार वर्ष से अकाल है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अकाल का सामना करने के लिए चरखे जैसा दूसरा एक भी सफल साधन नहीं है। आप राजाजी को कई तरह से मदद कर सकते हैं। जो रुपये-पैसे से मुक्त हैं, वे हर रोज आधा घंटा फालतू निकाल सकते हैं। आप आश्रम में पींजना और कातना सीख सकते हैं। आप यहाँ से रूई ले जा सकते हैं। उसे पींजकर, कातकर सूत यहाँ मुफ्त दे जाइए। ऐसा करें तो आपका तो सिर्फ आधा घंटा ही लगेगा, परन्तु राजाजी खादी अभी की अपेक्षा सस्ते भाव से बेच सकेंगे। आप में जो रुपयेवाले हैं, वे इन्हें रूई दे सकते हैं और यदि प्रत्येक व्यक्ति ऐसा करे, तो खादी मांचेस्टर के कपड़े से भी सस्ते भाव पर दी जा सकेगी। जो रूई न दे सकते हों, वे रुपये दें। यह आश्रम एक सार्वजनिक सम्पत्ति है। आप जब चाहें, तब यहाँ आ सकते हैं। यह आपके यहाँ है और जब तक आपको ऐसा लगे कि ये लोग जो कर रहे हैं, वह अच्छा काम है और आपके प्रदेश की सेवा कर रहे हैं, तब तक इनकी हर प्रकार सेवा करना आपका फर्ज है।

"श्री राजगोपालाचारी और उनके मित्र तथा मैं अस्पृश्यता को पाप समझते हैं, इसलिए आश्रम में अस्पृश्यता का त्याग किया गया है। परन्तु इनके आचरण का अनुचित अनुकरण मत करना। अपने आचरण से ये आपको इतना ही कहना चाहते हैं कि आप किसीको अस्पृश्य न मानें। यह नहीं कि आप अछूतों के साथ रोटी-बेटी व्यवहार रखें। हाँ, आश्रमवासी रोटी-व्यवहार रखते हैं, परन्तु इसका कारण यह है कि रोटी साथ न खाने का नियम पालन करना इनके लिए असंभव है। हमारे शास्त्रों में जैसा आचारण कहा गया है, वैसा आचारण इनका है। गृहस्थ-जीवन छोड़कर आश्रम में आने का इनका प्रयास है। परंतु आप यह न समझना कि ये लोग संन्यासी होने का दावा करते हैं। इन्होंने अपने को लोगों के सामान्य जीवन से हटा लिया है और अपना जीवन देश-सेवा के लिए अर्पण कर दिया है। इसी हद तक वे संन्यासी हैं। अब इनसे मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेद स्वीकार नहीं किये जा सकते। इन्हें तो जो कोई इनके पास चला आये, उसकी सेवा करनी है, इन्हें शिक्षा देनी है। सबको आश्रम के सब नियम-स्वास्थ्य के, पवित्रता के, प्रार्थना के, वस्त्रादि के—समान रूप में पालन करने ही चाहिए। इनकी स्थिति ही ऐसी है कि ऐसा सामूहिक जीवन बिताते हुए और अहिंसा-धर्म का पालन करते हुए ये एक-दूसरे के बीच खाने-पीने में अंतर अथवा भेद रख नहीं सकते। परंतु ये नहीं चाहते कि आप इस मामले में इनका अनुकरण करें, क्योंकि आश्रम के दूसरे धर्म और नियमों के आप अधीन नहीं हैं। आप

गृहस्थ हैं, संसारी हैं। आपको भोजन और विवाह के वर्णभेद से उत्पन्न होनेवाले नियम पालन करने का अधिकार है। आपको केवल इतना ही करना है कि अस्पृश्यों को अछूत न मानें और उनका तिरस्कार न करें।

"अब तीसरी बात—यह मत भूलना कि आश्रम शराबबंदी के लिए है।

"ये सारे लाभ आप आश्रम से उठा सकते हैं। मेरी ऐसी राय है कि हमारे देश में जब तक हजारों ऐसे सेवक पैदा नहीं होंगे, तब तक हमारा उद्धार नहीं है। इसलिए मैं आपको कहता हूँ कि आप अपने बीच में आये हुए इस आश्रम का महत्त्व समझें, आपसे बन पड़े, उतनी सेवा इसे दें और हजारगुनी सेवा लें।

"आपने मेरी बातें शान्तिपूर्वक सुनीं, इसके लिए आप सबका आभार मानता हूँ।"

२१-३-१९२५

तिरुचेनगोडे में हुई सभा को सम्बोधन करते हुए बोले:

"आज सुबह मैंने देखा कि आश्रम में स्त्रियों की कतार चली आ रही थी और उन्हें रुई दी जा रही थी। तब मुझे लगा कि इस देश में लाखों स्त्रियाँ ऐसी होंगी, जिनके लिए गुजारे का साधन चरखे के सिवा और कोई नहीं है—न हो सकता है। देश में गरीबी इतनी अधिक है कि यदि हम जो नसीब से आ गया, उससे आत्मसंतोष न मानते होते, तो जीवन अत्यंत भाररूप हो जाता। रोटी का एक टुकड़ा और जरा-सा नमक और वह भी रोज एक ही समय हमारी आबादी के दसवें भाग के लोगों को मिलता है, ऐसा चित्र अपनी दृष्टि के सामने रखें तो हमारे देश में फैली हुई गरीबी की आपको कल्पना होगी। यह चित्र मेरे मन में उठी हुई लहर नहीं है, परन्तु हमारे पितामह दादाभाई नवरोजी के द्वारा अविरत परिश्रम से एकत्रित जानकारी से प्राप्त होता है। अंग्रेज शासकों ने जो आँकड़े इकट्ठे किये थे, उनसे दादाभाई ने हमें परिचित कराया और बताया कि भारत गरीब और अधिक गरीब बनता जा रहा है।

"इस दुःख को दूर करने का साधन हमारे हाथ में है। हम स्वयं ही इस दुःख के कारण हैं। हमारी बहनों के काते हुए सूत का और हमारे जुलाहों के बुने हुए कपड़े का हमने त्याग किया है। हमने जापान और मांचेस्टर का और फिर बम्बई और अहमदाबाद का कपड़ा इस्तेमाल करना पसंद किया। ऐसा करते समय हमारे पड़ोसियों का क्या हुआ होगा, इसकी हमने तनिक भी परवाह नहीं की। हमारे गरीब किसान और मजदूर वर्ष के फाल्तू महीनों में कातकर जो थोड़ी-सी आजीविका पैदा कर लेते थे, उसे हम मिलों का कपड़ा काम में लेकर छीन लेते हैं, इसका विचार हमने नहीं किया। अपने इस अपराध की हम भारी कीमत चुका चुके हैं और चुका रहे हैं। परन्तु सौभाग्य से अब भी बहुत देर नहीं हुई। अपने देशबन्दुओं की पीड़ा के प्रति दिखायी गयी हमारी शिथिलता और लापरवाही हम छोड़ दें तो अब भी हम चरखे को अपनाकर उसे दूर कर सकेंगे।

"मैं दक्षिण के खादी-केन्द्र देख आया। मुझे कहा गया कि इस प्रांत के गरीब लोगों की पैदा की हुई खादी इस प्रांत के लोग अपनायें तो गरीबों के हाथ में रोज थोड़े-से पैसे आ जायँ। सभी जगह शिकायत सुनने को मिली कि पैदा की हुई खादी बिकती नहीं है, इसलिए रुई लेने आनेवाली स्त्रियों को लौटा देना पड़ता है। इसलिए आप सब भाई-बहनों से—जो मुझे सुन रहे हैं—प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी बहनों के काते हुए सूत से अपने पुरुषों की बुनी हुई खादी खरीदिए। मातृभूमि की सेवा करने का यह सबसे सुगम मार्ग है। जैसी

खादी पैदा होती है, उससे सन्तोष मानकर इसे आप खरीदेंगे तो आपने देशबन्दुओं की सहायता की, ऐसा माना जायगा। और बारीक खादी पैदा करने के लिए सूत में तो बारीकी लानी पड़े, उसे लाने के लिए तथा खादी को सस्ती बनाने के लिए मैं कहता हूँ कि रोज आध घंटे चरखा चलाकर यह समय आप देश के लिए दीजिए। पिछले कई बरसों से हमारे देश के उत्तम दिमागों को जो प्रश्न सता रहा है, उसका मजबूत किन्तु सादा उपाय चरखा है। आप यह शिकायत नहीं कर सकते कि कातना सिखाने या खादी खरीदने की व्यवस्था नहीं है। आपके यहाँ आश्रम स्थापित किया गया है, जहाँ खादी के प्रचार के लिए देश के उत्तम युवक अपनी शक्ति खर्च कर रहे हैं। आपको केवल वहाँ जाना है, वहाँ से बिना मूल्य चरखा लाना है और मनचाही खादी खरीदनी है।

"इतना ही महत्त्व का मामला अस्पृश्यता का है। यदि हमें अपने धर्म को बचाना है तो अस्पृश्यता को मिटाना ही होगा। मैं यह कहते नहीं थकता कि अस्पृश्यता पाप है। जिस प्रकार की अस्पृश्यता हम मानते हैं, उसके लिए शास्त्रों में कोई आधार नहीं है। मौजूदा तरीका इंसानियत और धर्म के विरुद्ध है। इसमें ईश्वर का इनकार है। किसी दूसरे मनुष्य को अछूत मानने के लिए प्रभु ने मनुष्यों को नहीं बनाया। मैं आपसे यह नहीं कहता कि किसी के साथ खाने को बैठिए और यह भी नहीं कहता कि जिस किसी पुरुष को आप पसंद न करें, उसके साथ अपनी लड़की को ब्याह दें। परन्तु मैं आपसे यह कहता हूँ कि कोई एक आदमी किसी एक जाति में पैदा हुआ हो, इसीलिए उसे अस्पृश्य न मानिए। जब ईश्वर किसी एक मनुष्य को नीचा पैदा कर देगा, तब वह ईश्वर नहीं रहेगा। आप आश्रम में जायँ और वहाँ काम करनेवाले पंचम् लड़कों को देखें। मेरा आपको आह्वान है कि आप यह बता दें कि ब्राह्मण लड़कों से ये लड़के भिन्न हैं। इन्होंने थोड़ी-सी दया देखी, थोड़ी-सी मानवता अनुभव की और थोड़ा प्रेम चखा और ये लोग आश्रम के साथ एकरूप हो गये। आश्रम के दूसरे सब लोगों जितने ही ये लोग होशियार और प्रेमपात्र हैं। आश्रम में रहने वाले उच्च-से-उच्च कोटि के ब्राह्मण जितने ही ये साफ हैं और ईश्वर से डरनेवाले हैं। मैं चाहता हूँ कि हम अपनी उद्धतता छोड़ें और आनेवाले नाश से हिन्दू-धर्म को बचायें।

"दूसरी बात मदिरा-सम्बन्धी है। रत्नसभापति गवंडर के बढ़िया उदाहरण का अनुसरण कीजिए। एक क्षण पहले ही इनके भाई ने मद्य-निषेध और खादी के लिए हृदयपूर्वक काम करने की शपथ ली, यह जानकर मुझे बहुत आनन्द हुआ और शांति मिली। इनके परिवार की स्त्रियों को देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इन्हें पैसे की जरूरत नहीं है। ये तो देश के लिए कातते हैं। परन्तु आज मैं प्रत्येक स्त्री और पुरुष को कातने के लिए कहता हूँ।

"आप सबका दुबारा आभार मानता हूँ। मैंने जो कहा है, उसे याद रखें और जीवन में ढालें।"

आश्रम में हमें बहुत दिन के कष्टदायक सफर के बाद साँस लेने का स्थान मिला। अस्पृश्यता के सम्बन्ध में श्री राजगोपालाचार्य के साथ मतभेदों के बावजूद आज तो सैकड़ों स्त्रियाँ और पुरुष आते हैं, आश्रम का पानी पीते हैं और सम्पूर्ण सद्भाव रखते हैं। भविष्य ईश्वर के हाथों में है!

२७ से ३१ मार्च तथा १-४-१९२५ आश्रम में।

२-४-१९२५

काठियावाड़ में तीसरी बार।

बोटाद

यह प्रवास पिछले प्रवास से कुछ भिन्न था ! पिछला प्रवास कई राजाओं के निमंत्रण के अनुसार रखा गया था। यह सफर काठियावाड़ की प्रजा के इच्छानुसार था। आरंभ बोटाद से किया गया, इसमें औचित्य ही था। बोटाद के 'स्पृश्य' वर्ग का निमंत्रण था सो बात नहीं, परंतु बोटाद दूदाभाई का गाँव था, इसलिए गांधीजी वहाँ जाने को पहले आकर्षित हुए। सत्याग्रह आश्रम में खासा समय बिताने के बाद दूदाभाई बोटाद की अंत्यज पाठशाला चला रहे हैं। बहुत छोटी-सी पाठशाला में से उन्होंने उसे १० विद्यार्थियों की पाठशाला बनायी है। पाठशाला का समारोह ढेढवाड़े में ही हुआ। बच्चों ने सुन्दर भजन गाये और खादी के इनाम लिये। गाँव के थोड़े-से लोग तो उसमें हाजिर थे ही, परंतु कहा जाता है कि ब्राह्मणों ने और दूसरे सनातनियों ने गांधीजी के आगमन का बहिष्कार किया था।

गांधीजी ने कहा: "मैं पहले पूछना चाहता हूँ, जो अंत्यज हैं, वे हाथ उठायें।" फिर एकत्रितों को सम्बोधन करके बोले:

"मैं बोटाद में कैसे आया, यह आपको पता है। मैं दूदाभाई का बुलाया हुआ आया हूँ। इनकी लड़की लक्ष्मी मेरे साथ रहती है। वह मेरी गोद ली हुई है। आप सब उसकी परीक्षा लेना। देखना, वह आश्रम में आकर सुधरी है या बिगड़ी है। मैं यह नहीं कहता कि लक्ष्मी में सारे गुण आ गये हैं, परंतु यह आप ही देख सकेंगे कि सहवास का क्या असर हुआ है। और मुझे आशा है कि लक्ष्मी पास होगी।

"किसीने कहा कि अंत्यजों के सिवा दूसरे लोगों के सम्बन्ध की दृष्टि से बोटाद सबसे घटिया गाँव है। मैंने सुना है कि बोटाद के ब्राह्मणों ने संकल्प किया है कि कोई हिन्दू इस सभा में न आये और स्टेशन पर न जाय। मैं देखता हूँ कि यहाँ काफी आदमी आये हुए हैं। ब्राह्मणों की की हुई मनाही से यह गाँव खराब नहीं ठहरता। अंत्यज का मतलब क्या है, यह तो त्रावणकोर में जाकर देखो, तब पता चलेगा। वहाँ तो छुआछूत की हद हो गयी। हम जहर पैदा करके कुछ नहीं करना चाहते। ब्राह्मणों ने मनाही की, इससे मुझे कुछ नहीं लगा। ब्राह्मण भी मनुष्य हैं। ब्राह्मणेतरों में भी बहुत ऐसे हैं, जो अस्पृश्यता को मानते हैं। समय होता तो मैं तो इनके पास भी जाता और चर्चा करता। हमारा न ब्राह्मणों के साथ झगड़ा है, न किसी और के साथ। जिसे अस्पृश्यता

धर्म लगे, वह उसके अनुसार करे और हम अपनी समझ के माफिक करें। आपमें तपस्या और साधुता होगी तो समय पाकर वे समझ जायँगे कि ये लोग आपके प्रति कैसा अपराध कर रहे हैं। आपका त्याग होने में आपके धर्म की परीक्षा होती है, आप ईश्वर में कितना विश्वास रखते हैं, इसकी आजमाइश होती है। मेरा तो एक राजमार्ग है। संसार में सबको सिर नवाकर चलना—किसी से डरने के कारण नहीं, परंतु सबका सम्मान करने के लिए। मैं संसार में रहा हूँ और उसके साथ मेरा सम्बन्ध अटूट है। इसलिए आपका मार्ग सीधा है।

"परंतु आपमें सफाई की कमी है। आप लक्ष्मी का उदाहरण लें और देखें कि वह साफ रहती है या नहीं—अंदर से भी और बाहर से भी। आप रोज सुबह राम का नाम याद करें और प्रार्थना करें कि हे प्रभु, जैसे आपने शरीर का मैंल मैं धोता हूँ, वैसे मेरे भीतर का मैंल तू धो दे। हमारे हृदय को, आत्मा को, और कौन साफ करेगा ? अन्तर्यामी की सहायता के बिना अन्तर साफ नहीं हो सकता। अब और लोग अन्त्यजों के साथ रहने लगे हैं, परंतु मैं देखता हूँ कि अन्त्यजों में दोष हैं। आप यह हरगिज नहीं कह सकते कि 'हम कितने ही व्यसनी हों या शराबी हों, तो इससे दूसरों को क्या?'

"इस पाठशाला में अभी और लड़के भरती हों और दूदाभाई बहुत वर्ष जियें। इस आशीर्वाद में मुझे आशा है कि दूदाभाई के स्पर्श से आप सब अच्छे हो जायँगे। प्रह्लाद पर बहुत दुःख पड़ा था, परंतु उस दुःख देनेवाले पर उसने गुस्सा नहीं किया था। आपने अपना कर्तव्य-पालन कर लिया तो समझ लोजिए कि जगत् जीत लिया।

"आपको खादी अपनानी चाहिए। आजकल अंग्रेजी पढ़े हुओं की खुशामद होती है। परंतु ऐसा समय आ रहा है, जब मजदूरों की खुशामद करोगे।

"इस प्रवास में बोटाद पहला धाम है। प्रभु से मेरी इतनी प्रार्थना है कि आपको ऐसी मति सुझाये कि जो शब्द कहें गये हैं, उन्हें आप समझ लें। अछूतपन मिटाना आपका पहला काम है। अस्पृश्यता में कोई भी धर्म हो ही नहीं सकता।"

सनातनियों का बहिष्कार तो घड़ीभर का था, क्योंकि गांधीजी ढेढवाड़े में घूमकर आये तो उन्हें गाँव में ले जाया गया और वहाँ दरबारगढ़ में एक बड़ा जलसा हुआ। वहाँ गांधीजी ने कहा:

"बोटाद में मैं तो केवल अन्त्यजशाला देखने आया हूँ। आपके इस समारोह ने मेरी दृष्टि से मुझे अप्रत्याशित लाभ दिया।

"आपको अपना संदेश पहुँचाने का मुझे अवसर मिला, यह अच्छा हुआ। यहाँ ब्राह्मण मुझसे नाराज हैं, उन्हें मेरा काम पसंद नहीं है, यह सुनकर मुझे जरा भी रोष नहीं हुआ। दुःख अवश्य हुआ, क्योंकि जिसे मैं पुण्यकर्म मानता हूँ, उसमें विघ्न आता है। परंतु बोटाद के तमाम हिन्दुओं ने मेरा त्याग कर दिया होता तो भी मुझे रोष हरगिज न होता। मैं यह समझता कि मुझे अपना सन्देश सुनाने और समझाने के लिए अधिक तपश्चर्या करनी होगी।

"परन्तु अब मुझे छोड़ दें, तो मैं अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। सारा जगत् छोड़ दे तो भी जो मनुष्य अपने विश्वास, मत या सिद्धान्त पर कायम रहेगा, वही धर्मात्मा कहलायेगा। धर्म उसका नाम है, जिसके लिए मनुष्य सब कुछ होम दे, जिसके लिए मरने को तैयार हो जाय, फिर भले ही दुनिया उसके धर्म को पाप कहे या पाखंड कहे। अपने सिद्धान्त के लिए सर्वस्व होम देने योग्य आत्मविश्वासवाला मनुष्य ही सच्चा धर्मात्मा है। अस्पृश्यता के प्रश्न के बारे में मेरा आत्मविश्वास इस हद तक पहुँच गया है। इसीलिए मैं जहाँ-तहाँ कहता रहता हूँ कि अस्पृश्यता पाप है, मैंल है और जब तक हम इसे छोड़ नहीं देते, तब तक भारत का उद्धार नहीं है।

"हमारे पाप के छींटे हमारे साथियों को भी लगे हैं। यह सारे भारत पर लागू होता है। हम अपने ही पाँचवें अंग को तिरस्कृत कर दें तो इसे क्या कहा जाय? मैं पाँचवाँ अंग कहता हूँ, क्योंकि ये आँकड़े हमें दिये जाते हैं। मैं हिन्दू-शास्त्र पढ़ते-पढ़ते थक गया, परन्तु पाँचवाँ वर्ण मैं कहीं भी नहीं देखता। शास्त्रों में दो-चार ऐसे श्लोक हैं, जिनमें कहा गया है कि अमुक को अमुक समय स्पर्श करके नहाना चाहिए। रजस्वला को मैं न छूऊँ, इसका क्या अर्थ? हमेशा के लिए जन्म से अछूत कौन है? इस अस्पृश्यता के भीतर जो भाव है, वह यह है कि जिसे छूने से हमें छूत लगे, उसे छुआ जाय। ऐसा तो अंग्रेजी वैद्यक में बहुत जगह है। दूदाभाई तो ईश्वर का भजन करते हैं और सब लड़कों को पढ़ाते हैं। उन्हें अछूत मानना पाप है। भंगी जो हमारे पाखाने साफ करते हैं, उन्हें अस्पृश्य मानना पाप है, अधर्म है। ये सब बातें जब तक नहीं मिटेंगी, तब तक भारत सुख से नहीं रह सकता। मैं अनुरोध करता हूँ कि आप इस पाप को भूल जाइए।

"मेरा त्याग करने से शायद आपको नुकसान भी हो। परन्तु मेरा कुछ बुरा नहीं होगा। मेरा त्याग करोगे तो मेरी कोई हानि नहीं, परन्तु शायद आप कुछ खोओगे, क्योंकि आप मेरे जैसा सेवक गँवा बैठेंगे। इसलिए बोटाद के महाजनों से कहना चाहता हूँ कि इस मामले पर बार-बार विचार करना। अंत्यजों को गालियाँ देना, लात मारना अधर्म के लक्षण हैं।

"मैं आपके तन पर खादी नहीं देखता। खादी का यह त्याग क्यों? यहाँ बैठकर खादी पैदा करने के बजाय विरमगाम जाकर हमारी स्त्रियाँ कपास साफ करें, यह ठीक है? क्या काठियावाड़ की प्रत्येक स्त्री बहन नहीं है? माता नहीं है? इन लोगों के काते हुए सूत का कपड़ा आप न पहनें, यह कैसे सहन हो? खादी पहननें में आपको क्या नुकसान है? आपकी चमड़ी इतनी कोमल हो गयी है कि आप इसे सह नहीं सकें? इन बहनों को मैंने बुलाया है। ये अपनी पेटियाँ ले आयी हैं। उनमें भरी हुई खादी देखिए और उसे खरीदकर इनका भार हलका कीजिए।"

राणपुर तो सौराष्ट्र का मोर्चा है। वहाँ बैठे-बैठे भाई अमृतलाल सेठ चारों दिशाओं में बाण फेंकते हैं, क्योंकि देशी राज्यों के बीच में स्थित यह एक लालबिन्दु है और देशी राज्यों की प्रजा की सेवा करने के लिए यहाँ सुरक्षित रहने में वे बाधा नहीं मानते। राणपुर की प्रजा को तरफ से 'सौराष्ट्र' ने गांधीजी का भावपुर्ण स्वागत किया। दो-तीन घंटे तक सौराष्ट्र के भजनीकों का सबको स्वाद चखाया गया। लोगों ने पचास मन रूई के मूल्य जितनी थैली भी तैयार रखी थो, परन्तु उमड़ते हुए उत्साह में गांधीजी को सुनने की उन्हें परवाह नहीं रही।

मानपत्रों के लिए आभार मानते हुए गांधीजी ने कहा:

"इस समय आप मुझसे किसी लम्बे व्याख्यान की आशा रखते होंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता। परन्तु इतना कहना चाहता हूँ कि इस काठियावाड़ में हम इस समय एक ही काम कर सकें, तो भी काठियावाड़ में जो कंगाली बढ़ती जा रही है, उसे किसी हद तक रोका जा सकता है। वह चीज क्या है, इसका उल्लेख आपने अलग ढंग से अपने मानपत्र में किया है। जैसे-जैसे मैं घूमता हूँ, वैसे-वैसे पता चलता है कि खादी-चरखे का काम हम नहीं कर सकेंगे तो यह कंगाली जायगी नहीं। और हमें अस्पृश्यता को भी मिटाना ही पड़ेगा। यहाँ हिन्दू-मुसलिम-एकता है, इसके लिए आपको बधाई देता हूँ। जिन-जिन बातों की आपने अपने मानपत्र में स्तुति की है, वे सब आप अपने जीवन में भर दें तो अपने कार्य की असंख्यगुनी कीमत बढ़ा लेंगे।"

सोनगढ़

राणपुर से सोनगढ़ आये । सोनगढ़ में मुनि श्री कल्याणचंद्रजी तो भावनगर की परिषद् के समय से गांधीजी की राह देखते बैठे थे । उन्हें गांधीजी को बताना था कि जैन साधु भी चरखा चलाने में साधुता का लोप नहीं मानते । दुर्भाग्य से मैं कल्याणचन्द्रजी का आश्रम देखने को नहीं रह सका था और उसे देखकर गांधीजी आश्रमधर्म और साधुओं के कर्तव्य के बारे में जो महत्त्वपुर्ण उद्गार प्रकट करने को प्रेरित हुए थे, वे सुनने का मुझे मौका नहीं मिल सका । परन्तु वहाँ की व्यवस्था, साधु-जीवन व्यतीत करते हुए भी खादी और चरखे के प्रति उनकी निष्ठा देखकर गांधीजी चकित हो गये थे, ऐसा बाद में उनसे ही सुना । कहते हैं कि वहाँ चरखाशाला के सुत का ताला लगाया गया था । अपरिग्रह को मूर्तरूप देने की इससे अधिक कलामय योजना कोई हो सकती है?

मढड़ा

वहाँ से गांधीजी मढड़ा गये। मढड़ा में शिवजीभाई ने आश्रमों और सदनों का संग्रहस्थान बना रखा है। और एक मंदिर बनवाकर उसमें भारतदेवी की मूर्ति की स्थापना कराई है। रात को देर से पहुँचकर सुबह जल्दी रवाना हो गये, इसलिए तमाम आश्रम और 'सदन' देखने का अवकाश नहीं रहा। परंतु आम लोगों के जानने लायक बात है कि उद्योगाश्रम में ओतने-पींजने से लगाकर बुनने तक की सारी क्रिया सिखाई जाती है। शिवजीभाई की शिकायत थी कि इन आश्रमों का जितना चाहिए, उतना लाभ नहीं उठाया जाता। जिसे सारी वस्त्र-कला सीखनी हो, वह कुछ भी खर्च किये बिना इस उद्योग-शाला से लाभ उठा सकता है।

शिवजीभाई ने अपना कार्य-विवरण सुनाते हुए कहा था कि गांधीजी का संदेश स्वीकार करके चरखा चलाते हुए यह आश्रम खोलकर बैठा हूँ, परंतु उनकी कही हुई रुपये की मदद तो मिलती ही नहीं। इन उद्गारों में भरी हुई अधीरता को सारे वातावरण की सूचक समझकर गांधीजी ने रात को ग्यारह बजे सेवक के धर्म पर नीचे लिखा प्रवचन किया:

"यहाँ उद्योग-शाला है, सेवाश्रम है, योगाश्रम है। इन सबमें भाषण के लिए स्थान नहीं हो सकता। उद्योगी मनुष्य को भाषण की जरूरत ही नहीं होती। योगी हों तो वह बोले भी नहीं और जिस दिन सेवा बोलने लगे, उस दिन समझ लेना कि वह बेकार हो गयी।

"भाई शिवजी ने अपने भाषण में उद्गार प्रकट किये कि लाख रुपये हों तो आश्रम ठीक ढंग से चल सकेगा, और मेरा अनुभव उद्धृत किया है कि कातने लगें तो रुपया आयेगा। यह नहीं पूछा था कि कितने समय कातें तो रुपया आयेगा। और इतना समय चरखा चलाते हुए हो गया, तो भी यह रुपया नहीं आया, इसके लिए आश्चर्य प्रकट किया। जो मनुष्य अपने कार्य पर विश्वास रखे, उसे तीन-चार महीनों में कुछ न मिले तो वह यह न समझे कि कुछ मिला नहीं। परंतु यह सोचे कि कुछ किया नहीं। और इस आरंभशूर देश में थोड़े समय के काम के बाद मान लें कि हमारी सोची हुई चीज आ पड़ेगी, तो यह अविश्वास का चिह्न है। मेरे शब्दों में से अर्थ निकालनेवालों से मैं कहूँगा कि मेरे शब्दों का ऐसा अर्थ न करो कि मैं तो इतनी हद तक काम करूँगा और परिणाम न आये तो छोड़ दूँगा।

"मैं अपनी जिंदगी के ऐसे बहुत-से कड़वे और मीठे अनुभव बता सकता हूँ कि कई बार हम थक जाते हैं। और सभी हमसे रुठे हुए लगते हैं, तब अज्ञात और अप्रत्याशित रूप से रुपये की वर्षा हो जाती है। जब मैंने स्वराज्य लेने की एक वर्ष की मीयाद मुकर्रर की, तब ईश्वर ने मुझे पछाड़ा। ईश्वर ने मुझसे कहा कि 'तू कौन मीयाद मुकर्रर करनेवाला?' यह सही है कि मैंने तो शर्त रखकर एक वर्ष की हद बाँधी थी। परंतु शर्त रखने पर भी मुझे समझना चाहिए था कि भारत की शक्ति कितनी है। शक्ति कितनी है, यह जानने में मैंने भूल की। यह मेरा ही दोष था; दूसरे का दोष नहीं कहा जा सकता। फिर भी १९२०-१९२१ के समय में मेरा जो विश्वास था और जो श्रद्धा थी, वह आज उससे कई गुणी अधिक है। और इन्हींसे मैं शांति और सुख प्राप्त कर रहा हूँ। मेरी शांति और सुख में जो भाग लेना चाहते हों, वे मेरी श्रद्धा प्राप्त करें। आपने मुझे शांति का सरदार कहा है। परंतु मेरे मित्र शास्त्री या सरकार तो मुझे अशांति का सरदार मानते हैं। अहिंसा मेरा मंत्र है; फिर भी मेरे नाम से बहुत लोग हत्या करें, और गालियाँ दें तो मेरी अहिंसा का क्या अर्थ रहे? मैं देखता हूँ कि मैं जो बात कहता और करता आया हूँ, उसका प्रतिबिंब ऐसा पड़ता है कि उसने विचित्र स्वरूप धारण कर लिया दिखता है। इसलिए मैं अपने मन से सवाल पूछता हूँ कि मेरी अहिंसा कैसी होगी? ऐसे विचित्र होते हुए भी मैं अपने अहिंसा के मंत्र से कैसे भूत की तरह चिपट रहा हूँ? मैंने यह समझा है कि दूसरे क्या कहते हैं, उसका विचार किये बिना काम करते ही रहना है। इस प्रकार पागल होने के डर से रहित होकर मैं अपना काम करता चला जा रहा हूँ।

"मैं जो कहता हूँ, उसका सच्चा अर्थ करनेवाले की प्रशंसा और अनर्थ करनेवाले की निंदा, दोनों सुन लूँगा। मनुष्य अपने लिए जान-बूझकर जो मार्ग निश्चित कर चुका हो, उस मार्ग पर चलते रहने में ही उसका श्रेय है। कार्य-परायणता में मेरा अखंड विश्वास है। योद्धा कभी थकता ही नहीं। वह तो जूझते-जूझते ही मरना

चाहेगा, और ऐसा विश्वास रखेगा कि जीते जी जीत न दिखे तो मरकर जीत देखूँगा। तपश्चर्या करते-करते जीव जाय और सारा आत्मविश्वास जमीन में मिल जाय, तो भी गांधी का कहा हुआ आत्मविश्वास का मंत्र सच्चा है और सोची हुई वस्तु दूसरे जन्म में भी मिलेगी, ऐसी श्रद्धा रखे।

"भगवान् कृष्ण ने गीताजी में कहा है कि किया हुआ कोई काम व्यर्थ जाता ही नहीं। हम तो निमित्तमात्र हैं। किये हुए काम का फल मिले तो सुदुपयोग करें, न मिले तो नाचें। हमें समझना चाहिए कि कितनी बीसी के सौ होते हैं। ५६ वर्ष की उम्र में आपसे कहता हूँ कि अनेक तपस्याओं के बाद मैंने अपने को सुरक्षित मान लिया था; परंतु अनुभव से देखा था कि मैं सुरक्षित नहीं था और तुरंत सावधान हो गया था। एक श्रेष्ठ ज्ञानी के कहे हुए शब्द याद दिलाता हूँ। वे कहते थे कि कोई भी मनुष्य जब तक मरे नहीं, तब तक उसे ज्ञानी और सुखी न माना जाय, मरते समय उसकी आत्मा साक्षी दे कि यहाँ (हृदय में) राम का नाम लिखा हुआ है, तो उसके लिए कुशल है। परन्तु उसे यदि यह लगे कि इतना करना रह गया है, लड़के ब्याहने रह गये हैं, विलायत गया हुआ लड़का अभी आया नहीं, तो उसे सद्गति नहीं मिलेगी। परीक्षा के समय राम-नाम भूल जाय तो उसकी कुशल नहीं है। अंतिमम श्वास के साथ नारायण का नाम न हो, तो सब किया-कराया नष्ट हो जायगा।"

अनेक नामोंवाले आश्रमों को लक्ष्य में रखकर गांधीजी ने कहा:

"उद्योगाश्रम कितना सुन्दर नाम है? और उद्योग में सब कुछ आ जाता है। जहाँ ज्ञान, सेवा और कर्म की त्रिवेणी चाही गयी है, वहाँ उद्योग-आश्रम और सेवाश्रम ये दो करने में विचार की दृष्टि से हमें तीनों का सुसंगम करने का उद्देश्य रखना चाहिए और इसके लिए योगाभ्यासी को कहना चाहिए कि घड़ीभर भी ईश्वर का अविश्वास मत करना और ईश्वर के साथ खेल मत खेलना, यह न समझना कि भारत के लोग पाखंडी हैं। वे पाखंडी नहीं, वे तो ३३ करोड़ देवता हैं—यदि हम उनमें एक होकर रहें तो; नहीं तो पिशाच भी लग सकते हैं। पार्वती को पति के रूप में शिवजी को प्राप्त करने के लिए हजारों वर्ष तपस्या करनी पड़ी थी। फिर यह तो कलयुग है। आप यह मानते हों कि ज्ञान, सेवा और कर्म का सुसंगम घड़ीभर में बता सकते हैं तो यह मिथ्या है। शंकराचार्य ने यह वर्णन करते हुए कि मोक्ष प्राप्त करनेवाले में कितना धीरज होना चाहिए, कहा है कि एक तिनका लेकर समुद्र को उलीचने में जितना धीरज चाहिए, उससे अधिक धीरज हो, तो ही मोक्ष प्राप्त कर सकोगे। यहाँ तो पंडित लालन और शिवजीभाई मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा रखकर बैठे हैं। इन्हें उनसे भी ज्यादा धीरज रखना चाहिए।

"ये यदि यह चाहते हों कि रुपये की वर्षा हो, तो इनसे कहूँगा कि रुपये तो हाथ का मैंल है। सद्भाव आत्मा का उत्तम गुण है। और उसे लाना कठिन है। जब शिवजीभाई या लालन को ऐसा लगे कि लोग रुपये नहीं देते, तब वे अपनी दृढ़ता की, आत्मदर्शन की कमी मानें। वे यह न मानें कि इन्हें आत्मदर्शन हो गया है, बल्कि यह मानें कि आत्मा के आभास का ही दर्शन हुआ है। जरा-से ब्रह्मचर्य-पालन से हम शेखीखोर बन जायँ, जरा-से अपरिग्रह से जगत् को उपदेश देने निकल पड़ें, तो जुल्म ही हो जाय न! मुझे तो ब्रह्मचर्य की व्याख्या और विस्तार क्षण-क्षण बढ़ता हुआ लगता है और मैं ऐसा ब्रह्मचारी नहीं कि आज उसकी सम्पूर्ण व्याख्या कर सकूँ। सत्य की व्याख्या के बारे में भी ऐसा ही कहा जायगा। मैं इतना सत्यशील नहीं हो गया कि आज सत्य की सम्पूर्ण व्याख्या कर सकूँ। अहिंसा भी ऐसी ही वस्तु है। जिस शास्त्रकार ने यह चीज़ ढूँढी, उसे इस भाव के लिए 'स'कार' वाचक शब्द ही नहीं मिला, क्योंकि उसने कहा कि इस गुण की सीमा नहीं है। इसलिए उसने 'अहिंसा' शब्द निकाला। उसकी **नेति नेति** पुकारनेवाले जैसी स्थिति हो गयी। वस्तु की साधना करनेवाले को यह वस्तु समझकर साधना करनी चाहिए।

"चरखे में आजीविका है, उद्योग है, ज्ञान है। मैंने आजीविका का उल्लेख किया, क्योंकि शिवजी हवा पर गुजारा नहीं करेंगे। भारत में यह स्थिति नहीं निभती। उद्योग से ही गुजारा पैदा करना है। योगारूढ़ बनना हो, तो यह चक्र फेरने से हो सकते हैं। चरखे के द्वारा पट्टणी साहब की सेवा नहीं होगी, परन्तु २६ लाख किसानों की सेवा करनी हो, तो चरखे के सिवा और कोई रास्ता नहीं। मेरी इस बात को विधाता का लेख मानना।"

रात के ११।। बज रहे थे। परन्तु शिवजी पट्टणी साहब से कुछ कहलाये बिना रहते? वे खास इस प्रसंग पर विलायत जाने से पहले गांधीजी से मिल लेने को आये हुए थे। उन्होंने देहातियों की भाषा में देहातियों को सम्बोधन करते हुए कहा:

"अगर यह पढ़े-लिखों की सभा होती, तो आपके सामने खुले सिर न खड़ा होता। यहाँ तो आंबा पटेल के पास खड़ा हूँ और धनीकाकी के आगे खड़ा हूँ।

"चरखे में कैसा मजा है, यह आपको समझना हो तो यहाँ एकत्रित सभी से कहूँगा कि जैसा मजा आपको हल चलाने में आता है, वैसा ही चरखे में आता है। बारह बज गये हों, मध्याह्न हो गया हो, किसान हल चला रहा हो और ठूँठ ढेलों में फँस जाय और ढेला किसी तरह न निकले, ढोर को डाँटते जायँ और फिर बड़ी मुश्किल से हल चले, उस समय हल का मजा समझ में नहीं आता। परन्तु बरसात आये और फसल खूब पैदा

हो और खलिहान से लाकर उसे घर में भरें, तब हल का मजा मालूम होता है। ऐसा ही इस चरखे का मजा है। मुझे भी पहले-पहल ऐसा ही हुआ था। चरखा किसी तरह चले ही नहीं, सूत बार-बार टूटे। फिर भी ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि न काटूँ तो उपवास हो, इस प्रकार या तो उपवास हो या प्रतिज्ञा टूटे। परन्तु ऐसी कोई बात हो जाय तो जिन्दगी तो बेकार हो जाय, ऐसा करते-करते हाथ बैठ गया और आज मेरा चरखा जहाँ सोता हूँ, वहाँ रहता है। वृद्धावस्था और काम की उपाधि के कारण नींद नहीं आती, तब बिस्तर में करवटें बदलते नहीं पड़ा रहता, परन्तु तुरन्त दीया जलाकर चरखा ले लेता हूँ। दो-दो घंटे कातता हूँ, परन्तु थकान नहीं जानता और जैसे आप हल चलाते-चलाते गाते रहते हैं, वैसे ही मैं चरखे का तार निकालते-निकालते गाता रहता हूँ, अनायास ही प्रभु का नाम लिया जाता है। झगड़े-टंटे सहज ही चले जाते हैं। कहते हैं कि रूपये की जिसे चिन्ता नहीं है, उसे चरखा चलाने की जरूरत नहीं है। मैं कहता हूँ कि उसे कातने की अधिक आवश्यकता है। बड़े काम करनेवालों की हाय-धाय भूलने के लिए यह जरूरी है। महात्माजी ने चरखे के जो गुण गाये, वैसे मुझसे नहीं गाये जाते। मैं तो इतना जानता हूँ कि आप कपास बोयें, ढोरों को मारें और रुई उत्पन्न करें और फिर उसे विदेश भेज दें और विदेशी कपड़े पहनें, यह जुल्म है। मैं विलायत जाता हूँ, परन्तु वहाँ भी जैसा यहाँ हूँ, वैसा ही रहूँगा। मैं कातता रहूँगा और आप नहीं कातेंगे तो शर्म की बात होगी।

"मेरे जैसे शठ को कौन साधु बनाता है? भागवत देखकर मुझे लगता है कि इतना सब कैसे लिखा गया? परन्तु यह तो एक ऐसी बात है कि सुनते ही सूत्र चलने लगते हैं। मैं कातने लगा तो दूसरे भी कातने लगे। दूसरा नहीं, दूसरी। मेरे साथ मेरी स्त्री भी कातने लगी है और ४० औरतों की मंडली जमा करके उनसे कतवाती है। बहुएँ भी कातती हैं। रात के बारह बजे मुझे झूठ बोलने का शौक नहीं हो सकता। इसलिए देखना, कातने लग जाना; नहीं तो मैं आकर आपसे हिसाब लूँगा।"

मढड़ा से पालीताणा गये।* ठाकुर साहब का निमंत्रण तो था ही और लोगों के उत्साह का पार नहीं था। पालीताणा की आम सभा में ठाकुर साहब अध्यक्ष हुए थे और गांधीजी को मानपत्र उनकी हाथ से दिया गया। एक थैली भी प्रजा की तरफ से अर्पण हुई।

---

* ता. ३-४-१९२५

ठाकुर साहब ने कहा:

"यहाँ पधारकर आपने पालीताणा की प्रजा की लालसा पूरी की, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। मानपत्र में अहिंसा और सत्य के आदर्श के लिए जो लिखा है, वह सूचक है। अहिंसा के पालन में सारे हिन्दुस्तान में किसीकी तुलना आपके साथ नहीं हो सकती। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पोथी के बैंगन नहीं, केवल साधुओं के लिए नहीं; परन्तु साधारण मनुष्यों के लिए भी हैं, यह आपने अपने व्यवहार में पालन करके भावना से गिरती हुई और निराश होनेवाली प्रजा को सिखाया है। इसीलिए हिंसक विचार, असत्य से लाभ उठाने की वृत्ति वगैरह का नाश होने की आशा रखी जा सकती है। खादी-प्रचार का प्रजा पर उसे उपयोगी बनाने के लिए असर पड़ता है। इन तीनों गुणों की त्रिपुटी हम आपमें देखते हैं।"

मानपत्र का जवाब देते हुए गांधीजी बोले:

"माननीय ठाकुर साहब, भाइयों और बहनों,

"मुझे आज जो मानपत्र दिया गया है, उसके लिए सबका आभार मानता हूँ। यह मानपत्र ठाकुर साहब के हाथ से मिला, इससे मैं समझता हूँ कि इतनी इज्जत ज्यादा मिली । मानपत्र में मेरी कई तरह से प्रशंसा की गयी है। मेरे खयाल में अब यह आश्चर्य की बात नहीं रह गयी । मैं जहाँ-जहाँ भ्रमण करता हूँ, वहाँ यही शब्द अलग-अलग ढंग से रखे गये देखता हूँ । यह सब मैं सुनता हूँ, तब इतना असर मुझ पर होता है कि मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि स्तुतिपत्र में जो लिखा गया हो, वह किसी दिन सच हो ।

"एक और बात कहूँ । स्तुतिपत्र में वह रह जाती है। स्तुतिपत्र में एक ही पक्ष के बारे में कहा गया है । यह नहीं भूलना चाहिए कि दूसरा पक्ष भी है । जब स्तुति के उद्गार प्रकट किये जाते हैं, तब देखता हूँ कि स्तुति करनेवाले और ऐसे समारोहों में भाग लेनेवाले जो आदर्श मुझमें आरोपित किये गये हों, उनके प्रति उदासीन भाव रखते हैं। मेरे भाग्य में जहाँ जाऊँ, वहाँ आलोचना करने का ही काम आ पड़ता है; परन्तु यह अनिवार्य है । मैं न तो प्रजा की अंधश्रद्धा चाहता हूँ और न राजा-महाराजाओं के शिष्टतापूर्ण वाक्य । ये वाक्य कर्णप्रिय हो सकते हैं, परन्तु मैं तो राजा-प्रजा के बीच कड़ी बनना चाहता हूँ । यदि मैं दोनों को बाँध सकूँ, दोनों के हेतु एक-दूसरे को समझा सकूँ, तो अपना कर्तव्य पूरा किया समझूँगा । अंग्रेजों के साथ भी मैंने यही संबंध रखा है। मेरा उद्देश्य है कि अंग्रेज और हिन्दुस्तानी एक साथ रहें। यह कार्य मैं हरगिज नहीं कर सकता, अगर प्रजा की तरफ से मुझे पूरी मदद न मिल सके । 'राजा की तरफ से' नहीं कहता, क्योंकि मैं खुद प्रजा हूँ और प्रजा ही रहना

चाहता हूँ। इसलिए प्रजा के दुःख और उद्गार अधिक समझ सकता हूँ और प्रजा से आशा भी ज्यादा रखता हूँ। इसलिए प्रजा से इतना चाहता हूँ कि वह जिन बातों की प्रशंसा करे, उन्हें अमल में लाये।

"मैंने बहुत बार कहा है कि जैसे यह एक सूत्र सही है कि यथा राजा तथा प्रजा, वैसे ही यह भी सच है कि यथा प्रजा तथा राजा। प्रजा सच्ची हो जाय, तो राजा के प्रति असद्भाव नहीं हो सकता। राजा बुरे नहीं हैं। परन्तु प्रजा आलसी और लापरवाह हो जाय, तो अच्छे-से-अच्छे राजा भी क्या करें? विचार कीजिए। जनक से अधिक अच्छे राजा का ऋषि-मुनियों ने चित्रण नहीं किया। राम तो एक अवतारी पुरुष थे, इसलिए वे भगवान् में खप गये, इसलिए उन्हें आदर्श नहीं मानना चाहिए। परन्तु जनक के बारे में सब गुणों का आरोपण कवि कालिदास (?) ने किया। लेकिन जनक के समय की प्रजा को यह ध्वनि अनुकल न हुई होती तो राजा क्या करता? इस प्रकार प्रजा कुछ न करे, तो राजा क्या करे? त्रावणकोर में देखा कि प्रजा अपना कर्तव्य पालन करती, तो महारानी अपना काम जरूर करती। परन्तु प्रजा विरुद्ध रहे, तो महारानी कितना ही चाहे तो भी कुछ नहीं कर सकती। आज मैं अकेला प्रतिज्ञा कर लूँ कि मैं अस्पृश्यता को नहीं मानता; परन्तु इतने से कोई कुछ नहीं कर सकता। यह सब मैं ठाकुर साहब की मौजूदगी में कहता हूँ, इसमें थोड़ा-सा स्वार्थ है, क्योंकि आज आप तारीफ करें और कुछ न करें और मैं कुछ कहूँ तो कल आप कातने दौड़ेंगे। ऐसे मामलों में राजा की अपेक्षा प्रजा से अधिक आशा रहती है। आलसी और मद्यपी प्रजा से राजा क्या करा सकता है? मैंने ठाकुर साहब से मद्यपान की बात की। उन्होंने कहा कि यहाँ शराब की दूकान नहीं है, चाय की दूकान नहीं है; फिर चोरी करके पीनेवाले हैं। ऐसा हो तो राजा क्या करे? कोई राजा व्यसन छुड़वा सकता है? राजा से इतनी ही आशा रखी जा सकती है कि प्रजा के बुरी होने में वह भाग न ले।

"इसलिए काठियावाड़ की प्रजा अपने कर्तव्य का पालन न करे, तब तक कुछ नहीं हो सकता। इसके बिना जो जाहोजलाली हम चाहते हैं, वह आना असंभव है। काठियावाड़ में जाहोजलाली देख सकने के लिए मैं प्रजा से विशेष आशा रखता हूँ। जो प्रजा से मिलेगा, वह राजा से मिलेगा। इसके लिए मेरी भिक्षा है। एक समय था, जब मैं धन माँगता था। वह देने में लोगों ने कसर नहीं रखी। बहनों ने शरीर पर से जेवर उतारकर दिये हैं। भाइयों नें हीरे-मोती दिये हैं। परन्तु आज मैं दूसरी चीज माँगता हूँ। यह है आचरण का परिवर्तन। आचरण में से न्यूनता निकल जाय, यह मैं चाहता हूँ। परन्तु वह मुझे नहीं मिलती। धन तो आप दे सकते हैं। आपने जो थैली दी, उसके लिए शुक्रिया। इसका भी उपयोग तो होगा ही, परन्तु इससे मेरा पेट नहीं भरेगा।

"आपमें दया चाहिए। पालीताणा जैसे पवित्र धाम में, जैनियों के सबसे महान् तीर्थ-क्षेत्र में जो पदार्थ-पाठ पालीताणा के नागरिकों को देना चाहिए, वह ये नहीं देते। बहनों के दर्शन करके हृदय प्रसन्न नहीं हुआ—उल्टे दु:खी हुआ। दया का सामान्य धर्म भी ये बहनें नहीं समझतीं। काठियावाड़ के गरीब स्त्री-पुरुषों को दो-चार आने जैसी तुच्छ रकम कमाने के लिए काठियावाड़ छोड़ना पड़े, इसमें किसकी बदनामी है? राजा, प्रजा दोनों की, यह मुझे दुःख से कहना पड़ता है। मेरे बस में हो तो किसीको न जाने दूँ-कानून बनाकर रोकूँ, जाने न दूँ। हाँ, साहस के लिए भले ही पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे सिरे पर चले जायँ। आज कोई कोना ऐसा नहीं, जहाँ काठियावाड़ी न हों। उसमें सच्चे कुलीन होंगे, बाघेरे होंगे, राजपूत होंगे। टॉड ने लिखा कि राजपूतानें में अनेक थर्मापोली थीं। यहाँ भी स्थान-स्थान पर आज कैसी थर्मापोलियाँ चाहिए? लोग करोड़पति बनने के लिए साहस भले ही करें। विद्याभ्यास के लिए साहस भले ही करें। परन्तु जब काठियावाड़ी कहें कि रोटी नहीं मिलती, इसलिए यहाँ आये हैं, तब दुःख होता है। काठियावाड़ में पानी की कमी है। दक्षिण अफ्रीका में भी कमी है परन्तु वहाँ तो बोअर साहसियों ने पाताल से पानी निकाला है। ऐसे एक फार्म में मैं भी हिस्सेदार था। एक बूँद पानी भी नहीं मिलता था। छोटे-से झरने में कुएँ खोदकर ११०० एकड़ को पानी पिलाने का प्रयोग सफल हुआ। पानी के लिए आवश्यक गहराई में जायँ! जितने गहरे जायँगे, उतना अथाह पानी मिलेगा। पृथ्वी के अन्तर में खनिज की तरह ही पानी के झरने भी हैं। परन्तु यह तो अकाल की बात की।

"काठियावाड़ में सौ वर्ष पहले जो धंधा था, वह फिर से शुरू न हो, तो गरीबों के लिए तो निर्वासन ही है। इसे दूर करने के लिए खादी पहनना ही होगा। जब तक हम मोटी या बारीक खादी नहीं पहनने लगेंगे, तब तक उद्धार नहीं है। मैं राजा, प्रजा दोनों से प्राथना करता हूँ कि इस साधारण धर्म का पालन कीजिए। इसमें कोई बुराई नहीं है। इसका पालन करने से कोई रोक नहीं सकता। इसमें यंत्रों की जरूरत नहीं है। स्वार्थ या तपस्या की आवश्यकता नहीं है। केवल मन की जरूरत है। सिर्फ एक कपड़ा पहनने से महान् धर्म का पालन होता है। ऐसे मानपत्र मिलने पर भी राजा-प्रजा से मैं इतना भी नहीं करा सकता, इसकी मुझे परेशानी होती है। मैं तो अन्तर्नाद को सुननेवाला हूँ, इसलिए आपकी साधना मानता हूँ कि इसमें मेरी तपस्या की ही कमी है। परन्तु मैं विश्वास नहीं छोड़ता। सच्ची होगी, तो एक समय आयेगा, जब सारा देश खादी पहनेगा।

"जो बात रीडिंग और विलिंगडन से कही थी, वह आज भी कहता हूँ। जब तक राजा, रानी, दरबान, अधिकारी, प्रजा, भंगी तक खादीमय न हो जायँ, तब तक मेरी आत्मा को शान्ति नहीं होगी, क्योंकि कंगाली दूर करने का इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। चरखे के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है। इसीलिए मैंने इसे

कामधेनु बताया; और इसे शमशेरबहादुर से भी आगे रखूँगा। राम ने तीर-कमान नहीं छोड़े, परन्तु विश्वामित्र के लिए ईंधन लाकर धर दिया । उसने एक भी कार्य ऐसा नहीं किया, जो प्रजा ने नहीं किया था। राजा जब तक प्रजा के सब अंगों को नहीं पहचान सकता, तब तक प्रजा का दिल नहीं जीत सकता । प्रजा जिस चीज पर सारा आधार रखती हो, वह चीज राजा को करनी ही चाहिए। इसीलिए इंग्लैंड के राजाओं के लिए जल-सेना की शिक्षा अनिवार्य रखी गयी है। वहाँ राजा जॉर्ज ने काला कहवा पिया था और पनीर खाया था । वह राजा प्रजा के गुण ग्रहण करनेवाला था । उन लोगों में ऐसे गुण हैं, तो ये राजा सुख भोगते हैं । जो दुर्गुण उनमें हैं वे निकल जायँ, तो सदा के लिए सुखी हो जायँ । यह नहीं कहा जा सकता कि इन दुर्गुणों का वे कब त्याग करेंगे। परन्तु जब वे त्याग करेंगे, तब उनके गुण संसार भी देखेगा । मैं चाहता हूँ कि उनके गुणों का और उस प्रजा के साहस का हमारे राजा-प्रजा अनुकरण करें । हममें जो कमी है, मैं चाहता हूँ कि हम उसे दूर करें। लड़ाई के समय वहाँ के प्रोफेसरों और बैरिस्टरों के हाथ में सुई-डोरा था । ये लोग कुरते सीते थे । मैं एम्बुलेन्स के काम में लिया गया था । जो लोग बेल्जियम, फ्रांस वगैरह रणभूमि पर नहीं जा सके, उन सबके पास इतना काम तो था ही । उसे इन्होंने इतना आसान बना दिया था कि ज्ञानहीन मनुष्य भी इतने कुरते बना सके । ऐसे बहुत उदाहरण दे सकता हूँ । परन्तु इतना कह दूँ कि मानपत्र में कही हुई बात सही हो, तो आप ये सब गुण अपने में उतारिए ।

"आप शिथिल क्यों हो गये? अछूत-मुहल्ले में मिल के सूत का उपयोग क्यों किया जाता है? क्या इतना सूत पालीताणे में पैदा नहीं हो सकता? मैं नहीं चाहता कि आप अहमदाबाद को प्रोत्साहन दें। मैं तो चाहता हूँ कि यहाँ आप बारीक-से-बारीक खादी उत्पन्न करें ।

"मैंने अछूत-पाठशाला देखी । उसे देखकर मुझे दुःख हुआ । पूरे स्कूल के लिए एक अच्छा अंत्यजेतर शिक्षक भी नहीं मिलता! इसमें किसका कसूर? ठाकुर का ! आप अपने को धार्मिक मानते हैं। परन्तु आपमें से एक भी नहीं निकला, जो यह काम करने को तैयार हो? मैं तो ऐसी आशा रखता हूँ कि ब्राह्मण और बनिये जाकर कहें कि हम पढ़ायेंगे । इस पाठशाला में पीने का पानी भी नहीं मिलता । ठाकुर साहब, आपका भी यह काम है। आपकी प्रजा को पानी क्यों न मिले? ये लोग अत्यन्त कष्ट से खड्डे खोद-खोदकर पानी प्राप्त करते हैं। धर्मशालाओं में कुएँ होते हैं । परन्तु उनसे अछूत पानी नहीं भर सकते । यह कहाँ का धर्म कि मुसाफिरों को पानी मिले और अछूतों को न मिले? इनकी स्थिति कौन देखता है ? कौन दयाधर्म का दावा करता है? आप किस प्रकार हिन्दू कहलायेंगे?

"जिस प्रकार की अस्पृश्यता आजकल बरती जाती है, उसके लिए धर्म में स्थान नहीं है। शास्त्रों के मनन के बाद, आत्मशुद्धि के बाद, मंथन करने के बाद मैं एक ही निश्चय पर पहुँचा हूँ कि जिस ढंग से इस धर्म का पालन किया जा रहा है, उसमें हिन्दू-धर्म का नाश है। इसलिए कहता हूँ कि सभी चेतें । हिन्दू-धर्म की रक्षा करने का काम राजा-प्रजा दोनों का है । अछूतों की सेवा ही हिन्दू-धर्म को सुधारने का उपाय है। शुद्धि के बिना हम अपना मैल धो नहीं सकेंगे । इसलिए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अछूतों को साथ रखें । जैसे स्वच्छ होकर आप आये हुए हैं, वैसे ही बनने की सामग्री इनके सामने रखिए और फिर भी ये गंदे रहें, तो फिर कहिए कि अछूत साफ नहीं हैं, इसीलिए अस्पृश्य हैं। परन्तु मैं तो जानता हूँ कि हजारों अछूत मेरे जैसी सफाई रखते हैं। उनमें सारी शक्तियाँ हैं, एक भी न्यूनता नहीं है। जो कुछ कमी हम इनमें देखते हैं, उसका पाप हमारे सिर पर है । इसीलिए कहता हूँ कि यह प्रश्न आप अपने हाथ में लीजिए और इस पाठशाला में नौकरी के लिए अर्जी दीजिए । एक आदमी ने १५० रुपये के वेतन की माँग की, परन्तु इतना अधिक कैसे दिया जाय? आजीविका के लायक माँगिए और कल से-अछूत-पाठशाला खोल दीजिए । कोई भी मनुष्य अपने पड़ोसी के सामने अपने घर की गंदगी नहीं डाल सकता ।"

सभा का काम समाप्त होने पर गांधीजी ने बहन नरगिस अरदेशर, दादाभाई नवरोजी और जमनाबहन का, जो खादी की पेटियाँ भरकर काठियावाड़ के दौरे में गांधीजी के साथ घूम रही हैं, परिचय कराते हुए कहा:

"दादाभाई की लड़की का हृदय सर्वधर्मव्यापी है और उसकी हड्डी गरीब है। चार बहनों ने खादी के लिए वैराग्य लिया है। ये कहती हैं, हम राजमहल में खादी दिखायेंगी ।"

फिर एक सुन्दर व्यापारी के ढंग पर खादी का भी परिचय कराया । "ऐसे मेजपोश तो ठाकुर साहब के महल में भी नहीं होंगे ।" "जिस बहन को अपने बच्चों को मोटी खादी न पहनानी हो और बारीक कुरता पहनाना हो, वह यह पहनाये ।" "जिस बहन को सुन्दर कपड़े का शौक हो, वह ऐसा नमूना पसन्द करे ।"

अन्त में कहा : "एक दीन के नाते, गरीब के नाते, अछूत के नाते, कातनेवाले के नाते, विधवा स्त्री के नाते कहता हूँ कि आप इतना तो जरूर कीजिए । अपनी दौलत अच्छे काम में ही लगाइए—खराब काम में नहीं । इस तीर्थ-क्षेत्र के भीतर राजा-प्रजा के बीच मैल न हो; यह सच्चा तीर्थ-क्षेत्र बने । यह तो तीर्थ-राज है, इसलिए यहाँ तो पवित्र रहना चाहिए। मैं कल वहाँ जानेवाला हूँ । मैं तो पवित्र भाव से देखने जा रहा हूँ । मैं

मूर्तिपूजक भी हूँ और भंजक भी हूँ। आप राजा-प्रजा तीर्थस्वरूप हो जाइए और मैं चाहता हूँ कि आपको देखकर यात्री पवित्र बनें।"

गांधीजी को एक पंथ दो काज साधने थे। शत्रुंजय के ऊपर चढ़कर अक्रोध से क्रोधी शत्रु को, अहिंसा से हिंसक शत्रु को जीतने के सिद्धान्तवाले जैनियों की गम्भीर धर्म-निष्ठा का अभेद्य दुर्ग देखना था। जिन गांधीजी को पाँच वर्ष[१] पहले सिंहगढ़ चढ़ते समय डोली की जरूरत हुई थी, उन्हें २१ दिन के उपवास के सुन्दर परिणाम-स्वरूप शत्रुंजय नंगे पैरों चढ़ते वक्त कोई थकावट महसूस नहीं हुई![२]

---

१. नवजीवन के ता. १२-४-१९२५ के अंक के पृष्ठ २५० में ४ वर्ष बताये हैं। परन्तु गांधीजी सन् १९२० में गये थे—सन् १९२१ में नहीं। इसलिए यहाँ ५ वर्ष बताये गये हैं।—सं.

२. ता. ४-४-१९२५

यहाँ जैनियों की धर्मनिष्ठा का गांभीर्य देखा और अतिशयता भी देखी। अतिशयता यहाँ तक बढ़ गयी है कि मंदिरों में प्राचीन भाग कितना है, यह जानने की कोई गुंजाइश नहीं रखी गयी। प्राचीन कारीगरी में अर्वाचीन कारीगरी जोड़कर मन्दिरों की शोभा बढ़ाने की लालसा रखी गयी है अथवा रंग-रोगन लगाकर यह सब करानेवाले के नाते अपना नाम भी चित्रित कराकर कीर्ति अमर करने की अथवा सस्ता मोक्ष प्राप्त करने की लालसा रखी गयी है। परन्तु कैवल्य को प्राप्त करनेवाले तीर्थंकरों की मूर्तियों को भव्य मंदिर बनाकर ऐसे स्थान पर स्थापित करनेवाली धर्मनिष्ठा के विषय में तो मन में आदर और भक्ति उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। आज भी अनेक श्रद्धालु बहनें लगातार नब्बे दिन तक इस पवित्र पर्वत पर चढ़ती हैं और उतरती हैं। एक बहन तीन महीने के बालक को लेकर चढ़ रही थी। दूसरी बहनें उसके साहस से घबरा रही थीं। वह बहन निश्चिन्त भाव से कह रही थी कि जिस भगवान् नें बच्चा दिया, वही इसका भार उठायेगा! एक बहन तो घास कातनेवाली थी। उसे शत्रुंजय चढ़ने का पुण्य भी कमाना था और गांधीजी के दर्शन का भी पुण्य प्राप्त करना था। वह घास कातना छोड़कर चली आयी थी और सहेलियों से कह रही थी: "घास तो कल काट लूँगी, परन्तु महात्मा कल देखने को मिलेंगे?" आज के जमाने में भी इतनी धर्म भावना हम लोगों में जीवंत रखनेवाला भाग्यविधाता इन लोगों का अकल्याण कैसे होनें देगा?

गांधीजी पालीताणा में ऊँची-से-ऊँची तपस्या करनेवाले और व्रत पालन करनेवाले मुनिश्री कर्पूरविजयजी से मिलने गये। पंडित लालनजी नें मुनिश्री से पूछा: "साधु के चरखा चलाने में कोई आपत्ति है क्या?"

मुनिश्री: "आपत्ति तो जरूर है । अहिंसा का आत्यंतिक पालन करनेवाला, अप्रमत्त और जाग्रत रहनेवाला मुनि चरखा नहीं चला सकता । परन्तु जो ऐसा दावा नहीं करता, वह चला सकता है ।"

गांधीजी: "यानी लालन ऐसा दावा न करते हों तो ही चला सकते हैं? अहिंसा-धर्म का इसमें कहाँ त्याग होता है, यह मैं नहीं समझ सका । साधु गृहस्थ की तरह स्वार्थ के लिए कुछ न करे, यह समझ में आ सकता है, परन्तु परमार्थ के लिए तो चरखा भी चला सकता है। एक उदाहरण लें । साधु रात को बाहर नहीं निकल सकता, परन्तु मान लीजिए, रात को पड़ोसी के घर में आग लग जाय और साथु घर में घुसा रहे और पड़ोसी को पानी की मदद न दे तो यह अहिंसा का पालन नहीं, परन्तु हिंसा है, मैं ऐसा मानूँगा । इसी प्रकार अकाल के दिन हों, और उस समय ऐसी बात हो कि अमुक काम करके ही अकाल-पीड़ितों को खाने को मिल सकता है, तो वह काम करके दिखाना धर्म हो जाता है। लोग पानी के बिना तिलमिला रहे हों, परन्तु किसीकी कुदाली-फावड़ा लेकर खोदने की इच्छा न होती हो, तो साधु के लिए कुदाली-फावड़ा उठाकर उन लोगों को पाठ सिखाने के सिवा चारा ही नहीं है। इतना कहने से काम नहीं चलेगा कि 'तुम खोदो ।' आप पानी की एक घूँट भी पीना न चाहते हों, तो भी कुदाली-फावड़ा लेकर तैयार हो जायँ और लोगों को पानी पिलायें, तभी शान्त हों, यह अहिंसा है। आपकी पीने की जरा भी इच्छा न हो, परन्तु लोगों के पीने के बाद आप पियें, इसमें अड़चन नहीं है। इस प्रकार साधु अनेक काम परमार्थ दृष्टि से कर सकता है—करना उसका धर्म हो जाता है । इसी प्रकार आज जब भारत में भुखमरी फैली हुई है, और चरखा चलाने से गरीबों के पेट में रोटी पहुँच सकती है, जब प्रत्येक निरुद्यमी को कातनेवाला बनाना धर्म हो गया है, तब यह कैसे हो सकता है कि साधु खुद न काते और दूसरों को कातने का उपदेश दे? जो बात उसे स्वयं करने योग्य न लगती हो, उसे लोग कैसे करेंगे? इसलिए साधु का तो यह धर्म हो जाता है कि वह चुपचाप चरखा लेकर बैठ जाय और चलाता ही रहे । कोई उसके पास आकर उपदेश की माँग करे, तो उसे जवाब तक न दे, दूसरी बार पूछे, तीसरी बार पूछे तो भी न दे, अन्त में मौन तोड़कर कहे कि 'भाई, इतना करने के सिवा और कोई उपदेश देने को मेरे पास नहीं ।' इस प्रकार अप्रमत्त, जाग्रत साधु का यही धर्म है। संभव है, किसी साधु को इसमें से स्वार्थ खड़ा हो जाय । ऐसा हो तो उसका पतन उचित ही है। वह निरुद्यमी रहकर जगत् को भार से मारता था सो उल्टे उद्यमी बनकर अपने गुजारे के लिए

परिश्रम करेगा। एकान्तिक अहिंसा की बात मुझे मंजूर है। परन्तु एकान्तिक अहिंसा कैसी होती है? आज तो साधु गृहस्थ की तरह खाते-पीते हैं, कपड़े पहनते हैं, लोंगों द्वारा बनाये गये उपाश्रयों में वे रहते हैं। तो उन्हें लोगों के जीवन में हिस्सा लेना ही होगा । आज जिस काम के करने में लोगों की बड़ी-से-बड़ी सेवा होती है, उसमें उन्हें भाग लेना ही है।"

"मुनिश्री: "तब तो यह आपद्धर्म हुआ ।'

गांधीजी: "नहीं, आपद्धर्म नहीं—युग-धर्म है । आज युग का धर्म कातना है और जब तक मुनि अपनी जीवन-यात्रा के लिए समाज पर आधार रखता है, तब तक उसे युग-धर्म का आचार द्वारा प्रचार करना होगा । आज तो आप लोगों का पैदा किया हुआ चावल, लोगों का पकाया हुआ भात खाते हैं, लोगों के बनाये हुए कपड़े पहनते हैं । परन्तु यदि वह अनायास कहीं पड़ा हुआ अनाज खा लेता हो, कपड़े की परवाह न करता हो और समाज का सम्पर्क भी छोड़कर कहीं अगम्य, अगोचर गुफा में पड़ा हो, तो उसकी बात अलग है। वह भले ही युग-धर्म का पालन न करे । वैसे आज तो समाज में रहने और जीनेवाले संन्यासी से भी मैं यही कहूँगा। त्रावणकोर में थीयाओं के गुरु से, जो संन्यासी हैं, मैं कह आया कि आपके सामने जो खादी पहने बिना आये, उसे शिष्य के रूप में हरगिज स्वीकार न करें, इससे आपके पास भीड़ का जमा होना भी रुक जायगा । आपसे भी मैं यही चाहूँगा। संभव है, इससे दंभियों को प्रोत्साहन मिले। परन्तु यों तो क्या श्रीमद् राजचन्द्र के आसपास भी दंभी नहीं पाये जाते थे? दंभी होंगे तो इससे हमारा नुकसान नहीं है, दंभी का ही नुकसान है ।"

मुनिश्री: "मैंने इस मामले का इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया । विचार करने के बाद मैं आपके साथ चर्चा करूँगा ।"

पालीताणा से अमरेली के लिए रवाना हुए । रास्ते में गारियाधार के आगे दो-तीन ढेढ़ मोटर रोककर खड़े हो गये । गांधीजी ने बुलाकर पूछा: "क्यों?" वे बोले: "ढेढ़वाड़े में पधारिए । पाँच मिनट के लिए पधारिए । हमारा पहला हक है ।" गांधीजी खिलखिलाकर हूँसे । "हाँ भाई, पहला हक जरूर है। परन्तु पाँच मिनट ही मुझे गाँव को देने हों, वहाँ वे पाँच मिनट तुमको दे दूँ तो फिर क्या हो? तुम सार्वजनिक सभा में आओ ।" इस पर एक "स्पृश्य' भाई कहते हैं: "सब चलो, तुम्हें कोई नहीं रोकेगा ।" और सब चले ! !

लाठी में भी ऐसा ही हुआ । वहाँ गाँव के मैदान में ही अछूत-मुहल्ला था । गांधीजी ने सभावालों से कहा: "मुझे अछूत-मुहल्ले में तो पहले जाना चाहिए न?"वे बोले: "हाँ, बापू, पहले वहाँ पधारिए, फिर बाजार में

आइए।"—क्योंकि सब जानते थे कि गांधीजी लाठी आये थे तो अछूतों के लिए आये थे और रामजीभाई तथा गंगाबहन के लिए । रामजीभाई और गंगाबहन उस समय गांधीजी के हाथ लगे थे, जब एक भी जुलाहा हाथ का सूत बुननेवाला नहीं मिला था। उसके बाद तो ये आश्रम में रहे और रामेसरा भी रहे ।

उनके घर गांधीजी जायँ, इसमें आश्चर्य क्या? बोटाद को तो दूदाभाई ने अपना गाँव बना लिया है, परन्तु उनका जन्मस्थान है देवराजिया, जहाँ आज-कल तो उनके घर की केवल दीवारें खड़ी हैं। वहाँ से मोटर गुजरी, तब वहाँ भी गांधीजी रुके और टूदाभाई के खँडहरों के दर्शन किये ।

परन्तु लाठी में तो दूसरी चीज देखनी थी । लाठी की अछूत-पाठशाला के शिक्षक ने संक्षिप्त, परन्तु ठीक-ठीक विवरण दिया । यह बताया कि ३९ लड़के ढेढ़ों के, १० भंगियों के पढ़ते हैं, ४७ करघे-जिनमें केवल दो ही हाथ-कते सूत के चलते हैं. कुएँ के पानी वगैरह की सुविधा की बातें कीं, और अंत्यज-मन्दिर नहीं, उसे बनवा देने की माँग की । गांधींजी ने छोटा-सा उत्तर दिया, और यह समझाया कि 'कलापी' का लाठी रामजीभाई का लाठी कैसे हो गया ।

"किसलिए? क्या रामजीभाई में कोई हीरे-मोती जड़े हैं? परन्तु जब सबने हाथ का सुत बुनने से इनकार कर दिया, तब इन्होंने पहल की और ये तथा गंगाबहन निकल पड़े । इसमें इन्होंने क्या खोया? आज इन्हें सारा गुजरात जानता है। और ये तो ढेढ़ होने पर भी काशीविश्वनाथ में जाकर बुनाई सीख आये और मुझसे पूना में भी मिलने आ सके । इनकी इतनी प्रतिष्ठा केवल एक टेक से—हाथ-कता सूत बुनने की टेक से—उत्पन्न हुई । गंगाबाई तो अपने पति से भी बढ़िया बुननेवाली है । यह अछूत है, तो भी मैं उसे पूजता हूँ, क्यों कि यह बुजुर्ग स्त्री पवित्र है और प्रतिज्ञा का पाठन करनेवाली है। आपने मंदिर की जो माँग की, उसमें आपको मैं प्रोत्साहन नहीं दूँगा । और मैनेजर साहब से भी कहूँगा कि आप इन लोगों को नाहक न चढ़ायें । आज आपके लिए लाख माँगूँ तो लाख मिल सकते हैं। परन्तु मैं लाख माँगूँ काहे को? देवालय बनाना हो, तो आप बनाइए । आपके शरीर की भूख की व्यवस्था मैं करूँगा, अपनी आत्मा की भूख का प्रबन्ध आपको स्वयं ही करना चाहिए । आज आपको मंदिर बनवा दूँ तो आप उसमें शराब पीकर नाचेंगे—धोराजी में मैं ऐसा देख आया हूँ । इसलिए यदि आपको मन्दिर की सचमुच जरूरत है, तो चंदे की सुची में अपने पसीने का रुपया अदा कीजिए, रामजीभाई से दिलवाइए और अच्छी रकम इकट्ठी हो जाय तो मैनेजर से अनुरोध कीजिए कि वे उतना रुपया भर दें । आप इतना करें, तो इन दोनों रकमों जितना रूपया मैं आपके लिए इकट्ठा कर दूँगा । आपको सौ बार ऐसे देवालय की गरज हो तो ऐसा करना । पुजारी तो उसीको रखना, जो सच्चा वैष्णव हो। देवालय के तीन ट्रस्टी हों, मैनेजर

अथवा ठाकुर साहब जब गद्दी पर बैठ जायँ, मैं और आप जिसे मुकर्रर करो और जब तक प्रबंध अच्छा रहे तब तक मन्दिर रहे, नहीं तो आपसे ले लिया जाय ।"

यह बात जरा मुश्किल तो मालूम हुई । परन्तु उसके स्वीकार होने के लिए एक सुन्दर प्रसंग बन गया । गांधीजी उठ रहे थे कि इतने में एक सात-आठ वर्ष की लड़की गांधीजी के साथ खेल करने लगी । गांधीजी ने उसे खेलाया तो सही, मगर उसकी हँसली पर उनकी दृष्टि गयी। "ऐसी भारी हँसली पहनकर कोई परेशान होते हैं? मुझे दे दे ।" हँसते-हँसते वे उसे निकालने लगे और लड़की के पिता अछूत-पाठशाला के शिक्षक ने इसमें मदद की । नाक में से सोने का फूल भी निकला । इतने में उसीकी दूसरी बहन गांधीजी के पास आ पहुँची । उसकी भी हँसली उतरी । गांधीजी को आठ रुपये भेट किये गये थे, उनसे और इन पवित्र निर्दोष कुमारिकाओं की हँसलियों से मन्दिर के लिए कोष का आरम्भ हुआ! सबने मन्दिर के लिए प्रयास करने का वचन दिया ।

अमरेली

लाठी से अमरेली पहुँचे । अमरेली में तो बहुत काम हुआ । नगरपालिका और लोकल बोर्ड ने मानपत्र दिये । थैलियाँ दीं। गांधीजी नें कई भाषण दिये और लोगों का प्रेम और भाव देखकर उन्हें कुछ कड़ा उपदेश भी दिया । खादी कार्यालय को प्रोत्साहन न देनेवाले अमरेली के निवासियों को खादी का मंत्र विस्तार से समझाया । परन्तु कार्य-समिति द्वारा किये गये प्रस्ताव ही सबसे अधिक महत्त्व के थे । इस बारे में गांधीजी ने विशेष लेख लिखा है, इसलिए यहाँ कुछ नहीं लिखता ।

७-४-१९२५

ढसा

ढसा को आज कौन नहीं जानता? ढसा के दर्शनार्थ गांधीजी कैसे गये, यह बताने की भी आवश्यकता नहीं है । परन्तु ढसा के लोगों से गांधीजी को सन्तोष नहीं हुआ । क्या दरबार गोपालदासभाई के चले जाने से वे नूर खो बैठे हैं? उन्होंने गांधीजी के आगे माँग तो की: "हम तो दुःख में पड़े हैं, हमें अपने दरबार दीजिए ।" "तुमने दरबार को लेने के लिए कुछ नहीं किया । मैं क्या करूँ? तुम दरबार के पीछे निकल पड़े? राम के पीछे उनकी प्रजा पागल होकर निकल पड़ी थी। तुमने क्या किया? "बातचीत में इतना कहकर गांधीजी ने सभा में भी यही उद्गार प्रकट किये ।

"काठियावाड़ में इस बार आया, तब ढसा आने का निश्चय तो किया ही था। परन्तु आपका पत्र भी आया और दरबार ने भी कहलवाया तो आ गया । मैं बहुत आशाएँ लेकर आया । मैंने आशा छोड़ी नहीं । परन्तु यहाँ प्रवेश करने के बाद मेरी आशा बढ़ी नहीं, बल्कि घटी है।

"दरबार को सरकार ने पदच्युत किया, क्योंकि उन्होंने राष्ट्र की सेवा की । परन्तु वे पदच्युत थोड़े ही हुए हैं? उनके लिए तो ढसा का राज्य चला गया और बोरसद का राज्य आ गया । जब वे ढसा राज्य के दरबार थे, तब शायद ही कोई उन्हें जानता था । परन्तु आज सारा भारत उन्हें जानता है कि तमाम राजाओं में एक तो ऐसा निकला, जिसने सर्वस्व का त्याग किया । पृथ्वी के एक जरा-से टुकड़े का राजा भी राजा कहलाता है । पांडव भारत के राजा थे । परन्तु उन्होंने राज्य-पदवी कायम रखने के लिए दुर्योधन से कहा कि पाँच गाँव दे दो तो भी हम लड़ाई नहीं करेंगे । परन्तु दुर्योधन ने कहा कि एक तिलभर टुकड़ा नहीं मिलेगा । तब वे लड़े, तब से हम समझते हैं कि गाँव का राजा भी राजा और सारी पृथ्वी का राजा हो तो वह भी राजा है । इसलिए लोग समझें कि दूसरे लोगों ने बलिदान दिया, परन्तु ऐसा करनेवाले राजाओं में तो एक ये दरबार ही मिले । गुजरात से बाहर ढसा के दरबार का नाम लें तो लोग आँखें फाड़कर देखेंगे कि यह क्या बात कर रहे हैं?

"परन्तु क्या इन्होंने ढसा का राज्य खोया है? मैंने इन्हें क्यों 'बोरसद के राजा' कहा? वहाँ राज्य तो सरकार का है, परन्तु बात दरबार की चलती है। राज्य तो तब जाय, जब आप इन्हें निकालें और कहें कि 'जाओ, हमारे हृदय में तुम्हारे लिए स्थान नहीं ।' परन्तु मुझे भय है कि आपने ही इन्हें पदच्युत कर दिया है । राजा के हाथ में दिया गया वचन टूटे तो पृथ्वी रसातल में चली जायगी । परन्तु वचन टूटने न पाये, यह धर्म है । राजा

को वचन देनेवाला वचन दे और पालन न करे, तो उसका तो सिर कट जायगा। राजा को सिर लेने का अधिकार है। परन्तु आज न तो वचन की खातिर बिकनेवाले हरिश्चन्द्र रहे, और न सिर लेने का हक रखनेवाले राजा रहे। अछूत भाइयों ने विदेशी सुत न बुनने का जो प्रण लिया था, उसे तोड़ दिया; शराब-मांस त्यागने का दिया हुआ वचन भी तोड़ दिया। इस प्रकार दरबार को पदच्युत किया। पिता का वचन तोड़नेवाला पिता को डुबोता है। आपके ये ढंग दरबार को कायम रखने के नहीं हैं।

"और आप दूसरे वर्णों ने क्या किया? आपने भी वचन तोड़े। आपको दरबार चाहिए तो आपके ऐसे हाल हो सकते हैं? कितनी बहनें खादी पहने हुए हैं? कितनी बहनें कातती हैं? इसका उत्तर दीजिए। फिर आप कह सकते हैं कि दरबार वापस मिलें। सरकार भले ही दरबार का स्वामित्व छीन ले, परन्तु आपने जिसे स्वामित्व दिया, उसे कौन छीन सकता है? आप ढसावाले बोरसद से निकलनेवाला सरकार का हुक्म भाले की नोक पर मानें, तो भले ही मानें। सरकार को लगान देते रहिए, परन्तु और हुक्म दरबार के मानें, तो दरबार पदच्यूत हो सकते हैं? राम-राज्य किसे कहते हैं? राम के पास तलवार थी? राम ने तो प्रजा को प्रेम से वश में किया था। वे वनवास को चले, तो प्रजा उनके पीछे हो गयी। उस समय राम ने कहा: 'प्यारी प्रजा हमारे साथ क्यों आती है?' राम ने प्रजा से बिनती करके उसे लौटा दिया। प्रजा ने तपस्या की। जागरण किये। राम-नाम की माला जपी। भरत जैसे भाई ने राज करने से इनकार कर दिया। प्रेम में भगवे वस्त्र धारण किये और रामचन्द्रजी के खड़ाऊँ सिंहासन पर रखे और उनकी प्रदक्षिणा की और राम का ही ध्यान धरा। इसीलिए हम कहते हैं कि राज हो तो राम का; भाई हों तो भरत-लक्ष्मण जैसे हों; स्त्री हो तो सीता जैसी हो।

"बोरसद से निकलनेवाले आदेश का पालन करो, ऐसी स्थिति हो जाय तो दरबार वापस मिलें। तो सुनिए मेरी प्रतिज्ञा। प्रत्येक पुरुष और स्त्री खादी पहनने लगें, चरखा चलाने लगें, अंत्यज हाथ-कता सूत ही बुनें और खादी पहनें, महाजन अछूतों पर रोष न करें और उनकी पानी वगैरह की सुविधा देखें और उन्हें अस्पृश्य न मानें—इतना कीजिए; और फिर मुझसे पूछिए कि दरबार कहाँ हैं? दरबार आयें या न आयें, मैं तो भारत की स्वराज्य की लड़ाई छोड़कर आपके पास आ जाऊँगा और आपके साथ तपस्या करूँगा।

"आप सब क्या देखकर बैठ हैं? आपने एक बार मेरे पास आकर दरबार साहब की प्रीति की बातें की थीं, सो कहाँ गयीं? मैं यह नहीं पूछता कि आपने दरबार साहब को लगान क्यों नहीं मेजा। वे भीख नहीं माँगते। परन्तु उन्होंने तो वह बात की है, जिससे आपकी जेब में दो पैसे पड़ें। आप मुझसे कहते हैं कि काठी लोग आपके खेत चरा जाते हैं। ऐसा क्यों? आप रक्षा क्यों नहीं करते? दरबार ने आपको पंगु बनाया है? क्या उन्होंने

यह नहीं कहा था कि आप अपने खेतों की रक्षा करें? आप तो कहते हैं कि दरबार ने सब प्रबन्ध किया था। तो फिर आपने क्यों नहीं किया? ब्रिटिश सरकार भी आपके खेतों में आनेवाले चोर-डाकुओं को मार भगाने की छूट देती है। आप क्यों अपंग बन गये? मैनेजर से भी यह कहिए और वह इनकार करे, तो मुझे लिखिए।

"जो होना था सो हुआ। परन्तु आज आप जहाँ से भूले, वहाँ से दुबारा गिनने को तैयार हैं? आपने तो दरबार को पगड़ी और चमकदार कपड़े पहने हुए देखा था। आज वे मोटी खादी का कुरता पहनते हैं। टोपी तो है ही नहीं, और एक मोटा पंछिया। आप क्या करेंगे? आपने पगड़ी उतारी? पगड़ी उतार देंगे तो आपकी जवाँमर्दी चली जायगी? आपने क्या किया, जिससे मैं आपको दरबार को वापस बुलाने के योग्य समझूँ? फिर भी आज एक वर्ष की प्रतिज्ञा लीजिए। अंत्यजों को अपनाइए, मदिरा-मांस छोड़िए, विदेशी सुत बुनना छोड़िए, विदेशी कपड़े का त्याग कीजिए, तमाम कातें और हाथ-कते कपड़े पहनें। विदेशी वस्त्र जलाते न हों, तो बाँधकर रख दीजिए और इस तरह एक वर्ष बिताने के बाद यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करूँ, तो मेरा सिर उड़ा दीजिए और आप अपने पहलेवाले कपड़े फिर पहनने लग जाइए। आपमें से हरएक के घर में चरखा शुरू हो ही जाना चाहिए। पुरे कपड़े न मिलें तो लँ गोटी, नहीं तो खादी का टुकड़ा लपेट लीजिए, अछूतों को गले लगाइए, जो पानी ईश्वर ने आपकों दिया है, वह इन्हें भी लेने दीजिए। नहीं तो समझ लीजिए कि पृथ्वी रसातल में चली जायगी। जिस कुंड से आप पानी पीने को तैयार नहीं हैं, उसमें से इन्हें पिलाने की बात न कीजिए।

"इतनी सीधी और अपने ही स्वार्थ की बात कीजिए और दरबार न आयें तो मुझे लिखिए। मैं असहयोगी होने पर भी सरकार से प्रार्थना करूँगा कि इस गाँव को उसका दरबार लौटा दीजिए। और फिर भी न मिलें तो आपके साथ तपस्या करूँगा। ईश्वर आपको अपनी प्रतिज्ञा पालन करने की शक्ति दे और मुझे अपनी पालन करने की ताकत दे। लीजिए, अब मैंने अपना दुखड़ा आपके सामने रो दिया और अपनी आशा आपको बता दी। जो करना हो सो कीजिए।"

बगसरा

ढसा से निकलकर बगसरा आये। बगसरा बाजसुरवाले दरबार का है। बगसरा की खादी तो किसी समय काठियावाड़ में मशहूर थी। बगसरा की यह पुरानी कीर्ति गांधीजी को बगसरा में खींच लायी है, परन्तु

उस कीर्ति को कायम रखने के लिए कुछ नहीं करते, ऐसा लोगों ने अपने मानपत्र में स्वीकार किया। उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा:

"बगसरा के लिए मुझे पक्षपात तो है ही। सन् १९०८ में मुझे करघे और चरखे के भेद का पता नहीं था। हाँ, मैंने एक बार चरखे के बारे में 'हिन्द-स्वराज' में लिखा जरूर था। जब मैं भारत आया, तब हाथ की बुनाई का काम शुरू करने में बगसरा ने मुझे पहली मदद दी थी। जब मैं देखता था कि पहला करघा मुझे कौन देगा, तब मैंने श्री रणछोड़दास पटवारी को लिखा था और मुझे उन्होंने यह बताया था कि वह दरबार श्री बाजसुरवाला के पास मिलेगा। इन्होंने ही मुझे पहला करघा दिया था और पालनपुर के नवाब साहब की तरफ से एक करघा और एक आदमी मिला था। करघा पाकर जब मैं परेशान हुआ कि किस प्रकार बुनने की शुरूआत की जाय, तब भी मुझे बगसरा के जुलाहे मदद देने को तैयार हुए थे। बगसरा बुनाई के काम का केन्द्र है और यदि बगसरा के जुलाहे और व्यापारी इस बारे में दिल में पूरी लगन रखें तो इतनी खादी दे सकते हैं, जो सारे काठियावाड़ के लिए काफी हो।"

इतना कहकर २०,००० रू. की रूई उगाहने की काठियावाड़ राजकीय परिषद् की योजना गांधीजी ने समझायी।

गोहत्या से भी गर्हित

इसी सभा में काठियावाड़ में अति प्रचलित कन्या-विक्रय की प्रथा के बारे में किसीने शिकायत की थी। उसे ध्यान में रखकर गांधीजी ने इस अनिष्ट प्रथा पर कुछ मर्मभेदी वचन कहे:

"मुझे पता नहीं चलता कि कन्या-विक्रय की किन शब्दों में निन्दा की जाय। कन्या अर्थात् गरीब गाय, उसका शुद्ध दान करने के बजाय उसे धन जुटाने का साधन बनाकर उसे जो बेचता है, वह गोहत्या से भी अधिक घोर पाप करता है। जब मैं यह सोचता हूँ कि चांडालों और अछूतों जैसी जातियाँ कैसे उत्पन्न हुई होंगी, तब मुझे खयाल होता है कि कन्या-विक्रय करनेवालों का समाज ने त्याग करके उनको अन्त्यज बनाया होगा। मैं यह मानता हूँ कि अंत्यज बनने के यदि कोई लायक हो, तो वह कन्या-विक्रय करनेवाला है—यद्यपि कोई भी मनुष्य और उसके वंशज सदा के लिए अस्पृश्य तो किसी भी हालत में नहीं बन सकते।"

इस छोटी-सी सभा में दरबार श्री बाजसुरवाला के पुत्र अमरूवाला के साथ गांधीजी ने खादी की बात की । उन्होंने खादी पहनना स्वीकार न करते हुए कहा कि "राम-नाम जैसी वस्तु, जो पतित का उद्धार करती है, जो प्रत्येक दु:ख से बचाती है, उसे हर स्थान पर और हर सभा में लिवाने की बात आप रखें तो शायद खादी का व्रत लेने का मैं विचार करूँ ।" अनेक धर्मावलम्बियों की बनी हुई सभाओं के आगे बोलते हुए राम-नाम के मंत्र का उपदेश मुझसे कैसे दिया जाय, और इसका इस प्रकार स्थान-स्थान पर उपदेश करूँ तो मैं दंभ और पाखंड को प्रोत्साहन दूँ, 'इस प्रकार खानगी में तो गांधीजी ने उन्हें समझाया, परन्तु उन्हें खादी का व्रत लेने में प्रोत्साहन मिले, इस हेतु से भी उनके सुझाव का अमल पहले गांधीजी ने बगसरा में ही किया ।

"अमरूभाई से प्रथम परिचय मुझे आज हुआ । उन्होंने मुझसे कहा: हम पापी बन गये हैं, लड़कियाँ बेचते हैं। अंत्यजों को अस्पृश्य मानते हैं, ऐसी पाप की स्थिति से कैसे बचा जाय? केवल राम-नाम से । इसलिए आप जहाँ जायँ, वहाँ सबको राम-नाम का मंत्र दीजिए ।' मैं यह मानता हूँ कि ये रामायण के पीछे पागल हैं, इसलिए इन्होंने यह सुझाव दिया । मैं भी रामायण के पीछे पागल हूँ; परन्तु मैं तो खादी के पीछे भी पागल ठहरा और दो पागलपन एक साथ हो नहीं सकते, इसलिए मैं तो अपने को खादी का दीवाना ही बताता हूँ । ये सब जगह राम-नाम चाहते हैं। यदि केवल हिन्दू-धर्म के लोगों की ही बात हो, तब तो मैं इसका कुछ भी अमल कर सकता हूँ । परन्तु जहाँ मेरे श्रोताओं में ईसाई हों; पारसी हों, मुसलमान हों, वहाँ मैं यह नाम कैसे लिवाऊँ? हम पाप का प्रायश्चित्त तो तपस्या से कर सकते हैं। पापों का प्रक्षालंन गायत्री के जप से हो सकता है, परन्तु इसकी गुंजाइश नहीं दीखती । इस सारी महाव्यथा से छूटने के लिए तुलसीदास ने राम-नाम का रामबाण इलाज बताया । अमरूभाई ने भी कहा कि 'तू राम-नाम का जप करानेवाला बन जा ।' इसके लिए जानकारी चाहिए, शुद्धि चाहिए, योग्यता चाहिए । डरते-डरते मैंने अंत्यज भाइयों और कालीपरज के लोगों के सामने यह मंत्र रखा था । परन्तु उजली परज के सामने यह बात मैं किस तरह करूँ? अंत्यज और कालीपरज के लोग तो बेचारे मानते हैं कि वे पतित हैं, इसलिए मैं उन्हें जो कहूँ, उसे वे मानेंगे । उनसे मैं कहूँगा कि तुम्हें शराब की इच्छा हो जाय तो राम-नाम लेना । परन्तु आपसे किस तरह कहूँ? परन्तु अमरूभाई ने मुझे कहा कि मैं आपके सामने यह नाम रखूँ, इसलिए मैं रखता हूँ ।

"राम-नाम से तो पत्थर तर गये, राम-नाम से वानर-सेना ने रावण को कुचला, राम-नाम से हनुमान् ने पर्वत को उठाया और राक्षसों के यहाँ अनेक वर्ष रहकर भी सीताजी ने अपना शील सुरक्षित रखा । भरतजी

१४ वर्ष तक प्रण कायम रख सके, क्योंकि उनके कंठ से राम-नाम के सिवा और कोई आवाज निकलती ही नहीं थी। इसलिए तुलसीदास ने कहा कि कलिकाल का मैल निकालने के लिए राम-नाम लिया जाय।

"इस प्रकार प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकार के मनुष्य राम-नाम लेकर पवित्र होते हैं। परन्तु पावन होने के लिए राम-नाम हृदय से लेना चाहिए, जीभ और हृदय को एकरूप करके राम-नाम लेना चाहिए। मैं अपना अनुभव बताऊँ। मैं यदि इस जगत् में व्यभिचार से बचा हूँ, तो वह केवल राम-नाम के कारण। मैंने दावे तो बहुत बड़े किये हैं, परन्तु मेरे पास राम-नाम न होता, तो तीन स्त्रियों को बहन कहने के लायक न रहा होता। मुझ पर बीते हुए कठिन प्रसंगों में मैंने राम-नाम लिया था; और मैं बच गया था। मुझे अपने और अनेक संकटों में राम-नाम ने उबारा है। मेरे इक्कीस दिन के उपवास में मुझे राम-नाम ने शान्ति दी है और जिलाया है। इस प्रकार राम-नाम के गीत गाने का कोई मुझे कहे तो सारी रात गाया करूँ। परन्तु आप रात को न ठहरें और मुझे भी दूसरी जगह जाना होगा। परन्तु आप अपने को दुःखी और पतित मानते हों—झौर हम सब पतित हैं—तो प्रात:काल और सन्ध्याकाल, सोते समय राम-ताम का जप कीजिए और पवित्र होइए।"

मांगरोल

मांगरोल की कुछ घंटे की यात्रा* अनेक प्रसंगों से भरी हुई थी। स्त्री-सभा तो सबसे पहली हुई। वहाँ राम-राज्य का रहस्य समझाकर गांधीजी ने बताया कि वह सीता के द्वारा ही हो सकता है और वहाँ भी गांधीजी ने रूई के लिए भिक्षा माँगी। ११२ रुपये जमा हुए और कुछ बहनों ने अपने जेवर भी दिये।

बहनों के दर्शन करके गांधीजी शेख साहब से मिलने गये। यह मुलाकात मजेदार थी। शेख साहब की सादगी का तो पार नहीं था। एक छोटे-से कमरे में एक मेज पर उर्दू-अरबी पुस्तकें थीं और फर्नीचर में केवल एकाध गलीचा और थोड़ीसी चटाइयाँ थीं। गांधीजी ने उन्हें उनकी सादगी के लिए बधाई दी और कहा: "त्रावणकोर की सादगी मुझे आज याद आ रही है, एक प्रकार से त्रावणकोर से भी यहाँ सादगी अधिक देख रहा हूँ।'" इस पर शेख साहब बोले: "आपकी सादगी को कोई पा सकता है? आपकी जितनी ही जरूरतों से काम चल सकता हो, तो कितना अच्छा?" इस पर गांधीजी ने एक ही छोटे-से उत्तर में सारी स्तुति को समेट लिया: "मैं कोई राजा हूँ?" शेख साहब ने अंग्रेजी रंग-ढंग और 'करना थोड़ा और बोलना ज्यादा'वाली आजकल की प्रथा की काफी आलोचना की और कातने के लिए अपने प्रेम का वर्णन करके बताया कि "घर में बेगम

साहिबा और दूसरे लोग कातते हैं, ५०० गज खादी घर के ही सूत की बनवा चुका हूँ, मैं तो वृद्ध हो गया, मैं कातना नहीं सीख सका ।" और फिर कहा कि "राष्ट्रीय संस्थाएँ हिन्दू-और मुसलमान दोनों की मिली-जुली होनी चाहिए, जिससे दो संस्कृतियों का एक-दूसरे को लाभ मिले और हिन्दू-मुसलिम-एकता की बुनियाद मजबूत हो ।"

---

* ता. ८-४-१९२५।

खारवों के बीच में

इसके बाद खारवों से मिलने गये । बंदरगाह पर खारवों की खासी आबादी है। कहा जाता है कि शेख साहब मुसलमानों को तो शराब खरीदने या पीने पर सजा देते हैं, केवल खारवे ही अधिकारपूर्वक शराब पीते हैं। खारवों के बच्चे और उनके शिक्षक भी वहाँ थे ही । शिक्षकों से खादी पहनने की प्रतिज्ञा लिवानी पड़ी, और बालक खादी पहनें, इसके लिए गांधीजी को भीख माँगनीं पड़ी । एक बहन ने इन बालकों को खादी दिलाने के लिए दो चूड़ियाँ उतारकर दे दीं । खारवों से शराब छोड़ने की बातें करते हुए गांधीजी ने अपने जीवन के कुछ प्रसंग भी सुनाये । उन्होंने कहा: "खारवों के प्रति प्रेम तो मुझे छुटपन में एक खारवण दाई थी, तब से है।" बहुतों ने शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा ली ।

ऐतिहासिक प्रसंग

परन्तु अभी मांगरोल की आम सभा तो होनी ही थी। आम सभा रात को हुई । डेढ़-दो हजार आदमी उपस्थित होंगे। स्वागत का आरंभ इतना लम्बा था कि बहुतों को शंका हुई कि अन्त कभी आयेगा या नहीं ।

गांधीजी का भी धीरज टूट ही रहा था कि इतने में जिस मंच पर वे बैठे थे वह टूटा, चोट किसीको नहीं आयी और गांधीजी ने यह कहकर विनोद किया कि "छोटा-सा भूकंप ठीक हो गया!"—मानों अभी आगे होनेवाले भूचाल की पुर्व-सुचना हो रही हो! दूर किनारे बैठी हुई अछूत-बालिकाएँ गाने के लिए खड़ी की गयीं।

इन बेचारियों को दूर तो बिठाना पड़ा, परन्तु उनसे गांधीजी का स्वागत कराये बिना कैसे काम चले? उन्हें शुरू करने को कहने के लिए एक भाई जा रहे थे कि गांधीजी बोले:

"मनुष्य के धीरज का कहीं अन्त होता है। और मेरा भी टूट गया है। अछूत-बालाओं को वहीं से बोलना हुआ, तब मुझसे नहीं रहा जाता। आपने देखा होगा कि पाँच-पाँच मिनट में मेरी नजर दूर कोने में रस्सी से बाहर खड़े हुए अछूतों की तरफ जा रही थी। अंत्यज वहाँ बैठें, यह मुझसे सहन नहीं हुआ। यदि अछूत-लड़कियाँ वहाँ बैठकर बोलें तो यहाँ की कांग्रेस कमेटी की तरफ से मुझे जो मानपत्र मिला, वह आडंबर हो जायगा और मुझे दिया जाय तो भी वह आडम्बर के लिए ही कहा जायगा। मैं तो कह चुका हूँ कि मैं ढेढ़ हूँ; अंत्यज हूँ, भंगी हूँ। ऐसे विशेषण अपने को देकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ, अपनी आत्मा को प्रसन्न करता हूँ। मुझसे धंधा पुछा जाने पर मैंने किसान और जुलाहा कहा था, परन्तु मद्रास नगर-निगम के उत्तर में मैंने आगे बढ़कर कहा था कि मैं भंगी हूँ। तब जिन्हें मैं अपना मानूँ, उन्हें आप दूर रखें और मुझे पास रखना चाहें, यह कैसे हो सकता है? मेरी स्तुति करके मेरे सामने गीता के श्लोक फेंकें और मैं उन्हें दूर रखूँ, यह कैसे हो सकता है? परन्तु आपने मेरी जो प्रशंसा की है वह सच्ची हो, आपने मेरे गुणों का जो वर्णन किया वह सही हो, तो हम जहाँ बैठे हैं, वहीं उन,बच्चियों को बैठने के लिए कहना चाहिए। इससे आपको आघात पहुँचेगा, आप कहेंगे यहाँ की शान्ति और रंग में भंग करने यह कहाँ से आ गया? इसलिए जैसे उन्हें दूर बैठे देखकर मुझे सदमा हुआ, वैसे ही उनके यहाँ आने से आपको होता हो, तो यह भी मुझे बता दीजिए। हम आज तक प्रस्ताव करते रहते हैं। आपके स्वागत-द्वारों पर मैंने अस्पृश्यता-निवारण के सूत्र देखे। या तो यह केवल आडम्बर है या यह चीज आपकी असमर्थता सूचित करती है। इस असमर्थता को मिटाना आज के अवसर पर मेरा काम है। इसलिए मैं कहता हूँ कि या तो आपने मुझे जो मानपत्र दिया है, वह ले लीजिए या मुझे अछूतों के बीच में जाकर बैठने दीजिए। आप सच्चे दिल से चाहते हों कि अंत्यज भाई-बहन हमारे बीच में बैठें, तो ऐसा कहिए। मेरा अहिंसा का धर्म है, आपका भी यही है। सब धर्मों में अहिंसा का सिद्धांत है, केवल पालन के प्रकार में मात्रा का भेद है। इसलिए मैं आपको दुःख तो पहुँचाना चाहता ही नहीं। आप मेरे लिहाज से ढेढ़ों को आने देंगे, तो मेरी अहिंसा का लोप होगा। मेरे लिहाज से नहीं, परन्तु हजार दफे आपको गरज हो कि मैंने धर्म-रक्षा की जो बात कही है, वह सच है और उसे स्वीकार करना चाहिए, तो अछूतों को आने दीजिए। आप उन्हें आने देने के विरुद्ध हाथ उठायेंगे तो भी मुझे दुःख नहीं होगा। मैं इतना ही कहकर आह भर लूँगा कि 'अरे जीव! लोग हिन्दू-धर्म को कब

और कैसे समझने लगेंगे?' इसलिए जिसे जैसा लगता हो, उसके अनुसार निडर होकर किसीका लिहाज किये बिना हाथ उठायें।"

हाथ उठे। हजार से ऊपर। अधिक हाथ ढेढ़ों को पास बुलाने के पक्ष में उठे। २५-३० आदमी विरुद्ध थे। यह जानने योग्य बात थी कि विरोध में स्त्री एक भी नहीं थी। इसलिए गांधीजी फिर बोले:

"मेरे लिए धर्म-संकट आ गया है। जब अछूतों को अलग करने की बात कहनेवाला, वर्ग छोटा-सा है, तब नम्रतापूर्वक उससे मेरी सिफारिश है कि वह हट जाय। यदि वे मेरे विनय को न समझें और उन्हें दुःख लगे, तो बेहतर है कि मैं ही अछूतों में जाकर बैठूँ।"

इतने उद्गार निकले कि जिस ब्राह्मण ने आरंभ में गांधीजी की स्तुति की थी, वह बोला: "मैं ब्राह्मण हूँ और अपने विचार के सभी की तरफ से कहता हूँ कि यह ऐसी बात है, जिससे हम सबको दुःख महसूस हो। मैं तो आपसे कहता हूँ कि आप ही अंत्यजों में जाकर बैठिए और हम आपको यहीं बैठे-बैठे सुनें।"

इसलिए गांधीजी पुनः धर्म-संकट में पड़ गये: "हम सभा के नियमानुसार यहाँ बरत नहीं सकते। इस नाजुक मौके पर आप मुझे ही वहाँ जाकर बैठने दें, तो अच्छा।"

इस पर डॉक्टर रविशंकर ने दुःखी होकर कहा: "हमने आपको मत दियें, फिर भी आपको जाने दें, यह थूककर चाटने जैसा है।"

इससे गांधीजी फिर धर्म-संकट में पड़ गये। "आपको आघात नहीं पहुँचना चाहिए। आपने पहले से कोई सूचना नहीं निकाली कि अछूतों को शामिल रखा जायगा। आपने तो सबको अलग बैठने दिया था और मैं न बोला होता तो वहीं बैठे रहने देते। इसलिए मुझे लगता है कि इस समय सभा के हक का अमल करना इन्हें आघात पहुँचाने जैसा है। मुझे तो जरा भी दुःख नहीं होता, परन्तु आपकी मर्यादा कायम रह जाती है। आपका काम आसान हो जाता है।" यों कहकर गांधीजी उठे और अपना स्थान अंत्यजों के बीच में लेने जा रहे थे कि एक और सज्जन उठे और उन्होंने ब्राह्मण-विरोधी से गंभीरतापूर्वक कहा: "देखिए, गांधीजी जायँगे तो उनके पीछे हम जायँगे। इसलिए आप तो अलग के अलग ही रहेंगे। तब आप हट जायँ तो क्या बुरा?"

वे ब्राह्मण समझे और दो-तीन भाइयों के साथ अलग हो गये। बाकी जिन्होंने अछूतों के विरुद्ध हाथ उठाये थे वे तो इतना विरोध करके कि 'घर जाकर नहा लेंगे' बैठे रहे! अछूत-कन्याएँ आयीं और साढ़े दस-ग्यारह बजे के लगभग गाया:

ऐसे गांधी गुजरात में जन्मे रे,
ये तो लगते पोचे पोचे बनिये रे,
पर करते ये शूरवीर का काम.....ऐसे ।
यह गरवा ललकारा!

और अंत में हुआ गांधीजी का भाषण । संवाद की प्रशंसा की, मानपत्र का आभार माना, राष्ट्रीय पाठशाला के तत्त्व गिनाये और अंत्यजों के प्रश्न पर आये:

"अंत्यजों के प्रश्न ने यहाँ अनायास बड़ा स्वरूप ले लिया । विभाजन हुआ इसे मैं शुभ मुहूर्त मानता हूँ । जो भाई विवेकपूर्वक गये, उनको बधाई देता हूँ, घर जाकर नहा लेंगे, यह कहकर बैठे रहनेवालों को भी बधाई देता हूँ । आप मुझे वहाँ जाने देते तो बहुत अच्छा होता, परन्तु यह भी बुरा नहीं हुआ । यह सभा का हक है और मैं आप पर दबाव डालता तो भी अहिंसा का लोप होता। जो मुझसे सहमत हों, उन पर भी मैं इतना ज्यादा अंकुश नहीं लगा सकता । इसलिए मैं मेरा समर्थन करनेवालों का आग्रह समझ गया और यह समझकर बैठा रहा कि जो व्यवस्था हुई, सो ठीक हुई ।

"अब विरोध करनेवालों से दो शब्द कहना चाहता हूँ। इस बात की चर्चा इतने वर्षों से हो रही है, फिर भी आप नहीं चेतते, यह कितनी दुर्दशा है? यदि कोई ढेढ़ इस सभा में आकर बैठ गये होते, तो आपको कोई आपत्ति न होती। परन्तु यह प्रश्न उठा तो आपत्ति हो गयी! (एक आदमी ने यहाँ विरोध किया । यह कहा कि स्वयंसेवकों ने अछूतों को अंदर बैठाया था ।) किसी स्वयंसेवक ने अंत्यज को अंत्यज समझकर बैठाया हो तो यह ठीक था, परन्तु अंत्यज नहीं, यह समझकर बैठाया हो तो धोखा दिया है । इसमें मुझे धोखा दिया और जो अस्पृश्यता को पुण्य मानता है, उसे धोखा दिया है। हम किसीसे जबरदस्ती धर्म का पालन नहीं करा सकते । धर्म में बलात्कार नहीं हो सकता, हो तो वह धर्म हो जाता है। किसी स्वयंसेवक ने ऐसा किया हो तो वह पश्चात्ताप करे, माफी माँगे ।

"मैं जो कहता हूँ, उसे तो मेरे बीच में पड़नेवाले मनुष्यों ने समझा ही नहीं । आप रेल में, सार्वजनिक दफ्तरों में, मिलों में, दूसरी संस्थाओं में, जहाँ अछूत हमारे साथ इकट्ठे होते हैं, वहाँ उनका त्याग नहीं करते । मिलों में तो अंत्यजों से काम लेते हैं, इसलिए त्याग काहे को करें? यह सब होने पर भी जो यह मानते हैं कि अस्पृश्यता पाप है, इस पाप का उन्मूलन करना ही चाहिए, उन्हें बेवकूफ समझना, आँखों पर पट्टी बाँधना

मनुष्यत्व नहीं है, व्यवहार नहीं है, बुद्धि नहीं है । मैं आपसे कहता हूँ कि आप कुछ तो व्यवहार-कुशल बनिए । वैष्णव प्रेम का दावा करते हैं। यहाँ वैष्णवों ने अंत्यजों के लिए कौन-सा प्रेम प्रकट किया है? कुछ अंत्यजों से मैं बगसरा जाते हुए रास्ते में मिला था । उन्होंने मुझसे कहा: 'हमें पानी नहीं भरने देते, हमें पशुओं के कुंड से पानी भरना पड़ता है!' क्या यह दया है? जिसमें पशु पानी पीते हैं और हम कभी नहीं पीते, उसमें से पानी पीने के लिए इन लोगों को मजबूर करना क्या दया है? यह तो निरी निर्दयता है, अधर्म है, पाप है, राक्षस-वृत्ति है । यह वृत्ति न तो वैष्णव-धर्म में है, न भागवत में । यदि यह साबित हो जाय कि इन ग्रंथों में ऐसा कुछ है, तो मुझे ऐसा वैष्णव-धर्म नहीं चाहिए; ऐसा हिन्दू-धर्म नहीं चाहिए । हडाला में यही सुना। जिस अंत्यज को हमारी जैसी पाँच इन्द्रियाँ हैं, जो हमारी तरह पाप करता है, पुण्य करता है, उसे ईश्वर का बनाया हुआ पानी देने की मनाही! (कहते हैं) वह मांसाहार करता है! वह तो बेचारा खुल्लमखुल्ला करता है। जो छिपकर मांसाहार करते हैं, उनका हम क्या करते हैं? कन्या-विक्रय करके गो-हत्या का पाप करते हैं और अस्पृश्यता-धर्म का पालन करते हैं! इस 'धर्म' का पालन करनेवालों की हड्डियों में दया नहीं है, रग-रग में पाखंड है, निर्दयता है ।

"रजस्वला को, जब तक वह रजस्वला हो, न छुएँ; चांडाल को, जब वह अपना काम करता हो, न छुएँ; इतना ही शौच का नियम मनुस्मृति बताती है। अधिक-से-अधिक प्रसुता, चांडाल और रजस्वला को छूकर नहा लें, इतनी ही शास्त्राज्ञा है। वहाँ इतने जुल्म क्यों? अलग अछूत-मुहल्ले क्यों? भंगी; चमार का सब जगह बहिष्कार क्यों? फिर भी ऐसा करते हुए हम नरसिंह महेता के वंशज होने का दावा करते हैं, नमोकार मंत्र जपने का ढोंग करते हैं। जब तक आपके हृदय कोमल नहीं होते, तब तक आपके कोई दावे काम नहीं आ सकते । मुझे सारा भारत कहता है कि मैं खोटा हिन्दू हूँ, फिर भी मैं कहूँगा कि मैं ही सच्चा हिन्दू हूँ और अस्पृश्यता को धर्म माननेवाले अन्य लोग खोटे हैं। मरते-मरते भी इस चीज को पाप कहता हुआ मरूँगा । मोक्ष मेरे लिए नहीं हो सकता, क्योंकि मुझे इस वस्तु के लिए मोह है । अलबत्ता मैं कौन इसे मिटानेवाला? मैं तो चाहता हूँ कि हिन्द-धर्म में से क्रूरता जाय, अस्पृश्यता जाय, व्यभिचार जाय, पाप जाय। यह इच्छा रही है, यह इच्छा प्रकट करता रहता हूँ। जब विचार मात्र से मैं ऐसा कर सकूँगा, तब हिमालय चला जाऊँगा। परन्तु आज तो मेरा जीवन प्रवृत्तिमय है। और इतनी प्रवृत्ति होने पर भी अशान्ति नहीं है, मैं शान्ति की नींद सोता हूँ ।

"आप वैष्णव, शैव, कोई भी हिन्दू हों, यह समझ लीजिए । आपका धर्म तराजू में तौला जा रहा है । आपको पता नहीं कि दुनिया के कोने-कोने में पारसी, ईसाई, मुसलमान जानना चाहते हैं कि कौन-सा धर्म सच्चा है, किसमें अधिक दया है, प्रेम है; किसमें एक ईश्वर की पूजा है। ऐसे समय में आप समझिए कि हिन्दू-

धर्म को मैले डिब्बे में रखकर उसकी रक्षा करेंगे तो यह व्यर्थ है । आपके तिलक-छापे, आ्रापके दहेरां (मंदिर) वगैरह तब तक बेकार हैं, जब तक आपके हृदय प्रेम से-मानवमात्र के प्रति, प्राणीमात्र के प्रति प्रेम से—भीगे हुए न हों। इसीलिए बहनों ने अंत्यजों को बुलाने के विरुद्ध हाथ नहीं उठाये। यह बताता है कि हममें सतीत्व अभी तक मौजूद है। सीधे मार्ग पर चलनेवाली हमारी बहनें ही हैं, यह मैंने भारत में सर्वत्र देखा है। परन्तु आप क्यों नहीं समझते? छह करोड़ अछूत हो ही नहीं सकते, यह आपके ध्यान में क्यों नहीं आता? मालवीयजी और करवीर-पीठ के शंकराचार्य भी कहते हैं कि छह करोड़ का अंत्यज होना ही असंभव है। (यहाँ फिर उस विघ्नकर्ता ने कुछ न कुछ सवाल पूछकर गांधीजी को रोका, इसलिए गांधीजी उसे ध्यान में रखकर बोले:) यह भाई मानते हैं कि मैं अज्ञान की बातें कर रहा हूँ । मैं मानता हूँ कि ये अज्ञान की बातें कर रहे हैं । इसका इंसाफ कौन करे? हमारे मरने के बाद ही इसका न्याय हो सकता है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं अपूर्ण मनुष्य हूँ। मैं सत्य की जैसी व्याख्या करता हूँ, वैसे सत्य का पालन करनेवाला नहीं। नहीं तो मुझे बहस करनी पड़ती? यदि मुझमें अहिंसा पूर्ण रूप से व्याप्त हो, तो इस भाई में वैर संभव है? क्रोध हो सकता है? (इस पर उस भाई ने उत्तर दिया: "मुझे क्रोध नहीं, मैं शान्ति से बोल रहा हूँ ।') भाई, मैं तो कहना चाहता था कि मेरी अहिंसा अघूरी है, क्योंकि तुम्हें क्रोध आ गया । परन्तु यदि तुम्हारा कहना सच हो कि तुम्हें क्रोध नहीं आया, तब तो सिद्ध होता है कि मुझमें अभी थोड़ी अहिंसा तो भरी ही है, और मैं मानता हूँ कि थोड़ी अहिंसा मुझमें जरूर है। मैं जो कह रहा हूँ सो प्रेम की बूँदें हैं, सौ टंच का सोना है। (फिर उस आदमी ने विक्षेप किया । इसलिए गांधीजी नें कहा: कोई भी मर्यादा छोड़कर यहाँ न बोले और मुझे मत देनेवाले का दोहरा फर्ज है कि इस भाई को भी सहन कर ले ।') इतनी बात जो मैंने की, वह मुझे मत देनेवालों को शान्त करने और विरोधियों को कुछ न कुछ समझाने के लिए की । परन्तु यह कहीं एक रात में हो सकता है? मैं तो इतना ही कहूँगा कि जब तक हमारे हृदय समुद्र की भाँति स्वच्छ नहीं हो जायँगे, तब तक स्वराज नहीं मिलेगा ।"

इस प्रकार पिछली रात सनातनियों के साथ झगड़ा हुआ था तो सबेरे* अंत्यजों के साथ हुआ, क्योंकि अंत्यज भी सब जगह सच बोलने और कहना माननेवाले हैं, ऐसा मानने का कारण नहीं है । भंगियों के पास गये, तो वहाँ उनके घर देखकर गांधीजी को पुछने की इच्छा हुई: "यह वैष्णव मुझे छोड़ दें तो मुझे ठहराने के लिए बनाया है क्या?" परन्तु इस प्रकार सुखी दीखते हुए भी सब अत्यंत गंदे लगे और मुर्दार मांस खानेवाले और शराब के व्यसनी मालूम हुए। इन्हें गांधीजी ने कहा कि "इतने गंदे बच्चों को साफ बालकों के साथ रखने में हिचकिचाऊँगा । जब तक तुम मुर्दार मांस खाना न छोड़ोगे, तब तक दूसरे हिन्दुओं को तुम्हारे साथ घुल-

मिल जाने को कैसे समझा सकता हूँ?" गांधीजी के कहने से उन्होंने शराब और मुर्दार मांस छोड़ने की प्रतिज्ञा ली । कहा जाता है कि ऐसी प्रतिज्ञा उन्होंने बहुत बार तोड़ी है। ऐसी आशा रखी जायगी कि इस बार की प्रतिज्ञा उन्होंने अधिक गंभीरतापूर्वक की होगी । परन्तु यों झटपट प्रतिज्ञा न लेनेवाले अंत्यजों की मुलाकात अभी होनी थी ।

---

* ता. ९-४-१९२५।

तब भंगियों को न छूनेवाले जुलाहे ढेढ़ों के मुहल्ले में गये । लोग काफी संख्या में इकट्ठे हुए थे । उनका मुखिया एक चालाक आँखोंवाला कद्दावर बूढ़ा गुरूड़ा बना । गांधीजी उनसे पूछने लगे ।

"मैं भंगियों के पास हो आया । तुम उन्हें क्यों नहीं छूते?"

वृद्ध बोला: "नहीं छूते । उन्हें छूकर अपनी पवित्र देह बिगाड़ें?"

"वे अपवित्र और तुम पवित्र?"

"हम तो बिरहमन (ब्राह्मण) की संतान हैं। उन लोगों के कर्म नीच हैं । उनके कर्म ने उन्हें ऐसा बनाया।"

"परन्तु मैं भंगी को छूता हूँ, मैं मंगी जैसा हूँ, फिर भी मुझे तो तुम छूते हो?"

"आप तो महात्मा हैं। आपको कोई बाधा नहीं। हम अपनी देह नहीं बिगाड़ेंगे ।"

"तब तुम्हें बनिये ब्राह्मण नहीं छूते तो क्या वे ठीक करते है?"

"हाँ, उनसे कौन कहने गया था कि हमें छुओ । न छुएँ तो अपने घर रहें । हमें क्या?"

"ओ हो! अच्छा, तुम धंधा क्या करते हो?"

"धंधा? - धंधा तो जन्मपत्री देखने का करता हूँ । आपकी भी देख दूँ", निर्लज्ज हास्य से वह बोला ।

"वाह! तो देख दो न ? तुम्हारा पंचांग तो मँगाओ ।"

बूढ़ा तो अंधों में काना राजा बना हुआ था। सब उसे जानते थे । इशारा करते ही एक बालक उसका पंचांग ले आया । फिर गांधीजी ने अपनी जन्मपत्री देखने को कहा । इस पर जरा शरमाते हुए वह बोला: "आपकी जन्मपत्री क्या देखें? आप सारे देश की देख रहे हे न!"

"नहीं, नहीं, तो भी देखो तो सही ।"

"नहीं, महाराज, आपकी नहीं । मैं तो उन दूसरी जगह खड़े हुओं की देखता हूँ ।"

गांधीजी: "अच्छा, पंचांग तो लाओ । लाओ देखें, मेरे सामने पढ़ो ।"

वह लाया । शरमाये बिना वह गिनती करने लगा: "यह मेष के ७ और मिथुन के ४ और कन्या के अमुक।"

गांधीजी: "यह तो तुम मुँह से बोल रहे हो । इसमें लिखी हुई लकीर पढ़ो ।"

"महाराज, यह मेरे से पढ़ा तो नहीं जाता । यह तो हमारा पेट भरने का धंधा है ।"

"ठी॰क। समझा । अब चुप रहो ।" यह कहकर गांधीजी उस पर उबल पड़े और अंत्यजों को सम्बोधन करके बोले:

"दाहोद में मुझे ऐसे पाखंडी का एक उदाहरण मिला था । यह दूसरा है। मैं कहता हूँ कि ऐसे पाखंडी मनुष्य की तुम न मानना । इसे मैं कहता हूँ कि पेट भरने के पाखंड छोड़ दे और ठगकर पेट भरने के बजाय मजदूरी करके पेट भर । इसने जो बातें कीं, वे मुझे खंजर भोंकने की बात की है । यह तुम्हें बेकार प्रपंच और झूठ सिखाता है। इसे काला अक्षर पढ़ना नहीं आता और केवल तुम्हें ठगता है। इसका त्याग करना और भूखों मरने देना, यदि इसे ईमानदारी से मजदूरी न करनी हो तो। तुम भंगी को नहीं छुओगे तो तुम्हारा नाश है। मैं कहता हूँ कि तुम इसे छोड़ देना, पाखंडी की सेवा नहीं होती । ऐसी नंगाई मेरे सामने नहीं चलेगी । यदि तुम भंगी को नहीं छुओगे तो मैं सबसे कहूँगा कि कोई तुम्हारे द्वार पर न आये, केवल भंगी मुहल्ले में ही जाय ।"

इसका असर तो हुआ ही, क्योंकि एक दूसरे भगत ने, जिसने अब मुखियापन स्वीकार किया था, गांधीजी के साथ बहुत विचार से बात की और कहा: "भंगी को न छूना ठीक नहीं । उसे छूने से भ्रष्ट नहीं होते।" और सबने छूने का वचन दिया। मुर्दार मांस छोड़ने की बात कठिन प्रतीत हुई । "हमारा तो ऐसा जन्म ही है। इसलिए खाये बिना कैसे काम चले? हमारा यह धंधा ठहरा । चमड़े चीरें, चमड़े में हमारा दिन बीते तो हम कया करें? आपकी वचन देकर क्या करें? वचन देकर कल ही फिर तोड़ें, यह ठीक नहीं ।" इन लोगों नें मुर्दार मांस न खाने की प्रतिज्ञा ली ही नहीं । विचार करके कुछ न कुछ करने का वचन दिया ।

इस प्रकार मांगरोल की यात्रा घटनाओं से भरपूर थी । मांगरोल में शहरियों ने दो-ढाई हजार रुपये की रूई का भी चंदा किया । मुसलमान भाइयों ने रमजान होने पर भी गांधीजी और मित्रों को फलाहार करने के लिए निमंत्रित किया था। गांधीजी को यह देखकर बड़ा आनंद हुझा कि हिन्दू-मुसलमानों के बीच मुहब्बत है ।

काठियावाड़ से आकर गांधीजी बम्बई गये थे और बम्बई से सूरत जिले के जलालपुर तालुके के गाँवों में गये । काठियावाड़ के कठिन प्रवास के अन्त में उन्हें बुखार आ जाने के कारण यह सफर भी छोड़ देने का कार्यकर्ताओं ने सुझाव दिया था, परन्तु गांधीजी ने आग्रहपूर्वक निश्चित किया हुआ क्रम पूरा किया ।

सारे प्रवास का हेतु गांधीजी ने एक वाक्य में बता दिया : "मेरे आने से कार्य को कुछ न कुछ वेग मिले, ऐसा मुझे और कार्यकर्ताओं को लोभ है, इसलिए यहाँ आया हूँ, वैसे मुझे इसमें संतोष है कि साबरमती में बैठकर अपना काम करता रहूँ ।

कराड़ी की सभा में बोले:*

"सभा की शान्ति देखकर मुझे आश्चर्य और हर्ष होता है। अभी मैंने बोलने की कुछ शक्ति गँवा दी है और आवाज ऊँची करके बोल नहीं सकता । ऐसे समय इतनी शान्ति से सब बैठे हैं, इससे मुझे खूब आनन्द हो रहा है। बच्चों ने काशिया के नाम के साथ गाया, यह मुझे पसन्द आया । काशिया में कितनी खूबियाँ हैं, यह तो भजन गानेवाले के भीतर बसनेवाला जाने और मैं तो उसकी कीमत खूब जानता हूँ ।

"बहुत-से भाइयों ने सफेद टोपी पहनी है, यह मुझे प्रिय लगता है। परन्तु मुझे पता नहीं कि ये आज की सभा के लिए ही पहनी है या क्या । मैं मानता हूँ कि जैसे टोपी खादी की पहनी है, वैसे ही दूसरे कपड़े भी खादी के होंगे। ऐसा न हो, तो ऐसा करने की सलाह देता हूँ । आप समझ लें कि अब बहुत समय हो गया, हमारे लिए बहुत लम्बा सोचने की बात नहीं होनी चाहिए । विदेशी और मिल के कपड़े का मोह तो होना ही नहीं चाहिए । और खादी के कपड़े पहनने में शर्म नहीं आनी चाहिए । वह भारी भी नहीं लगनी चाहिए। हमारे गरीब कातने और बुननेवालों के बनाये हुए कपड़े पहनने में हमें भार कैसा? हम मोटा कातें तो यह हमारा ही कसूर होगा । रूई सुन्दर मिलती है और बारीक काता भी जाता है, तो फिर हम किसलिए मोटा पहनें? मैं बहनों के शरीर पर खादी नहीं देखता । बहनों को विलायती अथवा मिल के कपड़ों की जरूरत न होनी चाहिए । मिल के कपड़े पहनकर यहाँ आना अच्छा नहीं माना जायगा । आप ऐसा करें तो फिर मेरे लिए साबरमती में बैठने से अधिक अच्छा क्या होगा? परन्तु मैं लोभवश चला आता हूँ । मेरे साथी भी लोभ के वशीभूत हुए; और कहा कि उसे

बुलाओ । उसके आने से शायद कोई अच्छा परिणाम आये । मुझे स्वराज्य चाहिए । आपको भी चाहिए। वह कैसा होगा, यह कोई नहीं जानता, परन्तु यह मान लीजिए कि वह खादीरहित होगा तो निकम्मा ही होगा । जब तक खादी न हो, तब तक जीवन में जो शुद्धता और स्वतंत्रता चाहिए, वह नहीं आती । मैं जानता हूँ कि खादी पहननेवाले पाखंड करते हैं और अस्वच्छ रहते हैं । परन्तु हमें तो समझ- बूझकर पहननी है। वह न पहनी हो, तब तक हम न धर्म कर सकते हैं, ने कर्म कर सकते हैं ।

"जब तक हम अंत्यजों को दूर रखेंगे, तब तक जगत् हमें दूर रखेगा । धर्म में अस्पृश्यता का कोई भी स्थान नहीं है । शौचादि के नियम के सिलसिले में अस्पृश्यता भले ही हो । परन्तु यह कहना कि कोई भी मनुष्य जन्म से अछूत है, पाखंड है, अधर्म है; राक्षसीवाद है। जन्म से मनुष्य अस्पुश्य बन जाता है, ऐसा कहनेवाला मनुष्य खोटा है ।

"तीसरी बात शराब की । कोली, दुबले शराब पीनेवाले हैं। तुम सोचो कि शराब तुम्हारा कितना ज्यादा जहरी दुश्मन होगा कि जो तुम्हें छोड़ता ही नहीं । इसे छोड़ना ही चाहिए। इसके लिए बढ़िया उपाय यह है कि सबेरे के समय राम-नाम लिया जाए; रो-रोकर ईश्वर से कहा जाए कि तू मुझे विदेशी (कपड़े), मांसाहार और व्यभिचार से बचा। प्रह्लाद को उबारनेवाला ईश्वर है। तुम्हें उसे दूसरे नाम से भजना हो तो दूसरे नाम से भजो, परंतु इतनी बात तुम्हें करनी है, सो कह दी।

"हिन्दू-मुसलिम-एकता का काम बिगड़ा है। मैं स्वयं तो हार गया हूँ। कल सारे दिन शोकत अली और ख्वाजा बैठे थे। उन्हें मैं यहाँ नहीं ला सका, क्योंकि ये लोग बम्बई के लोगों को खिलाफत के बारे में जो संदेह पैदा हो गया है, उसे दूर करने के लिए व्रत लेकर बैठे हैं। मैंने तो हाथ धो डाले हैं। आजकल मेरी सलाह काम नहीं आती। मेरी सलाह तो मर्द के लिए है; डरपोक के लिए नहीं। सामनेवाला गाली दे, तो मैं गाली न दूँ, सामनेवाला मारे तो मैं जवाब में न मारूँ, मेरा यह धर्म मैं समझा नहीं सकता, इसलिए मैंने यह चीज छोड़ दी है। मुसलमान भी पागल हो गये हैं। हिन्दू भी पागल हो गये हैं। एक-दूसरे को छेड़ते हैं। भारत में जोड़ लगाने बैठता हूँ, तो दोष मुझे मुसलमान का अधिक लगता है; परंतु इससे क्या दोस्ती छोड़ सकता हूँ? बाप के मन में लड़के का दोष लगे तो क्या उसे छोड़ा जाता है? बाप उसे शाप, बददुआ नहीं देता। उसे तो यह कहूँगा कि तू रंडीबाज है, शराबी है, फिर भी अच्छा बन। इसे मैं थोड़े ही कहनेवाला हूँ कि तू समुद्र में जाकर डूब मर? इस प्रकार मैं मुसलमानों को छोड़ नहीं सकता। हिन्दू का कसूर बिलकुल न होने पर भी मुसलमान उसे छेड़े तो भी मैं तो उसके पैर ही दबाऊँगा। मैं मुसलमान से कहता रहूँगा कि तुम जो करते हो वह अधर्म है, वह इसलाम

नहीं है। ऐसा कहते रहकर भी मैं उसकी लात खाऊँगा। मेरी यह सलाह माननेवाला आज कोई नहीं है। परंतु किसी दिन इन दोनों के एक हुए बिना निस्तार है ही नहीं, यह कहकर बैठा हूँ। मैं कल मर जाऊँ तो भी आप ऐसा कहनेवाले आदमी के पास ही आयेंगें। हाँ, डर छोड़ देना चाहिए। यह आन्दोलन डर छोड़ देने का है। बस, मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया। अछूतों को हर समय छूते रहें, यह बात नहीं है। हिन्दू-मुसलिम-एकता के बारे में दिल साफ करो तो काफी है। अंत्यजों को इकट्ठे करना असान है। खादी पहनना आपका धर्म है, यह समझना भी कठिन नहीं है।"

---

* ता. १५-४- १९२५ |

नवसारी में गांधीजी जायँ और पारसियों से न मिलें, यह हो सकता है? पारसी भाइयों से इस बार भी मिले और उनके सामने अत्यन्त भावना से भाषण देते हुए बोले:

"आपसे डॉक्टर ने कहा होगा कि मेरा स्वास्थ्य खराब होने के कारण आप मुझसे लम्बे भाषण की आशा न रखें। परन्तु मुझे आशा है कि मेरी आवाज बहनों और भाइयों तक पहुँच जायेगी। पारसी भाइयों और बहनों के साथ मेरा सम्बन्ध कैसा है, यह मैं कितनी ही बार बयान कर चुका हूँ। मैंने कई बार घोषणा की है कि दक्षिण अफ्रीका में पारसी रुस्तमजी का और मेरा कुटुम्ब ओतप्रोत हो गये थे। जब मेरी जिन्दगी खतरे में थी और हजारों गोरे मेरी जान लेने को तड़प रहे थे, उस समय आपना जान-माल जोखिम में डालकर आपने घर में मुझे रखनेवाले रुस्तमजी थे। वे तो देवता हो गये, क्योंकि वे मर गये हैं। जब मैं विलायत गया, तब मैं एक पारसी के नाम सिफारिश पत्र ले गया था और वहाँ विलायत में मुझे रास्ता दिखानेवाले और जिनकी गोद में मैंने सिर रखा था—अर्थात् रूपक के तौर पर नहीं, परन्तु अक्षरश:—वे एक पारसी थे। उनका नाम था दादाभाई नवरोजी। मुझे जनता में लानेवाले, पथप्रदर्शक, बारीकी से सब बतानेवाले और यह समझानेवाले कि मुझे क्या बोलना चाहिए और कैसे बर्ताव करना चाहिए, पारसी सर फीरोज-शाह महेता थे।

"यह तो हुई भूतकाल की बात। अब वर्तमान की बात करूँ। आज पारसियों के साथ मेरा कैसा मीठा सम्बन्ध है, यह जान लीजिए। दादाभाई की दो पोतियाँ मेरे काम में प्राण उँडेल रही हैं। नरगिस और पेरिन चौबीसों घंटे भारत का ही विचार करनेवाली हैं। वे खादी के पीछे पागल बनी हुई हैं। जमशेदजी पीटिट के साथ मेरा सम्बन्ध जान लीजिए। उसी कुटुम्ब की मीठूबहन आज खादी का जितना प्रचार कर रही हैं, उतना सुन्दर

प्रचार उच्च परिवार की एक भी बहन नहीं कर रही है। ये बहनें रात-दिन यही बात करती हैं। ये तीनों बहनें कल मुझे घेरकर बैठी थीं। मुझे बुखार से पीड़ित देखकर कहती हैं: 'हमें साथ ले चलिए।' परन्तु मैंने जबरदस्ती छिटकाकर कहा कि यों नहीं ले जाया जाता। आज भरुचा कंधे पर खादी रखकर मद्रास में फेरी लगा रहे हैं। हमेशा बिनमाँगें डायरी भेजते हैं। मद्रास में खादी बेचते हैं। इसमें उनका मेरे प्रति प्रेम है। प्रेम के वश होकर मद्रास इलाके में घूम रहे हैं। इतने ही प्रेम के वश होकर डॉक्टर मेरे पास आये और बोले: 'पारसियों के सामने बोले बिना काम नहीं चलेगा।' मैंने परसों के लिए सुझाव दिया, तो कहते हैं: 'नहीं, आज ही। फिर शायद बुखार आ जाय तो मिलना नहीं होगा।'

"जिस जाति के साथ मेरा सम्बन्ध इतना मीठा है, उसे मैं उलहना कैसे दे सकता हूँ? आज तक पारसी कौम से मैंने जितनी आशा रखी है, उसमें मैं असफल नहीं हुआ। मुझे विश्वास है कि भारत के ८० हजार पारसी पूरा योग अवश्य देंगे। जब दक्षिण अफ्रीका में लड़ाई चल रही थी, तब बाहर से सबसे ज्यादा चंदा भेजनेवाले रतन टाटा थे। पहले ही दौर में उन्होंने २५ हजार रुपये भेज दिये। मैं न उन्हें जानता था, न उनसे मिला था। गोखलेजी हमारे विचौले थे। गोखले ने उनसे कहा कि यह पाखंडी नहीं, इसलिए उन्होंने भेजे और लिखा कि बाद में और भेजूंगा। और उन्होंने और भेजे भी जरूर थे।

"आपसे इतनी ही बात कह सकता हूँ कि पारसी आबादी का मुख्य स्थान बम्बई हो गया है, परन्तु धर्मस्थान तो नवसारी ही है। इस स्थान पर इतना ही कह सकता हूँ कि खादी से ही पारसी सेवा कर सकते हैं। यह बात पारसी बहनों को बड़ी कठिन मालूम हो सकती है, क्योंकि वे तो रेशमी कपड़े पहननेवाली हैं। आपने मुझे गरीब-से-गरीब समझा और यह कहा कि मैं गरीबों की सेवा करने आया हूँ। मैंने नहीं, परन्तु तमाम लेखकों ने पारसी जाति को दान में पहले नम्बर पर रखा है, और बाद में यहूदियों को। एक पुस्तक में पढ़ा था कि किसी भी धर्म का अंदाजा धर्म का पालन करनेवालों की संख्या पर से नहीं, परन्तु इस बात पर से लगाया जा सकता है कि उस धर्म का पालन करनेवाले करते क्या हैं। उदारता को मैं धर्म का पैमाना मानता हूँ। पारसी जाति ने जितनी उदारता दिखायी है, उतनी और किसी ने नहीं दिखायी। इस उदारता का दर्शन मैं तो सभी जगह कर रहा हूँ।

"परन्तु जो कह रहा हूँ, वह दूसरी बात है। आप रुपया कमायें, तो जोड़कर या बनिये की तरह ब्याज लेने नहीं बैठते, परन्तु आप बिखेरते ही रहते हैं। आपना यह दयाधर्म आप खो दें, तो सर्वस्व खो देंगे। परन्तु इससे भी अधिक वस्तु—जिगर—आप दे सकते हैं। दिनशा पीटीट करोड़ रुपयों में से ९९ लाख दें तो वह बड़ी

बात कहलायेगी। परन्तु जो जिगर दे तो कहा जायगा कि उसने करोड़ से भी ज्यादा दिया। इस समय मैं पारसी बहनों से जिगर का छोटा-सा टुकड़ा माँगता हूँ। सारा जिगर नहीं। और कहता हूँ कि एक कदम आगे बढ़कर उन बहनों की तरह जिगर का टुकड़ा दें। अर्थात् रेशमी कपड़े बदलकर खादी पहनें। ऐसा करेंगे तो आप कम सुशोभित नहीं होंगी। आपकी शोभा आपकी जबान में—वाणी में—दिल में है। दिल पाक होगा तो सुशोभित होंगी। नापाक हो तो कैसे और कितने ही कपड़े पहने हों, तो भी मेरे जैसे का माथा नहीं झुकेगा। आज बहनों के आगे मेरा माथा झुकता है, तो उसका कारण यह है कि बहनों ने पवित्रता का जितना आग्रह रखा, उतना भाइयों ने नहीं रखा। इसलिए जिगर दो, यह कहकर मैं तो मामूली-सी माँग कर रहा हूँ।

"महीन साड़ी देने का धंधा मीठूबाई का है। वह महीन सूत बुनाये, गरीब पारसी बहनों से कढ़ाई का काम कराये, कपड़ों को सजाये और पारसियों को बेचे। उसके मन में हिन्दू और पारसी का भेद नहीं है। वह तो दोनों को समान मानती है। उससे बारीक खादी माँगवाइए। जो मोटी किस्म चाहिए, वह गुजरात से लीजिए। आपके पास खूब समय है। आप घंटा बचाइए। आया घंटा बचाइए। आप शिक्षित बहनें हैं। आप महीन सूत कातिए और बुनाइए। मैं जानता हूँ इसमें कष्ट है; शौक छोड़ना रुपया छोड़ने से कठिन है, इसलिए मैंने जिगर का टुकड़ा माँगा।

"भारत में सब जगह मैं यही माँग कर रहा हूँ। यही भाइयों से माँग सकता हूँ। रुपया तो दिनशा पीटिट दे सकते हैं। परन्तु सब थोड़े ही दे सकते हैं? बहुत पारसी परिवार मुश्किल से पेट भर सकते हैं। शायद ही गुजारा जुटा सकते हैं। उनसे भी मैं ले सकता हूँ। युवक थोड़े ही करोड़पति हैं? परन्तु वे करोड़ से भी अधिक दे सकते हैं। ये जवान मिल का कपड़ा पहनकर अपना शौक पूरा कर लें, तो वे दान नहीं देते। मगर वे खादी पहनें, तो दान देते हैं। ऐसा करके गरीब बहनों की जेब में दो-चार पैसे डालते हैं। एक गज खादी के छह आने दें, तब महँगी होने पर भी उसमें से चार आने गरीब को देते हैं। गरीब यानी कैसे गरीब? ऐसे कि जिन्हें खाने को नहीं मिलता। आपको मछली, पनीर और मांस मिलता है। कुछ को तो शराब भी मिलती है। परन्तु धन से मिलनेवाले में और मन से मिलनेवाले में फर्क है। इस देश में ऐसे गरीब लोग हैं, जिन्हें रोटी भी नहीं मिलती। इन लोगों को बाजरे की रोटी और नमक मिले और कभी-कभी घी या तेल चुपड़ सकें, इतना आप करना चाहें तो जरूर खादी लेंगी। आजकल मैं भारत में भ्रमण कर रहा हूँ। काठियावाड़ में देखा है कि लोग दो-दो मील चलकर पूनियाँ लेने आते हैं। अमरेली खादी कार्यालय से पूनियाँ ले जाते हैं और सूत लाते हैं। इसमें रोज के पाँच पैसे मिलते हैं। जिन बहनों के रहने को घर-बार नहीं और इसलिए रास्ते पर पड़ी रहना पड़ता है, उनके लिए तो ये पाँच पैसे

पाँच रुपये के बराबर हैं। काठियावाड़ जैसे सूखे वीरान प्रदेश में चार पैसे चार रुपये के बराबर हैं। आप खादी पहनें, तो यह रकम उनके घर में जायगी। ढेढ़ बम्बई जाकर पाखाने साफ करते हैं—आपको यह पुसाये तो आपसे कहता हूँ कि आप भी नाम लिखाइए। परन्तु यदि न पुसाये तो आपको मुझसे काठियावाड़ की खादी लेनी चाहिए। खादी का यह हिसाब है। प्रत्येक नवयुवक समझ ले कि खादी पहनकर वह दान करता है। ऐसा सरल सादा धर्म भारत को बताया है। यह लंबी बात तो आपको सजाकर कही है।

"अब दूसरी बात शराब की। यह बात आपसे कहना बहुत कठिन है, क्योंकि इससे कुछ को आजीविका मिलती है। रुस्तमजी को भी मुश्किल से समझा सका कि धर्म के लिए शराब नहीं पी सकते। वह आदमी तो सिंह जैसा था। उनके जैसे और नहीं देखे। परन्तु वे भी डिग गये। शराब कई बार छोड़कर फिर पीने लगे। यह मैंने उनके लड़के से सुना और उन्हें लिखा। परन्तु कितना लिखता? जिसे मैं अपने सगे भाई से ज्यादा मानता, उसकी मैंने आपसे बात की। उनसे मैं शराब नहीं छुड़ा सका, तो आपसे शराब छुड़वाने की बहुत आशा कैसे रखी जाय? मैं चाहता हूँ कि पारसी कौम खुशहाल रहे। पीटिट और रेडीमनी की फसल हमेशा नहीं पकती। टाटा कितनी बड़ी कठिनाई में है? ईश्वर उन्हें आज की उनकी कठिनाई में से बचा ले। परन्तु आप चेत जायँ। जिस जाति में गंदगी घुस जाय, उसमें ऐसी फसल हमेशा नहीं होती। बुजुर्ग पारसी सादगी से रहते थे। परन्तु आज शान-शौकत बढ़ गयी है। गरीबों के खर्च बढ़ गये। मुझसे एक गरीब बहन ने कहा कि मेरे घर में आलमारी चाहिए! ७५ रुपये की! वह कहती है कि इसके बिना काम नहीं चलता। इस प्रकार आवश्यकताएँ बढ़ गयीं। परन्तु कंगाल भारत में ये सब जरूरतें पूरी करना मुश्किल है। जो चीज गरीब को न मिले, उसका उपयोग हमें कम-से-कम करना चाहिए।

"शराब का स्वास्थ्य की दृष्टि से कोई उपयोग नहीं है। उसे पीकर पागल होकर नशे में चूर बने हुए मैंने देखे हैं। वे पागल बनकर माँ-बहन का फर्क नहीं जानते। सबका यही हाल है। मैं दामान का एक नाटक देखने गया था। मुझे नाटक देखने का बड़ा शौक था। यह ४० वर्ष पहले की बात है। इसका पहला दृश्य शुरू होने पर शराब का गीत आता है। उसमें बताया गया है कि एक छोटी-सी प्याली से कितना नुकसान होता है। मैं वह दैवी संदेश सुनाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हरएक पारसी बहन और भाई शराब छोड़ें। शराब का व्यापार भी छोड़ें। मैं जानता हूँ कि व्यापार छोड़ना बड़ा मुश्किल है। बहुत-से हिन्दू विलायती कपड़े का व्यापार नहीं छोड़ते। परन्तु आपके लिए यह कठिन नहीं है, क्योंकि आपमें साहस है, ज्ञान है, विद्या है और ईश्वर का डर है। पारसी जाति छोटी-सी है, इसलिए उसमें सुधार करना आसान बात है। इसलिए आपके सामने यह बात रख रहा हूँ।

जब मैं शराब की दुकान पर पारसी भाई-बहन को देखता हूँ, तब मेरा हृदय रोता है। इस जाति को यह शोभा नहीं देता। इसलिए जितना सुधार हो, उतना करें। मैं चाहता हूँ कि यह सुधार नवसारी से शुरू हो। और तो क्या कहूँ? ईश्वर से इतनी प्रार्थना करता हूँ कि वह पारसियों को हमेशा खुशहाल रखे और हमारे और उनके बीच निरंतर संबंध सदा बढ़ता रहे।"

गणदेवी में हुई सभा को सम्बोधन करते हुए बोले:

"आपके मानपत्र और सूत के हार के लिए आपका आभार मानता हूँ। चार-पाँच वर्ष से मैं एक ही संदेश दे रहा हूँ। मैं एक ही कार्यक्रम लोगों के समक्ष रख रहा हूँ। पूछा जाता है कि दूसरी चीज़ क्यों नहीं रखता। इसका एक ही उत्तर है। मुझे और कुछ आता ही नहीं। इच्छा भी नहीं है। हिन्दू-मुसलमानों में एकदिली होनी चाहिए। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी सब भारत को अपना मुल्क मानते हैं और मानने को तैयार हैं। इन सबके बीच एकदिली होना जरूरी है। उसके बिना स्वराज असंभव मानता हूँ। हम अंत्यजों को अस्पृश्य मानेंगे, तब तक भारत का और हिन्दू-धर्म का उद्धार नहीं होगा। हममें गरीबों के लिए जरा भी दया हो, चिन्ता हो, यदि हम भारत की आर्थिक स्थिति सुधारना चाहते हों, यदि हम करोड़ों के लिए स्वराज चाहते हों, तो यह सब चरखे के बिना असंभव है। इसीलिए मैं कहता आया हूँ कि आप भारत के करोड़ों के लिए अधिक नहीं तो कम-से-कम आधा घंटा दीजिए। ईश्वर का नाम लेकर चरखा चलाइए। हम विदेशी अथवा मिल के कपड़ों में लिपटे रहते हैं। ये कपड़े पहनकर भी नंगे हैं। मद्य-निषेध के बारे में मुझे इतना ही कहना है कि बड़ौदा सरकार के हाथों बहुत-से अच्छे काम हुए हैं। परन्तु मैं चाहता हूँ कि इस राज्य में ऐसा होना चाहिए कि किसीको शराब की बूँद भी न मिले और किसीको भी शराब बनाने या बेचने के परवाने न मिलें। मद्यपान महाराक्षसी व्यसन है। जो इस बुरी आदत में फँसे हुए हैं, उन्हें इसमें से बचा लेना हमारा काम है। इसलिए आपसे—गणदेवी के भाइयों और बहनों से—मैं इतनी-सी बात चाहता हूँ।"

अमलसाड़ की आम सभा में बोले:

"आप कोई नया संदेश सुन सकें, ऐसा मेरे पास कुछ नहीं है। जेल से छूटने के बाद सारे भारत में खादी, अस्पृश्यता-निवारण और शराब-बंदी वगैरह बातें करता रहा हूँ। इस पुकार से कुछ ऊब गये हैं और ऐसा मानते हैं कि मैंने अब हद कर दी है।

"परन्तु जब तक अधिकांश लोग खादी न पहनने लगें, तब तक इस प्रकार पुकारे बिना काम नहीं चलता। सादगी ग्रहण करने के मेरे फेरबदल कितने ही वर्षों से हो रहे हैं। भारत आने के बाद इसमें कुछ प्रगति

हुई है। मैं जब आया, तब सारे भारत के लिए आवश्यक खादी उत्पन्न नहीं होती थी। मुझे यह भी पता नहीं लगा था कि मान लीजिए, सारी मिलें जमींदोज हो जायँ, तो हाथ-कताई की क्रिया इतनी मौजूद है कि हम चाहें तो सारे भारत को हाथ-कताई से ढँक सकें। परन्तु आज लगता है कि ऐसी स्थिति है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। इसका कारण यह मेरे पास रखी हुई तकली है। पूरी खादी तैयार करने के लिए जितने चरखे चाहिए, उतने झटपट तैयार न हों, यह सम्भव है। मैं तो कहता हूँ कि कपड़ों की इतनी तंगी हो जाय तो भारत के तमाम बढ़ई चरखे बनाने लगें, तो एक महीने में सारा काम हो जाय। परन्तु तकली तो ऐसी चीज है कि उसे दूसरे से बनवाने की भी जरूरत नहीं होती। बाँस की डंडी और ठीकरे की चक्री—इन दो चीजों से भी काम चल जाता है। ये सब बातें हम करें।

"परन्तु इसके लिए इच्छा होनी चाहिए। तंगी का समय हो, तो हम अवश्य करें। हमें गर्मी में कम कपड़े चाहिए और दूसरी ऋतुओं में ही अधिक चाहिए। हमारे पास ये सुविधाएँ और साधन हैं, फिर भी हमें इच्छा नहीं होती। यह इच्छा इसलिए नहीं होती कि हम पर आलस्य सवार हो गया है; और भ्रम है कि खादी हमें शोभा नहीं देती और चुभती है। परन्तु शोभा देना गुण पर निर्भर है और करना मन पर निर्भर है। मन को समझा लें तो खादी का भार नहीं लगता, और खूब मोटी हो तो भी चुभती नहीं। बच्चा अत्यन्त कुरुप हो तो भी उसकी माँ को तो सुन्दर ही लगता है। ईश्वर ने ऐसी मोहिनी पैदा न की होती तो प्रत्येक माता दूसरे के बच्चों की ईर्ष्या करती और अपनों को मार डालती। परन्तु सच्ची माता तो अपनों को मारने के बजाय प्रेम से भरती है। यही प्रेम खादी के लिए चाहिए। खादी के लिए माता का प्रेम चाहिए—साधारण प्रेम काम नहीं दे सकता। और प्रेम देश के लिए भी चाहिए। हमें समझना चाहिए कि खादी तो अन्नपूर्णा है। यह धर्म सामान्य ही नहीं, परमधर्म है। यह धर्म न समझ सकें, तो इससे अधिक सूक्ष्म धर्म नहीं समझ सकते और न पालन करेंगे। आप बहनें कातने लग जाइए। भाइयों से कहूँगा कि खादी के आलावा दूसरे कपड़े की बनी सफेद-से-सफेद टोपी हो तो भी मेरे खयाल से वह त्याज्य है। अपने खादी का धर्म समझा हो, तो पैर से सिर तक खादी ही पहनें। सुन्दर और एक-सा सूत कातें। रोज आधा घंटा भी इसके लिए निकालें।

"यह हुई एक बात। अब दूसरी बात। वह है अंत्यजों संबंधी प्रश्न। यह भी भारत में उतना ही जरूरी है और जैसे-जैसे समय बीत रहा है, वैसे-वैसे अधिकाधिक जरूरी बनता जा रहा है। किसी भी मनुष्य को, चाहे वह किसी भी स्थिति में पैदा हुआ हो, तो भी अस्पृश्य मानेंगे, तो हमें लांछन लगेगा। अस्पृश्यता शास्त्र-विहित हो, तो हिन्दू-धर्म का लोप होनेवाला है। दुनिया प्रत्येक धर्म को कसौटी पर कस रही है, सिद्धांत के पैमाने से

नाप रही है। यदि अस्पृश्यता नहीं मिटायेंगे, तो सिद्धान्त के मापदण्ड से तो हिन्दू-धर्म जरूर फेंक दिया जायगा। यह न मानिए कि अंत्यजों के स्पर्श से भ्रष्ट हो जायँगे। मैं नहीं कहता कि अंत्यज कितना ही गंदा हो, तो भी उसे छूना ही चाहिए। सारे अंत्यज गंदे नहीं होते। राम-नाम लेनेवाले स्वच्छ अंत्यज भी होते हैं। उन्हें न छूने को मैं राक्षसी बरताव कहता हूँ। यह न वैष्णव-धर्म में है, न किसी भी धर्म में।

"हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के मामले में मुझे आशा है कि हम थोड़े समय में लाठी से या किसी भी तरह लड़कर या शान्त होकर बैठ जायँगे। समझकर नहीं, तो लड़कर साथ रहेंगे।"

"अब शराब की बात। इस प्रदेश में शराब का व्यसन बहुत है। कोली दुबले तो बहुत पीते हैं, यह मैं दक्षिण-अफ्रीका में था, तब से जानता हूँ। परन्तु उच्च वर्णवाले भी छिपकर और कुछ उद्धतता से पीते हैं। यहाँ आते हुए रास्ते में शराब की दुकान पड़ी और मैंने आह भरी। अरे जीव, मेरे नसीब में ऐसी दुकानें देखना बदा है! सरकार शराब बंद कर दे—कर सकती है। परन्तु उसकी राह देखे बिना जो हमारे हाथ में है, वह भी हम क्यों न करें? हमीं वहाँ न जायँ, तो? दुकानवाला हम पर उपकार करने के लिए दुकान नहीं चलाता। हम प्रत्येक वस्तु के बारे में अच्छे हो जायँ, तो भारत का भला ही होगा।"

सूपा गुरुकुल में[१] भाषण देते हुए बोले:

"पिछली बार मेरा यहाँ आने का निश्चय हो गया था, परन्तु आ न सका था। आज आया हूँ, मगर मेरी आवाज से आप देख सकते होंगे कि मैं जोर से और देर तक नहीं बोल सकता। मैं चार-पाँच दिन से बीमार हो गया हूँ और भ्रमण के लायक नहीं रहा। परन्तु बहुतों को आशा दिलाई हुई थी, इसलिए ऐसा विचार था कि शरीर जितना काम दे, उतना उससे लेना चाहिए। परन्तु स्वास्थ्य अच्छा नहीं, इसलिए भागना पड़ेगा। नहीं तो यहाँ कुछ समय बिताकर आपका परिचय करके जाता।

"बालकों को देखकर आनन्द हुआ। यहाँ मुझे मानपत्र देने की जरूरत हो ही नहीं सकती। मेरा यहाँ आना आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। ऐसे एक-दो ही गुरुकुल होंगे, जहाँ मैं नहीं गया हूँ। कांगड़ी गुरुकुल तमाम गुरुकुलों का पिता है। वहाँ कई बार हो आया हूँ। स्वामीजी[२] के साथ मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है। ठेठ सन् १९०८ से है—दक्षिण-अफ्रीका की लड़ाई के समय का है। उस समय में स्वामीजी से मिला नहीं था। परन्तु उनके ब्रह्मचारियों ने जो काम किया था, उसकी सूची उन्होंने भेजी थी। तब से जो सम्बन्ध स्थापित हुआ, वह आज तक अखण्डित रूप में जारी रहा है। आर्यसमाज के सिलसिले में मेरी कलम से कोई आलोचना देखी हो,

तो भ्रमित न होइए; क्योंकि मेरी आलोचना प्रेममय होती है, ऐसी मेरी आत्मा गवाही देती है। मेरा गुरुकुल के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध है—ऐसा है, जो तोड़ने से भी न टूटे। कांगड़ी गुरुकुल के विद्यार्थियों ने जो काम किया था, उसकी बात कहूँ। वह काम क्या था, जिससे हमारे बीच गहरा सम्बन्ध हुआ था?

"जब दक्षिण-अफ्रीका में सत्याग्रही जेल जा रहे थे, तब भारत से रुपये की वर्षा हो रही थी। उस समय सत्याग्रह नयी चीज थी। किसीके खयाल में नहीं आता था कि जो भारतीय ज्यादातर अज्ञानी हों, वे गोरों के साथ जूझेंगे और जेल में जायँगे। परन्तु वे गये। और यहाँ भारत के हृदय पर चोट लगी और सर्वत्र चंदे शुरू हो गये। ब्रह्मचारी विचार में पड़ गये कि क्या किया जाय। उनके पास रुपया तो होता ही नहीं। रुपया हो, तो ब्रह्मचारी न कहलायें। वे सब स्वामीजी के पास गये। उन्होंने कहा कि तुम मेहनत करो। वहाँ एक बाँध बन रहा था। स्वामीजी ने पत्र लिखा कि मजदूरी देकर हमारे ब्रह्मचारियों से काम लीजिए। जिस आदमी के हाथ में काम देना था, वह खुश हुआ। उसने मजदूरों की अपेक्षा इन्हें कुछ ज्यादा देने की सूचना दी, इसलिए विद्यार्थी मुस्कुराये। उन्हें तो रुपया अफ्रीका भेजना था। मजदूरों के जो नायक थे, उन्हें लगा कि बालकों को दो पैसे अधिक देंगे तो अच्छा। एक-दो दिन गये। ब्रह्मचारियों ने दूसरे मजदूरों से अधिक काम किया। मुखिया भी घबराया कि इस प्रकार अधिक समय तक नहीं चलेगा। परन्तु बालक अन्त तक थके ही नहीं। आरंभ में जो शक्ति रखी थी, वह अन्त तक दिखायी। मैं कहता हूँ कि तुम भी ऐसा करो। देश के लिए शरीर-यज्ञ करो। दूसरों के भले के लिए किया हुआ काम यज्ञ कहलाता है। उन ब्रह्मचारियों ने जैसा शरीर-यज्ञ किया, वैसा यज्ञ तुम देश के लिए करो। बुजुर्गों से बहुत काम न होता हो, तो कुदाली लें या पाखाने साफ करें।

"कांगड़ी गुरुकुल की कथा सुनी है? (यदि कथा न सुनी हो तो तुम्हारे आचार्य को पदच्युत करना चाहिए) वहाँ तो गंगा का प्रबल प्रवाह है। वहाँ बाघ-चीते रहते थे। घना जंगल था। स्वामीजी पहाड़ जैसे। तुम्हारे जैसे लड़के एक पर एक चढ़ें, तब मुश्किल से उनके कान तक पहुँच सकें। वे तुम्हारे जैसे लड़कों को ले गये और उनसे सारा काम कराया। अब भी वहाँ चीते रहते जरूर हैं। परन्तु ये सब तो चीतों से भी डरनेवाले नहीं थे। इस प्रकार गुरुकुल बसाया। गुरुकुल को सजाने में स्वार्थ जरूर है; परन्तु इसमें भी परमार्थ निहित है। शारीरिक के साथ मानसिक यज्ञ भी करना चाहिए। मन को विकसित करना चाहिए। रुपया जमा करने के लिए नहीं, परन्तु देश-सेवा करने के लिए। आत्मयज्ञ भी देश-सेवा के लिए ही हो। हममें जो कुछ विभूति हो, उस सबका यज्ञ देश के लिए और धर्म के लिए करें। इस प्रकार हम विविध यज्ञ करें। २५ वर्ष तक तो ब्रह्मचारी रहना ही चाहिए। तब तक विकार पैदा हो ही नहीं, ऐसी शिक्षा जिस संस्था में न दी जाय, वह गुरुकुल नहीं कहलाता।

बालक और संन्यासी एक कहलाते हैं। बालक स्वाभाविक रूप में माता के दूध के साथ ब्रह्मचर्य पीते हैं—संयम पीते हैं। परन्तु आमरण ब्रह्मचर्य न रख सकें तो उसके लिए गृहस्थाश्रम की योजना है। इसका पालन भी संयम से किया जाय। मेरी इच्छा है और आशीर्वाद है कि तुम संयम से जीवन बिताना सीखो।"

---

१. ता. १६-४-१९२५।

२. स्वामी श्रद्धानन्द ।

एक अपूर्व अनुभव तो सीसोदरा में हुआ—उसी गाँव में, जहाँ सन् १९२० में ९० मन सूत का ढेर पहले-पहल देखा था।

मांगरोल में मतांधता में डूबे हुए सनातनी दिखाई दिये, तो सीसोदरा में शुद्ध षट्कर्म करनेवाले ब्राह्मण भाई केशवराम के दर्शन हुए। अंत्यजों को अपने घर में आने देते थे। वे गांधीजी को वह दृश्य दिखाने के लिए ले गये।

ये भाई और इनका परिवार हाथ से कातकर कपड़े पहनते हैं और अछूतों को गले लगाते हैं। बहनें तो इनके घर में कोई पढ़ी-लिखी नहीं, परन्तु उनके हृदय दया से पूर्ण हैं। इन भाई की माताजी से पूछा: "आपको जाति-बाहर कर देंगे तो?" उत्तर मिला: "भले ही कर दें। अकेले रहेंगे।" "आप इन्हें आगे की बैठक में ही बैठने देती हैं या पिछले दरवाजे में भी जाने देती हैं?" "हाँ, जरूर, पिछले दरवाजे तक जाने देते हैं।" इस जवाब में दृढ़ता थी, नम्रता थी।

इस कुटुम्ब को देखकर निरुत्साही में उत्साह आये बिना नहीं रहता, निष्प्राण में प्राण आये बिना नहीं रहता। आज के कथित निराशा के जमाने में इस हद तक आत्मशुद्धि को ले जानेवाले वीर ब्राह्मण भी विद्यमान हैं, यह देखकर किसका हृदय प्रसन्न नहीं होगा? असहयोग और आत्मशुद्धि के अंगों में जैसे कच्चों की श्रद्धा आज घटती जा रही है, वैसे पक्के और पूरे रंगे हुए अकल्पित हद तक आगे बढ़ रहे हैं। आशा और चेतना की चिंगारी इस प्रकार मनुष्य को अकल्पित अनजान स्थानों से मिल जाती है। उस ब्राह्मण-परिवार की निर्भयता और कर्तव्यपरायणता देखकर हम धन्य हुए, उस ब्राह्मण ने आज ब्राह्मण-धर्म की बड़ी सेवा की है।

नवसारी अंत्यज आश्रम को देखकर वहाँ प्रवचन करते हुए बोले:

"तुम्हारा दोहरा कर्तव्य है। तुम्हारी अंत्यजों की सेवा करने की जिम्मेदारी है। तुम सब बालक हो और आम तौर पर बालक गैर-जिम्मेदार माने जाते हैं और शिक्षक या व्यवस्थापक जैसे चलायें, वैसे चलते रहते हैं। परन्तु यह नियम तुम पर लागू नहीं होता। तुम बच्चे होने पर भी बड़े हो। मेरे साथ लक्ष्मी है। इससे मैं कहता हूँ, बहन, देख, तेरे पर बड़ी जिम्मेदारी है। तुझ पर से सबकी परीक्षा होगी। जो संसार इस समय अंत्यजों को दबा रहा है, उसे बताना है कि अंत्यजों और दूसरों में कोई भेद नहीं है। अच्छे-बुरे दोनों में हैं। यह एक चीज है, परन्तु हिन्दू-समाज नहीं मानता। उससे मनवाने का एक साधन यह आश्रम है। इससे अस्पृश्यता का सवाल एक हद तक हल होता है। बालक क्या करें? तुम न खाने की चीज मत खाओ। अपने मन में से भी उसकी बात निकाल डालो। जिसे बुरा खाने की आदत पड़ जाती है, उसके पास अच्छी चीज आये, तो भी उसे वह अच्छी नहीं लगती। जान-बूझकर साफ रहना तुम्हारा धर्म है। दाँत खूब साफ किया करो। दाँत दूध जैसे उजले हों। आँख-नाक साफ रखो। बिस्तर से उठते ही राम-नाम लेने लगो। आसपास की हवा साफ रखो। भीतर की सफाई रखो और सच बोलो।"

नवसारी में दूसरे कार्यक्रम भी अपने-आप बन गए। गांधीजी के उपवास के समय खास जशन करनेवाले नवसारी के पारसी अभी नवसारी में बन रही भव्य अगियारी में गांधीजी के चरण न रखायें, तो उन्हें कैसे संतोष हो? और नगर-पालिकाओं के मानपत्र तो सन् १९२०-१९२१ के जमाने में होनेवाली हड़तालों जैसे साधारण हो गए हैं। 'साधारण' कहकर मैं उनका मूल्य घटाना नहीं चाहता। सभी शुभ प्रवृत्तियाँ—खादी जैसे—'साधारण' हो जाएँ, तो चाहने को रह ही क्या जाता है? इस मानपत्र का उत्तर गांधीजी ने विनय, विवेक और प्रेम से नवसारी की नगरपालिका की आलोचना करके दिया:

"मानपत्र के प्रेमभरे शब्दों के लिए आपका आभार मानता हूँ। अंत्यजों के उद्धार के मामले में महाराजा साहब द्वारा किए गए प्रयत्नों के बारे में आपने जो लिखा है, वह यथार्थ है। इसके लिए जितना धन्यवाद दिया जाए, उतना थोड़ा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि आपको भी इस मामले में बहुत करना अभी बाकी है। इसके लिए मैं अपने को भंगी बताता हूँ। इन लोगों की सेवा करना मैंने परमधर्म माना है। और मैं मानता हूँ कि जब तक हम अंत्यजों की स्थिति नहीं सुधार सकेंगे, तब तक हिन्दू-धर्म पर कलंक रहेगा। मैं मानता हूँ कि इस मामले में इस शहर में आप यथाशक्ति प्रयास कर रहे हैं। मैं अंत्यज आश्रम हो आया। जहाँ-जहाँ बड़ौदा के गाँवों में गया हूँ, वहीं अंत्यजों की स्थिति अच्छी पायी है। परन्तु मेरी दृष्टि में तो आप जितना करेंगे, उतना थोड़ा लगेगा। मैं चाहता हूँ कि आपको भी ऐसा ही लगे। इनकी सेवा में कोई भी नगरपालिका भूल करे, तो मेरी मान्यता के अनुसार

उसकी सेवा अधूरी मानी जायगी। मैंने कई बार कहा है कि राजनीति में फँसना मेरे भाग्य में न बदा होता, तो भारत के किसी भी—कोने में—अहमदाबाद में, नगरपालिका में—अपना स्थान प्राप्त करके शान्त जीवन बिताता। नगरपालिका में रहकर नालियाँ, पाखाने, रास्ते साफ रखें और यह देखें कि साफ दूध मिलता है या नहीं। यह सब हो तो इसमें भारत के सुख और स्वराज्य की कुंजी है।

"दो दिन से मैं नवसारी को देख रहा हूँ। आया तब बीमार था, अब भी हूँ। सख्त बुखार आया था। दो बहनों ने कहा कि नवसारी में मलेरिया बढ़ेगा, क्योंकि यह मच्छरों का घर है। अनुभव से यह बात सही साबित हुई। पहले आथा, तब एक रात रहा था। तब सीधा अकाश के नीचे सोया था। इसलिए मुझे मच्छरों का पता नहीं चला होगा। वैसे इस बार मैं नवसारी में फिरा नहीं। इस पैमाने से नवसारी को प्रमाण-पत्र देना चाहिए। परन्तु अभी तो मुझे ऐसा लगता है कि जैसा देना चाहता हूँ, वैसा तो नहीं दिया जा सकता। आपके प्रेमभरे मानपत्र के उत्तर में मैं यह न सुझाऊँ, तो कौन सुझाये? विनय, विवेक, नम्रता का तकाजा है कि मुझे आपको यह बताना ही चाहिए। मैं यहाँ घूमा, तब मुझे त्रावणकोर और त्रिवेन्द्रम् याद आये। रास्तों की व्यवस्था जैसी वहाँ देखी, वैसी और कहीं नहीं देखी। त्रिवेन्द्रम् में रास्ते बड़िया थे, गलियाँ साफ थीं। यहाँ नालियों के बारे में बहुत करना बाकी है। कुछ मुहल्लों में बहुत अच्छी व्यवस्था होने से वहाँ दुर्गन्ध न आये तो अच्छी बात है, परन्तु नगरपालिका की कसौटी तो गरीब-से-गरीब मुहल्ले पर आधारित होती है। मगर आजकल तो गंदगी मध्यम वर्ग के मुहल्लों में भी पायी जाती है। परन्तु यह बात नवसारी पर ही लागू नहीं होती। अन्यत्र भी यही हाल है।

"पश्चिम से यों तो बहुत कम सीखने का है, मगर नगरपालिका के मामले में बहुत सीखने का है। मैंने पश्चिम के घर और गाँव देखे हैं। और वहाँ की नगर-पालिका पर मैं मुग्ध हूँ। उसकी रचना और व्यवस्था इतनी सुन्दर है कि चाहे जैसा रोग फूट निकले, तो भी उसे वह इतनी दृढ़ता और साहस से नष्ट कर सकती है कि वह दुबारा नहीं आता। जोहानिस्बर्ग में काला ज्वर फूट निकला था। उसमें बहुत थोड़े बीमार जिये थे। तब नगरपालिका ने पानी की तरह रुपया बहाया। वहाँ की सुन्दर मंडी को—१४,००० पौण्ड की कीमत की मंडी को—जला डालने में नगरपालिका को संकोच नहीं हुआ। वहाँ लोकेशन था। हमने जैसा ढेढ़ मुहल्ला बनाया है, वैसा वहाँ के लोगों ने हमारे लिए मुहल्ला बनाया हुआ है—वह लोकेशन कहलाता है। मरी इसी जगह फूट निकली थी। इस लोकेशन को जब आग लगायी गयी, तब इसे जलाने में मैं सहमत था। इसके परिणामस्वरूप जोहानिस्बर्ग में मरी फैलने न पायी और आज तक दिखाई नहीं दी। ग्लासगो की नगरपालिका का भी यही इतिहास है। मुहल्ले-मुहल्ले सफाई रखना सिखाया जाता है। नहीं तो ग्लासगो में रहना मुश्किल हो जाय।

"नवसारी पहले शहरों में से एक है। यह पारसी भाइयों का केन्द्र है। इसमें बुराई हो, यह मुझे खटकता ही रहता है। इसलिए आपका ध्यान नवसारी के रास्तों, नालियों, पाखानों वगैरह की तरफ खींचता हूँ। यह चीज ऐसी है, जिसका सुधार हो सकता है। यह चीज मुश्किल नहीं, असंभव नहीं। मैं जानता हूँ, इसमें कुछ कठिनाई तो है, जो आसान से दूर नहीं हो सकती; जिसकी कुछ कीमत होती है, उसे प्राप्त करने में रुपया खर्च करना पड़ता है और जाग्रत भी रहना पड़ता है। आपके पास रुपया, चतुराई, ज्ञान और आँख है। आतशबहराम का बड़ा सुन्दर मकान बन रहा है। ऐसा सारे भारत में दूसरा नहीं होगा। इसके लिए आपको मुबारकबाद देता हूँ। परन्तु यह मुझे क्या बताता है? यह बताता है कि यहाँ रुपये की कमी नहीं है। रुपया आप बाहर से ले सकते हैं। इसका उपयोग करके आप नवसारी को आदर्श बनाइए। जिसे देखने जाना हो, वह आपके यहाँ आये। जैसे इंग्लैंड में लोग ग्लासगो और बर्मिंघम देखने जाते हैं। चेम्बरलेन ने कहा कि मेरी प्रसिद्धि का सारा श्रेय तो बर्मिंघम को है। मैंने यह देखा था। इसमें चेम्बरलेन की कला, साहस और प्रबलता देखी है। बर्मिंघम में गरीब-से-गरीब भाग में भी गन्दगी नहीं है। वहाँ गरीबों के लिए पुस्तकालय भी हैं।

"जो बात मुझे महसूस हुई, वह मैंने विनय, नम्रता और प्रेम से कही है। न कहता तो कृतघ्न होता। मेरी प्रार्थना है कि जिस भाव से मैंने सारे मामलों का जिक्र किया है, उसे आप उसी भाव में लें। आपके सभी स्कूलों में—बालकों के प्रारंभिक और माध्यमिक स्कूलों में—चरखे जारी कीजिए। चरखा आपके और गरीबों के बीच में कड़ी है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे गरीबों और ईश्वर का नाम लेकर आध घण्टा कातें, इतना तो जरूर कीजिए।"

आम सभा का भाषण इससे भी बढ़ गया। लगा कि दो दिन की थकावट यहाँ मिट गयी। और नवसारी के शहरियों को उन्होंने प्रत्येक भारतीय की कर्तव्य-परायणता का अपना बनाया हुआ छोटा-सा मापदण्ड विस्तारपूर्वक बयान किया। यह पैमाना बयान करते हुए भारत के लिए भार-स्वरूप बने हुए उसके मनुष्यों की कंगाली का हू-ब-हू चित्र प्रस्तुत किया और अपनी एक महँगी और चिरस्थायी भेट के रूप में चरखे को पेश किया। देश के दारिद्र्य रोग के वैध के रूप में अपने को बताया और एक ही निदान चरखा बताया और वृद्ध, बालक, राजा और रंक, स्त्री और पुरुष सबसे आधा घंटा माँग लिया। सभा में चंदा जमा किया गया, जिसमें शहर के सूबा साहब ने २५ रुपये दिये! कुल मिलाकर छह-सात सौ रुपये हो गये।

इस प्रकार सूरत जिले में श्रद्धा का तो पार ही नहीं है। परन्तु अभी तक लोग यह नहीं समझे कि इस श्रद्धा का रूप बदलने का समय कभी से आ पहुँचा है। छोटे गाँव में गांधीजी के सामने रुपये के ढेर लग जाते हैं। एक गाँव में ६५० हुए, दूसरे में ४६० हुए, तीसरे में ३०० हुए। इससे गांधीजी के प्रति उनकी प्रीति प्रकट होती

है, इसमें कोई शंका ही नहीं, परन्तु प्रीति इससे भिन्न स्वरूप नहीं लेगी? एक बहन मानता रखने आयी थी। दयालजी भाई ने पूछा: "मानता?" बहन ने भोलेपन से कहा: "हाँ, मेरे लड़के को दर्शन कराकर यह मानता रखनी थी। आज ईश्वर-कृपा से दर्शन हो गये।" "परन्तु गांधीजी को यह मानता नहीं चाहिए, उन्हें तो यह चाहिए कि तुम कातने और खादी पहनने की मानता रखो।" परन्तु यह क्या उस बहन के गले उतरने की बात थी? 'मानता' तो रुपये से ही रखी जाती है, नारियल तोड़कर ही रखी जाती है—खादी पहनकर रखी जाती होगी? परन्तु कोई खाने की चीज छोड़कर बहुत बहनों को मानता रखते देखा है। देश की दरिद्रता और गुलामी छुड़वाने के लिए विदेशी कपड़ा न पहनने की और कातने की मानता रखनेवाली बहनें कैसे बनायी जा सकती हैं?

भड़ौंच में दो ही दिन का कार्यक्रम था। उसे जिस प्रकार डॉ. चंदूलाल ने बनाया था, वैसा ही गांधीजी ने कायम रखा। भड़ौंच के लगभग सभी तालुकों को ले लेने का डॉक्टर का मनोरथ ठीक तरह से सफल हुआ। पहले दिन* सजोद, अंकलेश्वर, झाड़ेश्वर, शुक्लतीर्थ, टवरा और निकोरा—इतने स्थानों पर गांधीजी हो आये।

---

* ता. १७-४-१९२५।

गाँवों के बारे में बोलते हुए मुझे झाड़ेश्वर को नहीं भूलना चाहिए। यह श्री हरिराम अमीन का गाँव है। गांधीजी गये, उस दिन इन्होंने भी ५०१ रुपये और गाँव के लोगों ने सवा दो सौ रुपये रूई के लिए गांधीजी को भेट किये थे। परन्तु हरिभाई और काशीभाई इतना-सा कर दें, तो उससे किसका पेट भरे? ये चाहें तो और सब उपाधि छोड़कर गाँव को हाथ में लेकर बैठ सकते हैं। गाँव में इनकी प्रतिष्ठा भी बड़ी है और गाँव को खादीमय बनाने का काम ये हाथ में ले लें तो ऐसा लगा कि उन्हें अच्छा जवाब मिलेगा।

श्री हरिभाई से इतनी आशा कैसे रखी जा सकती है, यह तो एक दूसरे गाँव की बुढ़िया ने कहा। इसलिए अब उस बुढ़िया की बात पर आता हूँ।

यह बुढ़िया टवरा गाँव की थी। टवरा तो एक चिट्टी उँगली के बराबर नर्मदा के किनारे बसा हुआ गाँव है। और सब गाँवों में मनुष्यों की भीड़ बहुत होती थी, इसलिए उनके साथ बातें करना गांधीजी को अनुकूल नहीं होता था। परन्तु यहाँ तो एक पेड़ के नीचे मुट्ठीभर आदमी शांति से इकट्ठे हुए देखकर गांधीजी ने उनके साथ बातें शुरू कर दीं।

"क्यों, बहनो, मैंने आपका कोई अपराध किया है, जो आप खादी नहीं पहनतीं?"

एक बहन हँसकर बोलीं: "नहीं, नहीं, अपराध आप क्यों करेंगे? हमने ही किया है।"

"तो खादी कब पहनोगी?"

इस पर एक बुढ़िया जरा आह भरकर बोलीं: "श्मशान में लकड़ियाँ पहुँच गयी हैं, तब क्या पहनें?"

"अरे, ऐसा क्यों कहती हैं? मरना तो सभी को है। खादी पहनें और मरें, तब हँसते-हँसते मर जाना क्या बुरा है? खादी नहीं पहनोगी, तो मन में रह जायेगी कि अरे, मैंने इतनी-सी खादी भी नहीं पहनी!"

इस बार तो उसके मुख पर सहज स्मित दिखाई दिया और वह बोली: "अच्छा, तब तो पहनूँगी।"

मर्द तो पास ही बैठे हुए थे। उनसे खादी की बात करके गांधीजी ने पूछा: "तुममें से कोई सचमुच शराब पीता है?"

गांधीजी के पिताजी जैसा बूढ़ा लगनेवाला बड़े गलमुच्छोंवाला एक बूढ़ा बोला: "नहीं, शराब तो कोई नहीं पीता, परन्तु अफीम जरूर लेते हैं।"

"यह टेव छोड़ी नहीं जा सकती?"

बुजुर्ग बोले: "जितने आदी हैं, उतने ही कसुंबा पियें।"

गांधीजी खिलखिलाकर हँसे: "यह तो ठीक ही है। दूसरे क्यों पियें?"

"नहीं, यह नहीं। हम तो बिगड़े, परन्तु जवानों को क्यों बिगड़ेने दें? इसलिए हम जितने आदी हैं, उतने ही पीते हैं। और किसी जवान को नहीं पीने देते।"

"ठीक, ठीक। इतना करो तो भी अच्छा। मैं जानता हूँ कि यह आदत छोड़ना मुश्किल है।"

'औरों को नहीं बिगड़ने देते। और अब अफीम है कहाँ? १५-२० वर्ष में हम भी चले जायँगे और अफीम का नाम भी मिट जायगा!"

अब गांधीजी फिर उस बुढ़िया माँ की तरफ मुड़े: "अच्छा तो खादी पहनोगी न? तुम सबकी तरफ से वचन देती हो न?"

"हाँ, बचन तो दे दूँ, परन्तु मोटी खादी के बजाय पतली मिले और छपवा दें तो जरा ठीक रहे। और छोटी लड़कियाँ तो क्या पहनें? उन्हें तो शादी करके ससुराल जाना है।"

गांधीजी (हँसकर): "ठीक है, ठीक है। देखो न, बारीक खादी तो जब तक तुम बारीक न कातो, तब तक नहीं मिलेगी। वैसे, तुम कातकर दो, तो तुम्हें बुनवा दूँ और छपवा भी दूँ। और तुम ब्याहनेवाली लड़कियों की बातें करती हो, तो तुम्हें एक बात कहूँ। तुम इन हरिभाई अमीन को जानती हो?"

"हाँ। ये तो महात्मा हैं।"

"हाँ, महात्मा तो हैं ही, परन्तु महात्मा से भी बड़े हैं। देखो, इनके भाई की लड़की की शादी कुछ दिन पहले हुई। ये नियमित कातते हैं। जब उसका ब्याह हुआ, तब उसने बारीक सूत कातकर उसकी दो धोटियाँ बनवाकर अपने वर को दी! हरिभाई खुद मोटी खादी पहनते हैं। यह तुम देखती हो? इनके घरवाले सब मोटी खादी पहनते हैं। इनके पास बहुत रुपया है, यह तो तुम जानती हो। फिर भी ये मोटी खादी किसलिए पहनते हैं? देश के लिए, तुम जैसी कातने लगें, इसलिए। अच्छा बताओ, कातोगी और खादी पहनोगी न?"

"हाँ जी, हाँ जी" सब एक साथ बोल उठीं।

ऐसे तमाम गाँवों को श्री हरिभाई चाहें तो चरखे से गुँजा सकते हैं। गुँजायँगे?

१८-४-१९२५

दूसरे दिन समनी, आमोद, जंबुसर, केरवाड़ा वागरा और भड़ौंच को निपटाया।

समनी में बहुत-सी बहनें सूत की मालाएँ लेकर आयी थीं। गांधीजी ने पूछा: “यह सूत तुमने काता है क्या?' बहनों ने सरलता से उत्तर दिया: 'नहीं, पेटलादवाला आया था। हमने चार-चार आने की मालाएँ लीं।' अपने प्रवचन में गांधीजी बोले:

'सूत देखकर मैं तो खुश हो रहा था कि इतना सारा सूत इस गाँव में काता जाता है। परन्तु जब पता लगा कि यह तो खरीदा हुआ है, तब मेरी प्रसन्नता जाती रही। ऐसा करके तुमने मुझे चार आने का सम्मान दिया। इसके बजाय तो तुम इसे खरीदकर खादी बना लो तो अच्छा। तुमने जो सूत लिया है, वह पेटलाद का है—इस गाँव का या जिले का भी नहीं। तुमने चार-चार आने खर्च किये, इसलिए तुम गरीब तो हो ही नहीं, परंतु भारत के अधिक मनुष्य गरीब होकर तुम्हें रुपया देते हैं, क्योंकि धनिकों ने छोटे से और गरीब गाँवों से बहुत धन खींच लिया है।”

आमोद ठाकुर ने ५०१ रुपये रूई खरीदने के लिए दिये। जंबुसर और आमोद की सभाओं में खादी ढूँढने पर भी नहीं मिल सकती थी। अंकलेश्वर में भी ऐसा ही हुआ।

जंबुसर नगरपालिका ने मानपत्र देने का कार्यक्रम रखा था। मानपत्र देने और सभा करने का स्थान एक धर्मशाला में था। उसके स्वरूप देखकर शायद ही कोई मानेगा कि इस स्थान में सभा होगी और गांधीजी को मानपत्र दिया जायगा। आँगन में ढेरों कूड़ा था और दीवार पर हजारों मकड़ी के जालों के तोरण लटक रहे थे! गांधीजी की तबीयत अच्छी होती, तो शायद इन सब बातों पर मीठी चुटकी लेते। वहाँ तो मानपत्र ने उनके सारे भाषण का रंग बदल दिया। मानपत्रों में विशेषणों की कमी नहीं थी। केवल ‘अस्पृश्यता-निवारण’ के निर्देश से उसे अच्छुता रखना था। इसलिए गांधीजी को उसका कड़ा जवाब देना पड़ा।

“अंत्यज भाइयों को भूलने की अपने गलती की है, इससे मुझे दुःख होता है। जहाँ यह छोटा-सा, किंतु जरूरी अंग छोड़ा गया है, वह नगरपालिका नहीं कहलाती। हम अपने भाइयों के साथ कितनी ही हद तक घुलते-मिलते हों, तो भी जहाँ सिद्धांत की बात आती है, वहाँ तिलभर भी आगे नहीं जाते। आपने इस बात को ताक में रख दिया। मुझे मानपत्र देने का अपने मन में अभास रखने के लिए आप इस सत्य को भूल गये। जिसे आप मानपत्र देना चाहते हैं, उसके जीवन के आप इस तरह टुकड़े नहीं कर सकते कि उसमें से एक लेकर

दूसरा छोड़ दिया जाय। मैंने एक मौके पर नहीं, कई मौकों पर कहा है कि अस्पृश्यता-निवारण को मैं अपना पहला धर्म समझता हूँ। जब तक रात-दिन यही बात न करता रहूँ, तब तक मैं अपने को सच्चा हिंदू नहीं मानता। हिंदू-धर्म अस्पृश्यता को कायम रखे तो २२ करोड़ हिंदुओं का नाश है अर्थात् हिंदुस्तान का नाश है। इसलिए यदि यह मानपत्र देनेवाले अस्पृश्यता-निवारण के विरोधी अथवा उसके बारे में उदासीन थे, तो वे यह मानपत्र दे ही नहीं सकते थे। मानपत्र में हृदय के भाव आने चाहिए। मैं कोई अधिकारी या सरदार होता, तो मेरी खुशामद शायद शोभा देती। परंतु मैं न अधिकारी हूँ, न सरदार—मैं तो भंगी हूँ, चमार हूँ, किसान हूँ, नौकर हूँ। ऐसे सेवक को भी मानपत्र दिया जा सकता है, मगर वह तभी, जब आप मेरी सेवा का सबसे बड़ा अंग स्वीकार करते हों। यह बात सच है कि हिंदू-मुसलिम-एकता के बिना स्वराज्य नहीं मिलेगा। परन्तु वे आज आपस में लड़ते हैं तो भी क्या? इससे क्या हिन्दू-धर्म का नाश हो जायगा? लड़-भिड़कर एक दिन हम एक हो जायँगे। खादी-चरखे का नाश हो जाय, तो भी क्या हिन्दू-धर्म का नाश हो जायगा? हाँ, हमारे हाथ के किये हुए कर्म हमें खायेंगे और हम भूख से छटपटाते रहेंगे। परन्तु अस्पृश्यता के नाश के बिना तो हमारा विनाश है, हिन्दू-धर्म का विनाश है, हमें दुनिया के आगे नीचा देखना पड़ेगा, जगत् हमसे पूछेगा और हमारे धर्म की शिक्षा पर हँसेगा।

"यह मानपत्र मानपत्र नहीं, मेरे लिए तो दीपस्तंभ है। आप अस्पृश्यता का त्याग किये बिना मेरे जैसे भंगी को कैसे स्वीकार करेंगे? इसकी अपेक्षा तो आप मुझे कह सकते थे कि हम आपकी अस्पृश्यता की बात नहीं मानते, फिर भी आना हो तो आइए। आपने खादी के विषय में अपनी न्यूनता मंजूर की है, परन्तु जब तक आपने अस्पृश्यता नहीं छोड़ी, तब तक खादी का काम मंद न रहे, तो और क्या हो? और मद्य-निषेध भी आप पाँचवीं-छठी मंजिल पर बैठकर किस तरह कर सकेंगे? तहखाने में गये बिना तहखाने की आग का पता नहीं चलता।"

भड़ौंच में खादी की चर्चा करनेवाले काफी आते थे, दीक्षा लेनेवाले शायद ही कोई आये देखे। लेकिन बोर्ड ने मानपत्र दिया, उसमें गांधीजी के शब्दों में कहूँ तो 'टोकरीभर विशेषण' और महापंडित को चौंकानेवाली भाषा। खादी, अस्पृश्यता-निवारण जैसी प्रवृत्ति तो ऐसी भाषा में आ ही कैसे सकती है?

इस मानपत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी बोले:

"आपने अपने मानपत्र को प्रेम से छलकाकर अप्रस्तुत विशेषणों से भर दिया है। मैं इनके योग्य हूँ या नहीं, यह गलत चीज है। किस तरह जवाब दिया जाय, यह कठिन वस्तु है। आपके कामों में रास्ते साफ करने

और बच्चों को शिक्षा देने का काम आ सकता है। इसमें अत्यंतों के बच्चे भी आ जाते हैं। ये सब सार्वजनिक और छोटे लगते हुए भी बहुत महत्त्व के काम जरूर हैं। परन्तु इनके करने में इन विशेषणों का उपयोग नहीं है। हाँ, आपने कहा होता कि 'आप इनमें आइए, इस काम में दिलचस्पी लीजिए, आपकी समाज-सुधार की प्रवृत्ति हमें पसंद है, आप मजबूरन् अथवा स्वच्छता से राजनीति के काम में न पड़े होते तो कितना अच्छा था!' तो मुझे अच्छा लगता। परन्तु यह मानकर कि आपके मानपत्र में यह वस्तु अध्याहार है, उसका उत्तर दो शब्दों में दूंगा।

"मैं कालवशात् राजनैतिक विषयों में फँसा हुआ हूँ, यद्यपि मित्र कहते हैं कि मैं वहाँ गलत जगह पर हूँ, क्योंकि मैं खादी, मद्य-निषेध वगैरह की बात करता हूँ और इन चीज़ों का राजनैतिक विषयों के साथ बहुत दूर का सम्बन्ध है। परन्तु रास्ते निहायत शुद्ध होने चाहिए, इसका मुझे भान नहीं होगा? रास्तों की हालत देखकर कितने लोकल बोर्ड को गालियाँ देते होंगे, यह मेरा मन जानता है। जितनी मनों धूल मेरे नसीब में आती होगी, उतनी आपके नसीब में नहीं आती होगी। आज तो उसके कष्ट से मैं कायर बन गया हूँ। रास्ते में ही विचार किया कि इस बार में कुछ-न-कुछ कहूँगा। परन्तु मैं कहूँ तो आपकी ओर से उत्तर मिलेगा कि सरकार ने तिजोरी साफ कर डाली है। आप कहें कि मैं लड़ाई करके आपकी तिजोरी भरूँ तो यह जवाब ठीक नहीं होगा। आपको सरकार से जोर देकर कहना चाहिए। रास्ते शुद्ध हों तो आपको, मुझे, सबको कितना सुख मिले? नालियों के बारे में आप कितने जिम्मेदार होंगे, इसका मुझे पता नहीं। और प्रजा अधिकतर किसान है। उन्हें दी जानेवाली शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो किसान-वर्ग को उसके धंधे में काम आये। लिखना-पढ़ना आ जाय, इतने से काम नहीं चलेगा। एक आदमी मुझे कह रहे थे कि इन बच्चों को दिया जानेवाला यह सारा ज्ञान व्यर्थ जाता है। इस सारी शिक्षा का विचार करने का काम शिक्षा-मंत्री का नहीं है। वे अपने मन के भीतर से ऐसी वस्तुएँ नहीं निकाल सकते। इस चीज के लिए आप जितना करें, उतना थोड़ा है। आपके मानपत्र में मेरे लिए जो टोकरीभर विशेषण काम में लिये गये हैं, उनका यही उत्तर हो सकता है।"

भड़ौंच की सार्वजनिक सभा के भाषण में एक-दो बातों की चर्चा गांधीजी को भाई चंदुभाई के भाषण के जवाब में करनी पड़ी।

सभा में प्रवचन करते हुए गांधीजी बोले:

"इस सभा से मेरी यात्रा समाप्त होती है। यहाँ उत्साह का जो आभास लगता है, उसके लिए तीन कारण हो सकते हैं—लोग, कार्यकर्ता और देश की स्थिति। देश में उत्साह न होने के कारण कुछ भी हों। लोग कहें

कि दोष और किसीका नहीं, मेरा ही है, क्योंकि मैंने ऐसा कार्यक्रम रखा, जिसे कोई कर ही न सके, तो मैं यह बात स्वीकार करूँगा, परन्तु मेरे पास दूसरा इलाज नहीं था। बीमार किसी डॉक्टर को बुलायें, डॉक्टर सारे साधन और शस्त्र इस्तेमाल करने को बताये, परन्तु रोगी उन्हें काम में लेने से इनकार करे और फिर डॉक्टर असफल हो जाय, तो क्या हो? फिर भी रोगी डॉक्टर से चिपटा रहने की बात करे। मेरे साथ यही हो रहा है। मेरे साधन आपको नहीं चाहिए; आप मुझे बुलायें, सुनना चाहें, मगर मेरी बात पर अमल करना न चाहें, ऐसी विषम स्थिति है मेरी।

"चंदुलाल ने कहा कि भड़ौंच के लोग प्रेमी हैं। हाँ, प्रेम तो है, परन्तु प्रेम को क्या मैं बेचूँ? भड़ौंच के लोग भले ही प्रेम न रखें, परन्तु सूत मुझ पर फेंकते रहें, चाहे रोष में ही फेंकें, यह मानकर कि यह पागल है, परन्तु इसे सन्तोष देना है, इसलिए कात डालो थोड़ा-सा सूत—तो यह मेरे लिए काफी हो सकता है। मैं सूत-सूत कर रहा हूँ, क्योंकि इससे आनेवाले पैसे हाड़पिजर को मिलेंगे। मांचेस्टर, बम्बई और अहमदाबाद के हिस्सेदारों को नहीं मिलते। उन्हें मेरी जरूरत नहीं है, कंगालों को मेरी आवश्यकता है। हिस्सेदार भले ही हिस्से रखें, परन्तु वे भी सूत कातकर दें। इतना ही नहीं, परन्तु वे समझें कि ऐसा करके उन्होंने भारत के कंगालों के साथ स्नेह की गाँठ बाँधी। मांचेस्टर को भी हमें समझाना है कि तुम हमारे यहाँ कुछ न भेजो, क्योंकि ऐसा करने से यहाँ सत्यानाश हो रहा है।

"मैं तो वैद्य हूँ। यह तो ऐसा देश है कि दो-चार करोड़ मनुष्यों को खाने को न मिले। यह ऐसा देश है कि बाढ़ आ जाय और फसल नष्ट हो जाय या बरसात कम हो, तो भूखमरी शुरू हो जाय। जगन्नाथपुरी में जानेवाले मनुष्य भावुक हैं, प्रेमी हैं। गरीब लोगों के लिए वे सदाव्रत खोलते हैं। वे खुद खराब अनाज नहीं देते, परन्तु बीच के आदमी खा जाते हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि उस गरीब आदमी को भिक्षा में कुछ भी मत दीजिए। उससे काम कराकर अनाज, रुपया दीजिए। परन्तु उसे खेत जोतने को कहें, तो वह इनकार करता है। टोकरी बनाने को कहें, तो वह इनकार करता है। इतने आलसी हैं ये। ऐसे मनुष्य के लिए मैंने चरखा ढूँढ़ा। रेलवे का एक फायदा कहो या जो भी कहो, वह यह है कि सूत के बदले अनाज देनेवाला कोई नहीं मिलता। एक समय ऐसा था कि भारत के कुछ प्रदेशों में रुपये की कीमत ही नहीं थी। उड़ीसा में कितना ही अन्न ले जायँ, परन्तु उसे लेने को वहाँ के गरीब आदमी के पास पैसे नहीं थे। वहाँ के मनुष्य को एक आना मिल जाता, तो वह नाच उठता। ऐसे प्रदेश में चरखा कामधेनु का काम देता है। चरखा हमारी आर्थिक उन्नति की बुनियाद है, उसका केन्द्र है। आज हम अपनी साख खो बैठे हैं और उसके लिए हमें इन लोगों की अनन्य सेवा करनी चाहिए। इसीलिए मैं गाँव-

गाँव जाता हूँ। चरखे की बात कहीं भी करते मुझे न तो लज्जा होती है और न अश्रद्धा। मेरी श्रद्धा तो दिन-दिन गहरी होती जा रही है। कातने का मताधिकार भी मैंने उपर्युक्त हेतु से ही सुझाया था। आज न कातनेवाले कांग्रेस में न आयें, तो कांग्रेस की नाव डूब नहीं जायगी। उसमें भले ही पाँच-दस हजार आदमी ही आयें। इनके द्वारा मैं देश का आर्थिक हल करा सकूँगा। परन्तु जिन्हें देश की आर्थिक स्थिति को समझ नहीं, ऐसे करोड़ से मैं कुछ नहीं कर सकता। वे मेरे लिए निकम्मे हैं।

"इसलिए कहता हूँ कि आप कातें, कातकर कांग्रेस के सदस्य बनें, अथवा रुई खरीदकर कातें। हमें अपनी अनाज माफिक न आये, तो हमारा सत्यानाश हो जाय। इसी तरह हम अपनी रूई न कातें, तो भी सत्यानाश हो जाय। परन्तु हम तो जहाँ रूई पैदा नहीं होतीं, वहाँ रूई भेजते हैं और वहाँ बने हुए कपड़े मँगवाते हैं। यह तो कितनी शोचनीय स्थिति है? हम अपनी बुद्धि को जाग्रत करें, तो समझ सकते हैं कि खादी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। किसे पता था कि ८० नंबर का सूत गुजरात में काता जाता है? आज हाथ से कातकर पहननेवाले कितने ही गुजराती विद्यमान हैं! वे अपनी ही कपड़े पहनकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं।

"अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म में महापाप है। हिन्दू-मुसलमान लड़ें और स्वराज्य मिले, यह असंभव बात है। फिर भी मैं निश्चिन्त हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि दोनों लड़कर फिर इकट्ठे होंगे। जो सलाह से नहीं करेंगे, वह हारकर करेंगे।"

काठियावाड़ और सूरत तथा भड़ौंच जिलों का गांधीजी का प्रवासक्रम देखकर मन में खयाल आ गया कि हम जितना काम (जिस प्रकार का काम कहने की तो जरूरत ही नहीं, परन्तु जितने समय का काम) गांधीजी से लेते हैं, उसके छोटे-से हिस्से के बराबर भी काम हम करते हों तो? सब गाँवों में उत्साह की कोई कमी नहीं थी। खादी-प्रचार की दृष्टि से शायद जलालपुर और वारडोली तालुके इन सब तालुकों से चढ़कर हों। परन्तु गांधीजी का सत्कार करने में गाँवों ने हद कर दी। आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि कसबा और तालुके के गाँवों से छोटे गाँवों में अधिक जागृति प्रकट हुई। सजोद जैसा छोटा-सा गाँव ध्यान खींचने योग्य है। वहाँ नाथा पटेल नाम के एक बड़े किसान हैं। वे अपना कातते हैं और अपना बुनवाकर पहनते हैं। रूई के लिए उन्होंने घड़ीभर में साढ़े तीन सौ रुपये इकट्ठे कर दिए। शुक्लतीर्थ से डॉक्टर ने स्वयं कोई बड़ी आशा नहीं रखी थी। वहाँ गांधीजी गये, उससे पहले लोगों ने पाँच सौ रुपये तैयार रखे थे और गांधीजी के आगे देखते-देखते छह सौ रुपये एकत्र कर लिये। दूसरे गाँवों और भड़ौंच शहर के मिलाकर कुल सात हजार रुपये हुए। अनायास

जमा हुई यह रकम अच्छी कही जा सकती है। इसकी रूई लेकर उसे लोगों में बाँटा जाय और उसकी पूनियाँ कतवा और बुनवाकर देने में कार्यकर्ताओं का सारा समय इस वर्ष में लगे, तो आश्चर्य नहीं है। परन्तु इसकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था करके ही हम लोगों का अधिक विश्वास प्राप्त कर सकेंगे।

परन्तु इस सात हजार की रकम में ध्यान खींचनेवाली दो रकमें, आमोद के ठाकुर साहब के और केरवाड़ा के ठाकुर साहब के प्रत्येक के पाँच सौ एक रुपये की हैं। दोनों ठाकुर साहबों ने गांधीजी को अपने यहाँ निमन्त्रण दिया और जब उन्हें रूई जमा करने का हेतु समझाया गया, तब उन्होंने बहुत आनंद से उपर्युक्त रकमें अदा कीं। बड़े-बड़े जमींदार और तालकेदार तथा देशी राज्यों के राजा इन ठाकुर साहबों का उदाहरण लेकर खादी-कार्य के साथ अपनी सहानुभूति दिखा सकते हैं।

जलालपुर तालुके के गाँवों में खादी काफी देखी गयी और मैं यह मानता हूँ कि वहाँ जो सूत लाती थी, वह अपना काता हुआ लाती थी। यहाँ के एक-दो गाँवों में चार-चार आने का सूत लेकर गांधीजी को हार पहनानेवाली बहुत बहनें देखीं। समनी की बात पहले आ चुकी है। जो न काटें, उनसे सूत खरीदवाने से खादी को मदद मिलेगी, ऐसा सोचकर डॉक्टर चंदूलाल ने यह योजना बनायी दीखती है।

२८-४-१९२५*

अखिल भारतीय गोरक्षा सभा की स्थापना करने के लिए बम्बई में माधव-बाग में एक सभा हुई। श्री रामानुजाचार्य ने सभा में आकर कार्य के प्रति सहानुभूति प्रकट की और आशीर्वाद दिये। दूसरे धर्माचार्यों के भी प्रतिनिधि उपस्थित थे। मौलाना शौकतअली विशेष आग्रहपूर्वक हाजिर रहे। सभा का विधान पहली कामचलाऊ कमेटी के सामने नाममात्र के फेरबदल के साथ पसंद किया गया था। अन्त में वह इस सभा के सामने पेश किया गया और तीन विरुद्ध मतों से पास हुआ। विधान प्रस्तुत करते हुए गांधीजी बोले:

"अपने जीवन में मैंने बहुत काम हाथ में लिये हैं, परंतु जहाँ तक मुझे स्मरण है, ऐसा एक भी कार्य नहीं, जिसके बारे में उतना भय और कँपकँपी उत्पन्न हुई हो, जितनी आज का कार्य छोड़ते हुए होती है। मैं ऐसा आदमी माना जाता हूँ, जो आम तौर पर जोखिम उठाते हुए नहीं डरता। जिन्दगी में मैंने ऐसे काम भी बहुत किये हैं, जो भयंकर लगते हैं। गोरक्षा के काम में मैं बचपन से ही दिलचस्पी लेता आया हूँ और तीस वर्ष से मैंने इस विषय का एकान्त में अध्ययन भी किया है। इस विषय पर छुट-पुट मैंने लिखा भी है। फिर भी मैंने नहीं माना था कि गोरक्षा के कार्य में कूद पड़ने की मेरी शक्ति है। आज भी मैं ऐसा नहीं मानता। इसका अर्थ यह नहीं कि मुझे यह काम करना नहीं आता। यह काम करना तो आता है, परंतु यह केवल बुद्धि के प्रयोग से नहीं होता। इसके पीछे बहुत श्रम और तपस्या चाहिए और मुझसे हो सके, तो मैं चाहता हूँ कि यह कार्य करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए मुझमें जितनी तपस्या और संयम है, उससे अधिक हो। परंतु बात यह है कि मेरा भाग्य ही ऐसा है कि जो-जो काम मैंने अपनी जिन्दगी में छोड़ा है, वह सब अपने-आप मेरी गोद में आ पड़ा है। मैं यहाँ बिलायत से आया, तभी से इस चीज का अनुभव कर रहा हूँ।

---

* महादेवभाई ने इसकी तारीख २९-४-१९२५ लिखी है, परंतु यह मेल नहीं खाती। सही ता. २८-४-१९२५ है, इसलिए वही रखी है।

"बेलगाँव में गोरक्षा-परिषद् का अध्यक्ष बनने का मेरा विचार नहीं था। केवल वहाँ के कार्यकर्ता सज्जनों के प्रेम के वश होकर मैंने उसे स्वीकार किया था। परन्तु उस समय मेरे सपने में भी नहीं था कि स्थायी संस्था बनाना मेरे भाग्य में होगा। परन्तु वहाँ के कार्यकर्ताओं ने सब बातों की योजना बना रखी थी, इसलिए मुझे उसमें सहज ही हाथ डालना पड़ा और कार्यसमिति नियुक्त कर दी। उसकी बैठक दिल्ली में करनी पड़ी। वहाँ

अनेक चर्चाएँ हुईं। चर्चा होने के बाद भी मुझे लगा कि यह महाभारत काम कहाँ छोड़ रहा हूँ? परन्तु चौंडे महाराज मुझे छोड़नेवाले नहीं थे। उन्होंने तो आग्रह जारी ही रखा, इसलिए मैंने विचार किया कि मुझसे जितनी गो-सेवा हो सके, उतनी कर दूँ। इसलिए मैंने विधान तैयार किया और उसे वहाँ एकत्र हुए सब नेताओं के सामने पेश किया। अब यह विधान सब नेताओं ने—लालाजी, मालवीयजी, स्वामी श्रद्धानंदजी, डा. मुंजे वगैरह ने—पढ़ा और पसंद किया। उस समय भी मैं रुका। मैंने विचार किया, अभी इतने थोड़े आदमियों से नहीं, परन्तु दिल्ली में एक बड़ी सभा करके यह विधान सार्वजनिक रूप में आम जनता से स्वीकार कराया जाय। दिल्ली में होनेवाली सभा आज यहाँ हो रही है, क्योंकि मैं इस समय दिल्ली नहीं जा सकता था; और मुझे जिस कार्य का संचालन करना होता है, उसके अधीन होकर मुझे चलना पड़ता है। इस प्रकार अनायास हमें यहाँ मिलना पड़ा है। सब प्रमुख नेताओं ने इस विधान को देखा और पसंद किया है। इतना ही नहीं, गामदेवी पर हुई थोड़े सदस्यों की कामचलाऊ समिति ने भी इसे थोड़े-से फेरबदल के साथ स्वीकार किया है—सब विचारपूर्वक, बहुत वाद-विवाद के बाद, एक-दो संशोधन करके स्वीकार किया है।

"आज जिस काम में आपकी सहमति और सहायता माँगता हूँ, वह महाभारत काम है। स्वराज्य का काम इससे आसान है, यह मैं कई बार कह चुका हूँ, क्योंकि यह कार्य धार्मिक है और धार्मिक भूल हो जाय, तो उसे मैं महापाप मानता हूँ। स्वराज्य के काम में मैंने भूलें कीं, उन भूलों के लिए पश्चात्ताप किया, उन्हें सुधार लिया और मैं बच गया। परन्तु इसमें यदि भूलें हों, तो उन्हें सुधारना कठिन है। गोमाता की सेवा है ही इतनी विकट। ढेढ़ को दुःख हो तो वह बोल सकता है, ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़े में अब्राह्मण को दुःख हो, तो वह बोल सकता है। हिन्दू, मुसलमान भी बोल सकते हैं और एक-दूसरे के सिर फोड़ सकते हैं। परन्तु गोमाता तो गूँगी है, बोलती नहीं, उसके आवाज नहीं। उस पर जितना बोझा लादें, उतना वह उठा लेती है। उसे अस्ट्रेलिया भेजें, तो वहाँ चली जाती है। अपने स्वार्थ के लिए हम उसकी सन्तान को कीलवाली लकड़ी चुभायें, तो उसे भी सह लेती है। भार लादकर धूप में चलायें, तो चल लेती है। इसलिए उसकी सेवा करना भगीरथ-कार्य है। परन्तु यह कार्य मैंने केवल कर्तव्य-बुद्धि से हाथ में लिया है।

"मगर इसमें मेरी शक्ति की मर्यादा है। पहली तो व्यावहारिक मर्यादा है। मुझसे इस काम के लिए घर-घर जाकर रुपया जमा नहीं हो सकेगा। मुझे रुपया जमा करना आता है। मैंने जब-जब रुपया माँगा है, तभी भारत ने अत्यन्त उदारता से मेरे हाथ में दिया है। परन्तु अब मेरे पास समय और शक्ति नहीं कि घर-घर फिर सकूँ। इसलिए रुपया इकट्ठा करके उसका ईमानदारी से उपयोग करने का भार आप पर है। ऐसे धर्म के काम

में असत्य, पाखंड आने देंगे, तो वह भयंकर हो जाएगा। हम गलत काम करेंगे, तो गाय सींग नहीं मारेगी। और इस जमाने में इसकी तो किसीको परवाह नहीं रही कि भविष्य में कार्य का परिणाम क्या भोगना पड़ेगा, अगले जन्म में क्या भोगना पड़ेगा। इसलिए दंभ और पाखंड को जितना दूर रखा जा सके, उतना दूर रखें। यह सब भी आपको करना है। यह सारी मेरी मर्यादा है।

"गोरक्षा का पूरा-पूरा अर्थ मैंने बेलगाँम के अपने भाषण में बताया था। गाय की रक्षा का अर्थ गाय नाम के पशु की रक्षा ही नहीं, परन्तु जीवमात्र की रक्षा—प्राणीमात्र की रक्षा। प्राणीमात्र में मनुष्य तो आ ही जाता है। इसलिए गाय की रक्षा के लिए मुसलमान या अंग्रेज को मारना अधर्म हो जाता है। मैं यहाँ जिस स्थान के सामने बोल रहा हूँ, उसका मुझे खयाल है; और वह खयाल रखकर ही कह रहा हूँ, कि मैं सनातनी हिन्दू धर्मवाला होने का दावा करता हूँ। वह धर्म मुझे सिखाता है कि गाय को बचाने के लिए मैं अंग्रेज या मुसलमान को नहीं मार सकता। गोरक्षा का अर्थ है, प्राणीमात्र की रक्षा। परन्तु प्राणीमात्र की रक्षा कर सकना पामर मनुष्य की शक्ति के बाहर है। इसलिए इस विधान में केवल स्थूल गाय की ही रक्षा का उद्देश्य बताया गया है। हम इतना करेंगे तो भी बहुत करेंगे; और इतना हल कर लेंगे तो और बहुत काम निपटा लेंगे। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'—यह सत्य व्यवहार में अक्षरशः सही है। एक अंग्रेज ऋषि ने कहा है—और मैं मानता हूँ कि अंग्रेजों में भी ऋषि थे—कि मनुष्य, तू अपने को पहचान ले तो काफी है। इसलिए विवेक, विचार और बुद्धि तथा हृदय से हम अपना कार्य करेंगे, तो इसमें सफलता है। गाय की रक्षा करने का अर्थ उसे कसाई के हाथ में से बचा लेना ही नहीं, परन्तु हम स्वयं ही उसे मार रहे हैं, यह रोकना है। गोरक्षा की सारी कल्पना के भीतर यही निहित है कि हिन्दुओं का अपने प्रति और गाय के प्रति क्या कर्तव्य है।

"हमने गोरक्षा का अर्थशास्त्र समझा होता, तो आज जितनी गाय की हत्या हम होने देते हैं, उतनी न होने देते। इस देश में प्रति मनुष्य गाय की संख्या जितनी कम है, उतनी और कहीं भी नहीं है। हमारे भारत में गाय का दूध जितना थोड़ा निकलता है, उतना कम और कहीं नहीं निकलता। हमारे यहाँ गाय की हड्डी-पसली जितनी गिनी जा सकती है, उतनी शायद ही और कहीं गिनी जाती होगी। इन उद्गारों में जरा भी अत्युक्ति नहीं है। यह वस्तुस्थिति है। यह बात मैं आपके हृदय को उत्तेजित करने को नहीं कह रहा हूँ। मुझे यकीन है कि भारत में जितना अत्याचार हिन्दुओं की तरफ से गाय पर होता है, उतना और कहीं नहीं होता। इसलिए उसकी रक्षा करने की जिम्मेदारी भी हिन्दुओं पर ही होनी चाहिए। मैं खिलाफत की लड़ाई में शामिल हुआ था तो वह मुसलमानों की सेवा करने के लिए, उनका चरण चूमने के लिए, क्योंकि उनके द्वारा मुझे गाय की भी सच्ची

रक्षा सावधानी से करनी है। हमारे शहरों में गाय को दुहने की क्रिया इस ढंग से की जाती है कि दूध की आखिरी बूंद भी निकल आये। परिणामस्वरूप दुधारू गाय तीन वर्ष में दूध देना बन्द कर देती है और फिर वह कसाई के यहाँ चली जाती है। चौंडे महाराज जैसे कुछ गो-सेवक ऐसी गायों को बचाते हैं, परन्तु यह तो समुद्र का पानी अंजली में भरकर उसे खाली करने से संतोष मानने के बराबर है।

"यह विधान आप समझ सकें, इसके लिए आपके सामने दो बातें रखना चाहता हूँ। पहली बात तो यह कि हमें दूध पहुँचाने और चमड़े कमाने के धंधों पर पूरी तरह काबू पा लेना चाहिए। यह बात आपको बहुत व्यावहारिक लगेगी। परन्तु जिसमें व्यवहार नहीं है, वह धर्म नहीं है। राजा जनक के जीवन से यही चीज सीखने को मिलती है कि जिस धर्म को व्यवहार में न उतारा जा सके, वह धर्म नहीं है—कदाचित् अधर्म हो। इसलिए आपके सामने व्यावहारिक रूप में यह धार्मिक प्रश्न रख रहा हूँ। दूसरे, दूध निकालने की प्रथा हमें हाथ में लेनी चाहिए। इसमें कानून बनवाने का काम नहीं है। शुद्ध-से-शुद्ध घी और दूध देने का निश्चय करें तो काफी है। परन्तु जो मवेशी मरता है, उसका हम क्या करें? हम उसका चमड़ा उतरवाकर उसका उपयोग करें। आपको लगेगा कि यह आदमी विलायत हो आया है, इसलिए ऐसी बात करता है। परन्तु ऐसा नहीं है। मेरे सुझावों में हमारे चमारों की भी रक्षा आ जाती है। हमारे चमार क्या करते हैं? मरे हुए ढोर को वे इस तरह फाड़ते हैं कि देखा नहीं जाता। यह बात मुझे चमारों ने ही कही है और उन्होंने ऐसी सफाई भी दी थी कि चूँकि इस प्रकार फाड़ने में ही जीवन बीतता है, इसलिए स्वाभाविक तौर पर ही हम उसे खाते हैं। मैंने उन्हें खाने से मना किया। किसीने कहा, हमारी यह पुरानी आदत है, छूटती नहीं है। कोई कहता है कि चमार का धंधा छुड़वा दें, तो यह छूट जायगी, नहीं तो नहीं छूटेगी। कुछ ने कहा, छोड़ने की कोशिश करेंगे, परन्तु कठिन बात है। यह सब देखते हुए मुझे लगता है कि चमारी का धंधा हमें हाथ में लेना पड़ेगा । मैं तो गाय को इस हद तक पूजनेवाला हूँ कि जब मैंने दक्षिण-अफ्रीका में गाय का दूध निकालने में होनेवाले बलात्कार का हाल जाना, तब गाय और भैंस का दूध लेना छोड़ दिया था । ऐसा मैं यह माननेवाला हूँ कि जूते वगैरह के लिए मरे हुए जानवर के चमड़े का उपयोग करना अधर्म नहीं है । वैसे तो हममें आजकल जीवित गाय का चमड़ा, चर्बी और मांस लेनेवाले भी मौजूद हैं। ऐसे वैष्णव भी विद्यमान हैं, जो 'बी फटी' (गोमांस की चाय) लेते हैं । इनसे पूछता हूँ कि तुम ली वेग का 'गोमांस-तत्त्व' क्यों लेते हो, तब मुझे कहा जाता है कि विश्वामित्र ने भी गोमांस लिया था । विश्वामित्र ने धर्म-संकट मानकर गोमांस हाथ में लिया था, परन्तु खाया नहीं था । ये लोग डॉक्टर की सलाह की बातें करते हैं । आस्ट्रेलिया में हम अपनी गायें भेजकर ऐसी चीजें खाने लगे हैं। इससे बचना हो तो चमड़ा जमा करके कमाना

हमें सीखना होगा । हम यहाँ से गोमांस तक बाहर भेजते हैं, गोमांस को सुखाकर बर्मा भेजते हैं, क्योंकि बर्मा के लोग गाथ को मारते नहीं, परन्तु खाते तो हैं! इसलिए मुझे चमारीवाली बात विधान में रखनी पड़ी है। हमारे चमार तब तक मुर्दार मांस खाते ही रहेंगे, जब तक हम उन्हें चमड़ा सुधारने की शास्त्रीय पद्धति नहीं सिखा देते।

"इसके सिवा जो निर्विवाद बातें हैं, उनकी चर्चा मैं यहाँ नहीं करता । तात्कालिक कार्य हमारे लिए अच्छी डेयरियाँ बनाना है। इसमें मुझे वैष्णव महाराजाओं, रामानुजाचार्य वगैरह की मदद मिलेगी तो समझ लीजिए कि मुसलमानों की सहायता मेरी जेब में है (तालियाँ) । इसमें ताली बजाने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि आज आपकी मदद मेरी जेब में नहीं है।

"इस प्रकार शुद्ध दूध देने, अच्छे बैलों द्वारा हल चलवाने और आपको जूते पहनाने का मेरा उद्देश्य है। यह भी बता दूँ कि डेयरी बनाने में मैं सरकारी अधिकारियों की भी सहायता लेना चाहता हूँ, क्योंकि इन लोगों के पास इस कार्य के निष्णात मनुष्य हैं और वे गाय को कष्ट पहुँचाये बिना उससे अधिक दूध लेने के रास्ते जानते हैं।

"खजांची के तौर पर मुझे ऐसे आदमी चाहिए, जो कहीं से भी पैसा ढूँढ़ लायें और उसका हिसाब रखें और रुपया न हो, तब खुद भी निकालकर दे दें । मैं सर पुरुषोत्तमदास के साथ बातें कर रहा हूँ, परन्तु वे तो स्वीकार करें, तब बात है । मंत्री भी इसेके लिए आदर्श चाहिए। वह ब्रह्मचारी हो और देशी भाषाएँ तथा अंग्रेजी जाननेवाला हो। सब जगह जाकर सबसे मिल सके, बोल सके, ऐसा आदमी चाहिए। पवित्र कार्य के लिए पवित्र ब्रह्मचारी की बहुत जरूरत है, यद्यपि आज ऐसा शुद्ध ब्रह्मचारी मिल नहीं सकता। ब्रह्मचारी तो हमारे पास मौजूद हैं, लेकिन वे रोष करनेवाले हैं, पाँचों इंद्रियों को काम में रखनेवाले नहीं। हमें तो पाँचों इंद्रियों को वश में रखनेवाले ब्रह्मचारी चाहिए। ऐसा न मिले, तो किसी भी शुद्ध सदाचारी हिन्दू से काम चल सकता है। मुझे तो मदद देनेवाले मुसलमान भी विद्यमान हैं, परन्तु उनके नाम मैं नहीं देता, क्योंकि यह धंधा ही विशेषतः हिन्दुओं का है, इसलिए मैं उनकी सेवा विशेष चाहता हूँ।

"अन्त में मैं बताऊँगा कि यह संस्था प्रेम से भरी है और ऐसी आशा रखूँगा कि इससे किसी के प्रति विरोध तो क्या, विरोधाभास तक नहीं निकलेगा। और यह प्रार्थना करके कि ईश्वर हमें यह सेवा करने का बल दे, अपना भाषण पूरा करूँगा।"

विधान पर मत लेने पर चार मनुष्य विरुद्ध हजारों की सहमति से वह स्वीकृत घोषित किया गया।

बाद में मौलाना शौकतअली बोले:

"कोई भी हिन्दू, चाहे वह कैसा भी हो, ऐसा नहीं, जिसके दिल में गौमाता के लिए प्रेम न हो। हमें उसके पड़ोसी के रूप में, उसके भाई के तौर पर रहना है। इसलिए मुझे कोशिश करनी चाहिए कि अपने भाई की भावना को न दुखाऊँ और गाय को बचाने का कोई रास्ता निकालूँ। हम गाय को माता नहीं मानते, परन्तु पवित्र तो मानते हैं। इसलिए ऐसा उपाय हमें अवश्य करना चाहिए, जिससे चौबीस करोड़ हिन्दुओं के दिल न दुखें। सचमुच तो तमाम हिन्दुओं के दुःख का, मुसलमानों के दुःख का, भारत के दुःख का इलाज स्वराज्य है और इसका उपाय एकता है। आज तो मुसलमान खिलाफत का दुखड़ा रोते हैं और हिन्दू गाय का रोते हैं। परन्तु न मुसलमान इसलाम का कुछ करता है, न हिन्दू गाय का कुछ करता है। खुदा हमें समझ दे, सब्र दे, हिम्मत दे। आज देश में काले बादल हैं, परन्तु खुदा करेगा तो ज्यादा-से-ज्यादा एक साल से अधिक यह रंग नहीं चलेगा। एक दिन ऐसा देखेंगे, जब भारत में स्वराज्य होगा, इसलाम आजाद होगा और गाय आजाद होगी।"

डॉ. मुंजे ने कहा:

"अंग्रेजी सेना के लिए जितना गोमांस इस्तेमाल होता है, उसका सौवाँ हिस्सा भी मुसलमान काम में नहीं लेते। और गाय को हम मुसलमान के साथ लड़कर नहीं बचा सकते। हमारी गो-रक्षा से इसे अंग्रेज और मुसलमान दोनों से बचा सकेंगे।"

दूसरे दिन अर्थात् २९ अप्रैल की रात को गामदेवी में नियुक्त हुई कार्यसमिति के बारह सदस्यों की बैठक हुई। उसमें कामचलाऊ खजानची के रूप में श्री रेवाशंकरभाई को चुना गया और कामचलाऊ मंत्री के तौर पर श्री नगिनदास अमुल्लखराय को चुना गया। सब सदस्यों ने विधान की रू से कुछ सदस्य तीन मास के भीतर बनाने के वचन भी दिये।

गांधीजी को काठियावाड़ और गुजरात के सफर में जो तकलीफ हुई और बुखार आ गया था, उससे उत्तेजित होकर भाई शंकरलाल ने और मैंने बंगाल का प्रवास-क्रम तैयार करनेवालों को भड़का दिया था, यह मैं स्वीकार करता हूँ। परन्तु ऐसा करने से कोई बुरा परिणाम नहीं आया। गांधीजी इस तरह सफर करें कि उनकी तन्दुरुस्ती बनी रहे, इसके लिए सतीशबाबू ने कुछ भी करने में कसर नहीं रखी। इसमें यह ज्यादाती है कि मेरे जैसे मजदूर का भी पहले दर्जे की यात्रा करना शामिल है। परन्तु सारे रास्ते गांधीजी के दर्शन चाहनेवाली भीड़ ने हमें तमाम रात जागते रखा, इस बात ने उस ज्यादाती को हलका करने में भी कसर नहीं रखी। 'कितनी ही रात बीती हो, परन्तु सिर निकालकर दर्शन न दे, वह महात्मा ही नहीं है', यह व्याख्या पहली बार सुनी।

कलकत्ता, १-५-१९२५

यहाँ आये, तब ५१ से १०१ नंबर तक का सूत गांधीजी को देने के लिए बहन अपर्णादिवी आयीं। हर महीने अपनी स्वर्गीय माता के निमित्त ये दो हजार गज सूत गांधीजी को भेजती हैं। गांधीजी ने कहा: "अब सारा ही सूत एक ही नम्बर का निकालने की कोशिश करो, जिससे उस सूत का एक-सा और एक-सी सफाईवाला कपड़ा बुना जाय।"

मिर्जापुर पार्क में हुई सभा के सभापति आचार्य राय थे। उन्होंने गांधीजी से विनोद में कहा:

"मुझे आपका परिचय तो देना ही चाहिए न?"

गांधीजी ने हँसते-हँसते कहा: "मेरा खयाल है, यह जरूरी है।"

सभा को सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

"आज जब मैंने देशबन्धु के घर में प्रवेश किया, तब मुझे बड़ा दुःख हुआ। कुछ महीने पहले जब मैं आया था, तब वह मकान उन्हींका था और वे वहीं थे। आज मैं वहाँ गया, तब मैंने उन्हें नहीं देखा। मैंने सुना था कि मकान ट्रस्टियों को दे दिया गया है। इसकी मुझे पहले से खबर भी थी। फिर भी आज ट्रस्टियों का निमंत्रण सुनकर गया हूँ। परन्तु सुनना और देखना, दो अलग बातें हैं। मैंने वहाँ प्रवेश किया, तब दुःख हुआ। इस तरह दुखी होने का कारण नहीं था, क्योंकि मकान किसी ने ले नहीं लिया। देशबन्धु ने मकान छोड़ा, यह तो इनके त्याग का चिह्न है। परन्तु मुझे भी लगा कि संसार में फँसे हुए एक जीव ने इतना बड़ा महल दे दिया! मैंने यह भी जाना कि देशबन्धु का स्वास्थ्य अभी तक अच्छा नहीं है । ईश्वर इन्हें दीर्घायु दे और चाहता हूँ कि वे जल्दी स्वच्छ हो जायँ, भारत की सेवा के लिए हमेशा तैयार रहें और सदा उनकी तबीयत अच्छी होती जाय ।

“आप यह आशा तो नहीं रखते होंगे कि जिन बातों के बारे में आप खबरों में देखते हैं, उनके विषय में बहुत कहूँ। पहली बात तो यह है कि मैं अखबार बहुत पढ़ता नहीं। सफर में अखबार पढ़ने का बहुत मौका नहीं मिलता। इसलिए यह नहीं जानता कि अखबारों में क्या आता है। दूसरी यह भी बात है कि अखबारों के साथ बहुत वास्ता नहीं रहता। जिस कार्य को मैंने अपनाया है, उसके लिए अखबार पढ़ने की जरूरत नहीं रहती। देहातियों को अखबार नहीं मिलता और मिले तो वे बहुत पढ़ते नहीं। उनकी आवश्यकताएँ भिन्न हैं। आजकल मेरे दिन इनमें बीतते हैं और चरखे को लोकप्रिय बनाने में मेरा समय जाता है। मैं अर्थशास्त्र का ज्ञान रखता हूँ

और समय की मुझे कीमत है। मैं जानता हूँ कि मनुष्य को प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ काम करना चाहिए। मैंने निश्चय किया है कि राजनैतिक कार्य स्वराज्यवादियों को सौंपा जाय; और उसे कांग्रेस का काम माना जाय, ऐसा मैंने इकरार किया। तो फिर इसमें दखल देने की क्या जरूरत? नेहरू और दास के काम में मुझे पूरा विश्वास है। मैं जानता हूँ कि देश के हित की रक्षा जितनी वे करते हैं, उतनी मैं नहीं कर सकता—न आप कर सकते हैं। मैंने इकरार किया, तब लोगों को भी बता दिया कि मैं उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करूँगा। उनके काम में दखल देना अविश्वास का चिह्न माना जायगा। इसलिए उस काम का तो मैं विचार ही नहीं करता।

"कांग्रेस के काम के मैंने दो हिस्से किये हैं। एक हिस्सा यह कि हमारी बाह्य प्रवृत्ति चले। दूसरा भीतरी प्रवृत्ति का। पहली के लिए स्वराज्यवादियों को काम सौंपा गया; और दूसरी सबके लिए है। इस दूसरी प्रवृत्ति के सिलसिले में तीन कामों की घोषणा करता हुआ मैं भारत में घूम-फिर रहा हूँ। इन तीन कामों में पहला काम है, हिन्दू-मुसलिम-एकता का। इस काम में मेरा पंख कट गया है। इसमें कोई मदद करने में मैं अशक्त हो गया हूँ। एक समय ऐसा था, जब मैं अपने को इस बारे में हकीम मानता था। यह मानता था कि मेरे पास हिकमत है, जड़ी-बूटी है। आज मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है। मैं देखता हूँ कि मेरा बताया हुआ इलाज करने को न तो हिन्दू तैयार हैं, न मुसलमान। आज तो इतना ही कहूँगा कि एकदिली के बिना स्वराज्य नहीं मिलेगा। हिन्दू अगर यह घमंड करें कि मुसलमानों को छोड़कर भारत का राज्य प्राप्त किया जाय, तो मैं कहूँगा कि हिन्दू पागल हैं। मुसलमान अगर यह समझें कि हिन्दुओं को छोड़कर मुगल सल्तनत वापस लायी जाय, तो मैं कहूँगा कि मुसलमान पागल हैं।

"जब तक अस्पृश्यता का नाश नहीं किया जायगा, तब तक स्वराज्य असंभव है। हिन्दू भले ही अपने को सनातनी कहें या आर्यसमाजी कहें, परन्तु जब तक वे अस्पृश्यता को मानते हैं, तब तक हिन्दू-धर्म का नाश ही है। जब तक हम अपना दिल मैला रखेंगे, तब तक हमें भी अस्पृश्य माना जायगा। विदेशों में हिन्दू, मुसलमान और पारसी भी अछूत माने जाते हैं। मैं स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ कि अस्पृश्यता के नाश का अर्थ वर्णाश्रम का नाश नहीं है।

"चरखे को जब तक नहीं अपनायेंगे, तब तक हम चाहे जो हों तो भी भारत की आर्थिक दरिद्रता का नाश असंभव है। आधे घण्टे सुदर्शन चक्र चलाइए। भारत में काफी अनाज नहीं है, सो बात नहीं, परन्तु उद्यम नहीं है। मैं बम्बई से कलकत्ते तक गया, तो हर स्टेशन पर काली टोपी पहनकर आये हुए लोगों को 'महात्मा गांधी की जय' पुकारते सुना। तब मेरा हृदय रो पड़ा। ऐसा बोलने में अंध भक्ति भरी है। यह मुझे नहीं चाहिए।

मेरे लिए यह दुःख की बात है। खादी पहनने में पाप है, यह तो मुझे कोई नहीं बता सकता। इसलिए सबसे कहता हूँ कि किसानों का भला चाहते हो, तो खादी का ही इस्तेमाल करो। जिन आदिमियों को मुकदमा चलाये बिना सरकार ने गिरफ्तार किया है, उन्हें छुड़वाना चाहते हो, तो सब चरखा चलाओ। बर्कनहेड और लिटन को कुछ समझाकर भले ही हम उन लोगों को छुड़ा सकें, यद्यपि मुझे तो ऐसा भरोसा हरगिज नहीं है।

"मेरे पास कोई नयी चीज नहीं है। परन्तु जब तक भारत में एक स्त्री या एक पुरुष मेरा संदेश सुनने को तैयार होगा, तब तक मुझे चिन्ता नहीं है।"

अंग्रेजी में बोलते हुए बताया:

"मैं हिन्दी में काफी बोला हूँ। मुझे आशा है कि आपमें से बहुतेरे मेरी टूटी-फूटी हिन्दी समझ सके होंगे। मैं जब-जब दक्षिण भारत और बंगाल में जाता हूँ, तब-तब मुझे अंग्रेजी में बोलना पड़ता है। इससे मुझे हमेशा दुःख होता है। मैं चाहता हूँ कि इन प्रदेशों के लोग अंग्रेजी का मोह छोड़ें और अपनी मातृभाषा के सिवा कामचलाऊ हिन्दी भी सीख लें, क्योंकि अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार और व्यापार के लिए भाषा तो हिन्दी ही हो सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए अंग्रेजी भले ही रहे, परन्तु वह हिन्दी का स्थान तो हरगिज नहीं ले सकती। मेरी टूटी-फूटी हिन्दी बीस करोड़ मनुष्य समझ सकते हैं। ऐसा कहने की नौबत नहीं आनी चाहिए कि दस करोड़ (?) दूसरे बीस करोड़ पर अपनी राय लादना चाहते हैं।

"आज १४८, रमा रोड* में घुसते हुए मुझे कितना गहरा दुःख हुआ? मैं जानता हूँ कि यह मकान अब देशबंधु दास की संपत्ति नहीं है। मैं जानता हूँ कि अपनी जायदाद का यह अन्तिम भाग उन्होंने ट्रस्टियों को सौंप दिया है। परंतु मैं तो इस दुनिया का आदमी हूँ। इस उज्ज्वल व्यक्ति के मकान में मैं घुसा, तब मेरा हृदय भर आया और अपने आँसू को रोक न सका। इसके सिवा मुझे इसमें भी दुःख हुआ कि उनका बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य अच्छा नहीं हुआ।

"उनका भेजा हुआ सन्देश मुझे बहुत छू गया है। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें स्वास्थ्य प्रदान करें और देश-सेवा करने के लिए लम्बी उम्र दे।

"वर्कनेहड और इनके बीच जो लम्बी बातचीत चल रही है, उसके बारे में मैं कुछ कहूँ, ऐसी अपेक्षा आप नहीं रखते होंगे। मुझे इस बारे में कुछ पता नहीं है। हाँ, मैं इतना जानता हूँ कि कुछ-न-कुछ राजनैतिक वातावरण जम गया है। परंतु मुझे इसमें रस नहीं है। मैं तो समय देखकर चलनेवाला हूँ। कांग्रेस का राजनैतिक

कार्यक्रम जिसके सुपुर्द है, उस स्वराज्य दल को मैंने सर्वग्राही मुख्तार-नामा दे दिया है। विधान-मंडलों के काम-काज के बारे में दास और नेहरू की शक्ति और जानकारी के बारे में मुझे सम्पूर्ण श्रद्धा है, इसलिए इस बारे में कुछ भी राय देना मेरे लिए उद्धतता होगी। इतना ही नहीं, परंतु दास के साथ चर्चा किये बिना ऐसा कुछ भी करने का प्रयत्न करना ही असंभव है। मैं यह प्रवास कर रहा हूँ, तो दास के मार्ग में या स्वराज्यदल के अन्य किसी सदस्य के रास्ते में विघ्न डालने के लिए नहीं। मन से भी ऐसा कुछ न किया जाय, ऐसी मैंने ईश्वर को साक्षी रखकर शपथ ली है। मैं उनकी मदद नहीं कर सकता, क्योंकि वह मेरी शक्ति के बाहर है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं दूसरा काम नहीं कर सकता। हम दोनों के रास्ते और साधन ही केवल निराले हैं। मैं रचनात्मक कार्यक्रम से बँधा हुआ हूँ। विलायत के होशियार राजनैतिक पुरुषों के साथ बातचीत करना मैं जानता नहीं। मेरे अंदर ही कोई शक्ति नहीं रही। सन् १९२१ में हममें जो अपार शक्ति थी, वह आज हम खो बैठे हैं। इसलिए रचनात्मक कार्यक्रम के लिए ही मुझे अपनी सारी शक्ति लगानी चाहिए और मैं आपको वचन देता हूँ कि यदि इस कार्यक्रम को सफलता दिलाने के लिए आप मुझे पूरी सहायता देंगे, तो आप देखेंगे कि हमें जकड़-कर रखनेवाले बंधन अपने-आप टूट जायँगे और जो आज जेलों में सड़ रहे हैं, उन्हें हमारे कहे बिना मुक्ति मिल जायगी।

"यह सहायता आप किस तरह दे सकते हैं?

“हिन्दू-मुसलिम-एकता सबसे पहली जरूरी चीज है। क्या यह अवांछनीय मामला है? असंभव बात है? मैं अपने-आपको डॉक्टर मानता था। परन्तु यह रोग मिटाने के लिए आवश्यक दवा देने में मैं असफल सिद्ध हुआ। मेरी दवा इन्हें रूची ही नहीं। हमें एक-दूसरे का सिर फोड़ना ही हो तो भले ही फोड़ें, मगर मर्दानगी से फोड़ें; मगर के आँसू बहाकर नहीं और किसीसे दया-याचना करके नहीं।

---

* कलकत्ते में दासबाबू के मकान का ठिकाना।

“दूसरी बात। जब तक हिन्दू-धर्म अस्पृश्यता के मैल से सना हुआ है, तब तक स्वराज्य प्राप्त करना बिलकुल असंभव है। यदि स्वराज्य १०, डाउनिंग स्ट्रीट* से प्रदान किया जायगा, तो वह भारत के लिए शापस्वरूप सिद्ध होगा। अछूतों की सेवा करके ही आप छुआछूत का नाश कर सकेंगे। कलकत्ते के हिन्दू भाइयो, आप सुन लीजिए। हिन्दू-धर्म की परीक्षा हो रही है, और आप उसमें से अस्पृश्यता का पाप निकाल नहीं देंगे, तो उसकी अधोगति होनेवाली है।

"तीसरी बात। कलकत्ते के शिक्षित भाइयो, मैं आपसे क्या माँगता हूँ? मैं चाहता हूँ कि इस भूखों मरते देश के लिए आप रोज आधा घंटा काटिए। तब मैं बंगाली बहनों से कहता हूँ कि लाखों मनुष्य आपके लिए कातते हैं। वे हम पर अविश्वास से हँसती हैं और कहती हैं कि हम तो कातने का अर्थ ही नहीं समझतीं। परन्तु आप कातना शुरू न करें, तब तक भारत के इस मृतप्राय उद्योग को जिन्दा नहीं कर सकेंगे। भारत के किसी भी मनुष्य को—वह कितना ही महान् हो, तो भी उसे—मैं चुनौती देता हूँ कि वह मुझे बताये कि और कोई भी उद्योग चरखे की बराबरी कर सकता है! परन्तु जब तक कोई न बता सके, तब तक देश को आधा घंटा देने से मूँह न मोड़िए। हमें अपने गाँवों को विपुलता से समृद्ध बनाना है, खुलना के लोगों को विश्वास होना चाहिए कि अब यदि उनके वहाँ अकाल पड़ेगा तो डा. राय की तरफ टकटकी लगाकर बैठे नहीं रहेंगे। क्योंकि अकाल का सामना करने का साधन उन्हें मिल गया है। मैं अपने-आपको चरखे का निष्णात मानता हूँ, खादी का निष्णात मानता हूँ, और मुझे लगता है कि प्रत्येक से कुछ कहने लायक मेरे पास है। जब तक मुझमें शक्ति है और बंगाल के लोग मेरी सुनने को तैयार हैं, तब तक आपको एक स्थायी इमारत की बुनियाद रखनी है। समझ लीजिए कि आप यह नहीं करेंगे, तो आपको सुधार मिल जायँ तो भी वे ताश के घर जैसे साबित होंगे।"

---

* विलायत के प्रधानमंत्री का लंडन में निवास-स्थान।

दोपहर को श्रीमती विलियम्स आयीं। उनके साथ की बातों में बहुत नवीनता नहीं थी। अमरीकी विश्वयात्रियो के बारे में कहा कि उनका उद्देश्य आनंद ही होता है—जन-कल्याण नहीं होता। यह खराब है। श्रीमती विलियम्स कहती हैं: "प्रत्येक मनुष्य कल्याण कर भी सकता है?" गांधीजी ने जवाब दिया: "हाँ, हरएक अपने-अपने ढंग से कर सकता है। यूरोप में मनुष्य नहीं, परन्तु संस्कृति खराब है। भारत में संस्कृति नहीं, मगर मनुष्य खराब हैं।"[१] यंत्रों और मानव-श्रम के बारे में भी काफी बातें कीं। सिंगर की सिलाई मशीन की कहानी भी कह सुनायी।

रात को कलकत्ते से बैठे। सियालदा स्टेशन से शुरू होनेवाला भीड़ का कष्ट रास्तेभर रहा। गांधीजी को ऊपर की बैटक पर सोना पड़ा।

---

१. बात अंग्रेजी में हो रही थी।

२-५-१९२५

सबेरे फरीदपुर आये।

प्रदर्शन देखा, सुन्दर था। व्यवस्थापकों का सरकार से लिया हुआ सहयोग लाभदायक था। सरकारी आदमियों में से बहुत-से खादी पहने हुए थे। श्रीरामपुर के बुनाई कार्यालय से विद्यार्थी आये थे। वे अपना काता हुआ सूत करघे पर बुनने के लिए लाये थे और सन के चरखे पर सन कातकर बुनते थे। रेशम की सारी क्रियाएँ भी बतायी गयी थीं और रेशम कातकर बताया भी जाता था। रेशम का करघा नहीं देखा, शंक के बटन; शंख के गहने; शंख की चूड़ियाँ; टसर, रेशम और मटका (एक प्रकार का 'रद्दी' रेशम) के कपड़े; घास की सुन्दर चटाइयों का संग्रह-स्थान बढ़िया था।

गांधीजी का भाषण सामान्य था।

दास से मिले। उनका शरीर बहुत ही दुबला हो गया है। वे बेहद कमजोर हो गये हैं। उनके भाषण[१] के बारे में गांधीजी ने कहा: "मैंने इसे शुरू से आखिर तक पढ़ लिया। उसके एक-एक शब्द से मैं सहमत हूँ। भाषण बड़िया है। मैं तो कहने जा रहा था कि वह महान है।"

---

१. ता. २-५-१९२५ को फरीदपुर गाँव में होनेवाली बंगाल प्रान्तीय परिषद् के चित्तरंजन दास अध्यक्ष थे। उस समय के उनके भाषण का उल्लेख है।

मैंने उन्हें सुझाव दिया कि उस भाषण को पढ़कर सुनाने के बजाय उसका सार ही सुनाया जाय। उन्होंने इनकार किया। "नहीं रे। यहाँ इस भाषण और मेरी वृत्ति के बारे में कई बातें हो रही हैं। प्रत्येक शब्द पढ़कर सुनाना ही चाहिए। आधे घंटे में निपटा दूँ तो लोग कुछ-न-कुछ तर्क-वितर्क करें।"

विलायत जाने की बात के बारे में बोलते हुए कहा: "लंदन तो हरगिज नहीं जाऊँगा। लोग अनेक तरह की बातें करेंगे। वीशी[१] जाने में भी मुझे डर तो है ही।" इसलिए गांधीजी कहते हैं: "इंग्लैंड तो हरगिज नहीं जाना है, इस आशय का कांग्रेस-अध्यक्ष का हुक्म लेकर आप जा सकते हैं।"

कश्मीर जाने की बात की, तो कहते हैं: "पिछले साल रोक दिया गया था। अब भी शायद रोकें। और मैं आश्वसन तो नहीं दूंगा।"

बर्मा जाने की बात की तो कहते हैं: "मांडले में सुभाष वगैरह हैं, इसलिए ये लोग मुझे वहाँ उतरने नहीं देंगे।"

इसके बाद बर्कनहेड के साथ के झगड़े का रहस्य समझाया। इसमें रहस्य जैसी कोई बात ही नहीं थी। "मुझे कुछ यूरोपियन पटना में मिले थे। 'इंग्लिशमैन' और 'स्टेट्समैन' के सम्पादक भी मिले थे। उन्होंने कहा: 'हमारा जी इसमें से निकल जाने को होता है। आप सिराजगंजवाला प्रस्ताव वापस लीजिए।' मैंने इनकार किया। परंतु एक बयान देना मैंने स्वीकार किया। मैंने बयान दिया कि मेरे नाम तुरंत तार आया: 'बर्कनहेड के भाषण के बारे में आपकी क्या राय है?' मैंने कहा: 'मैंने उसे देखा ही नहीं।' इसलिए वह मेरे पास भेजा गया। और मैंने उसका उत्तर दिया। इससे अधिक कुछ भी नहीं।"

मोतीलाल-जिन्नाह द्वंद्व के बारे में कहा: "मोतीलाल आक्रामक हैं। मैंने उन्हें इस झगड़े में न पड़ने की सलाह दी थी, मगर उन्होंने मानी नहीं।"

अपने कातने के अनुभव के बारे में कहा: "आपके चरखे पर ही पटना में दो-तीन दिन काता, मगर मैं इसमें 'ढ' हूँ।"

गांधीजी कहते हैं: "तकली में मैं सफल नहीं हुआ। ठीक जमावट ही नहीं हुई। इसलिए आपको हरगिज निराश नहीं होना चाहिए, इस कारण मेरा प्रयत्न चालू है।"

बेबी[२] की तबीयत के बारे में श्रीमती दास कहती हैं: "देखिए, बेबी की तबीयत अद्भुत हो गयी है न?"

गांधीजी कहते हैं: "हाँ, आप सच्ची थीं और मैं झूठा ठहरा।"

दास ने अपने भाषण के बारे में बोलते हुए कहा: "पं. मोतीलालजी कहते थे, 'इसके पीछे कोई हेतु होना चाहिए।' मैंने उन्हें उत्तर दिया, 'हाँ। जितना आगे है, उतना ही पीछे है।' "*

---

१. यह गाँव फ्रांस में है। वहाँ गरम पानी के चश्मे हैं। बादी, संधिवात, मधुमेह आदि रोग इससे मिटते हैं। वहाँ के पानीकी बोतलें भरकर दूसरे देशों में विक्रयार्थ भेजी जाती हैं।

२. दासबाबू की छोटी लड़की।

* यह सब बातचीत अंग्रेजी में थी। यहाँ उसका अनुवाद दिया है।

फरीदपुर में हिन्दूसभा को सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

"अध्यक्षजी की आज्ञा से मैं तीन विषयों पर बोलूँगा।

'हिन्दू, मुसलमान और दूसरे जो भारत में रहनेवाले हैं, एकदिल होकर हमेशा के लिए साथ रहें। साथ ही मैं जानता हूँ कि आजकल हिन्दू और मुसलमान दोनों में अविश्वास बढ़ गया है। दोनों एक-दूसरे से डरते हैं, इसलिए एकदिल नहीं हो सकते। मैंने कहा है कि मैं इलाज बता सकता था। परन्तु इसमें मुझे सफलता नहीं मिली। तब फिर क्या किया जाय? मैं देख रहा हूँ कि कहीं-न-कहीं हम पेट भरकर लड़ लेते हैं। मैंने एक बात कही है कि यदि लड़ना चाहते हों तो मर्दानगी से लड़ें। लड़ने के बाद भी एकदिल होना पड़ेगा। दोनों में से एक का सर्वनाश हो, यह असम्भव है। दोनों में से एक भी भारत छोड़कर और कहीं जाय, यह भी असम्भव है। शुद्धि से सभी मुसलमान किसी दिन हिन्दू नहीं बन जायँगे और न कभी धर्मभ्रष्ट होकर सारे हिन्दू मुसलमान बन जायँगे। इसलिए मैं शांत होकर बैठा हूँ और देख रहा हूँ, तो इस आशा से कि लड़कर भी एक हो जायँगे। केवल इतना नहीं चाहता कि दूसरे का सिर फोड़कर कोई भी भाग जाय और यह भी नहीं चाहता कि कोई अदालत की रक्षा तलाश करने जाय।

"अस्पृश्यता-निवारण के बारे में मैंने बहुत कहा है। अस्पृश्यता एक भयंकर पाप है। इस भयंकर पाप की हम सजा भुगत रहे हैं और इसे दूर न करें तो अब भी भोगते रहेंगे। मैं अछूतों के साथ रोटी-बेटी व्यवहार रखने को नहीं कहता। जो कोई ऐसा करता है, उसे मैं सहन कर लेता हूँ। परन्तु यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि उसके बिना भारत में स्वराज्य असम्भव है।

"चरखा भारत के गरीबों का प्राण है। कभी-कभी मैंने इसे सुदर्शन चक्र कहा; कभी-कभी कामधेनु बताया है। अपने सारे अनुभव से कह सकता हूँ कि चरखा कामधेनु है। हमारी कंगाली का आरम्भ हमने इसे छोड़ा, तब से हुआ।

"मैंने यहाँ की प्रदर्शनी देखी। उसमें रखे गये चरखों में अपूर्णता पायी। इस अपूर्णता को मिटाना जाननेवाले निष्णात यहाँ होने चाहिए। चरखे का पुनरुद्धार राक्षसी दृष्टि से नहीं, परन्तु मानवीय अथवा दैवी दृष्टि से करना चाहिए। जैसे मैन्चेस्टरवालों ने चरखे का नाश किया, भारत का नाश किया और कंगाली पैदा की, वैसे हम नहीं करना चाहते। तीन-चार वर्ष पहले ढाके की मलमल देखी, तो मुझे आनंद हुआ था। परन्तु जब जाना कि उसका मूल विदेशी है, तब मेरा हृदय रोया था। बंगाल में अकेले चावल पैदा करने से कोई लाभ

नहीं है। यदि भारत के दूसरे लोग चावल खाना छोड़ दें, तो इस अधिक चावल का क्या किया जाय? व्यापार तो हमारी खास बनावटों का ही हो सकता है। उदाहरणार्थ, जैसा घी का प्रचार है, वैसा चरखे का होना चाहिए।

"अपर्णादेवी नामक छोटी-सी लड़की की बात कहूँ। वह तो मेरा दर्शन करने आयी थी। परन्तु मैं उसका दर्शन करके कृतार्थ हुआ। मुझे लगा कि भारत में जब तक ऐसी लड़कियाँ मौजूद हैं और इतना बारीक कातती हैं, तब तक उसका उद्धार संभव है। परन्तु हममें आलस्य, मन्दता आ गयी है और देश के लिए हार्दिक भाव नहीं है। हम गरीबों के साथ तन्मय नहीं हुए। भारत की उन्नति चरखे को छोड़कर करना मुझे तो असंभव लगता है।"

प्रान्तीय परिषद् में:

"मैं तो अभी आपका अनुयायी हूँ। अकेला भारत ही नहीं, परन्तु सारी दुनिया आपका कहा सुनेगी। मैं चाहता हूँ कि स्वराज्य मिले, तब तक आपका नेतृत्व हममें प्राण संचारित करे।"*

---

* ये शब्द किनके हैं, इसका उल्लेख नहीं किया गया है। गांधीजी को लक्ष्य कर शायद दासबाबू ही बोले होंगे।

युवक परिषद् में भाषण देते हुए गांधीजी बोले:

"मैंने नहीं सोचा था कि आपकी परिषद् में कुछ बोलना पड़ेगा। आपकी संस्था का इतिहास मैंने अभी ही जाना। आप सब जानते होंगे कि भारत के युवकों के साथ मेरा ऐसा सम्बन्ध है, जिसे लगभग निजी कहा जा सकता है। अपने सार्वजनिक जीवन के आरम्भ से मैं एक बात यह मानता आया हूँ कि हमारे देश का भविष्य जवानों के हाथ में है और जो कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता भारत के युवकों की सेवाएँ प्राप्त कर सकेगा, वही देश के लिए कुछ कर सकेगा। इसलिए मैं तो आपके साथ दिल खोलकर बात करना चाहता हूँ। मुझे कोई भाषण नहीं देना है। वर्षों से दुर्भाग्यवश मुझे भाषण देने का ही काम करना पड़ा है, परन्तु यह मुझे जरा भी पसंद नहीं।

"युवकों का अध्ययन करने का मौका मिले, यह बहुत अच्छी बात है। दुनिया-भर के युवकों को, जिन्हें सेवा ही करनी हो, ख्याति का मोह छोड़ना चाहिए। उनका पहला और अन्तिम ध्येय सेवा ही होना चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि नेक दिली से की हुई सच्ची सेवा में जैसा आनंद आता है, वैसा दुनिया

की और किसी चीज़ में नहीं आता। जब कोई मनुष्य सेवा करने लगता है—सेवा के लिए ही नहीं, परन्तु और किसी हेतु से—तब उसे अरुचि होती है और वह थोड़े ही समय में उससे थक जाता है।

"तो फिर सच्ची सेवा का बदला क्या? मैंने हजारों युवकों को शिक्षित किया है, परन्तु सबसे पहले तो मैंने अपने-आपको ही शिक्षित किया है। मैंने अपने-आपको ही गढ़ना शुरू किया। इसका मुख्य अंग अन्दर और बाहर की शुद्धि है। शुद्धि का क्या अर्थ है, यह तो आप जानते ही होंगे। इसका अर्थ है, जीवन की पवित्रता। हिन्दू इसे ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म अर्थात् जीवन का आरम्भ। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इस पवित्रता का आदेश केवल हिन्दू-धर्म ने ही दिया है, ऐसा नहीं। यह सभी धर्मों की बुनियाद में है। मुसलमान धर्म में पाकदामन शब्द से इसका निर्देश किया गया है। ईसाई-धर्म और पारसी-धर्म में भी आपको यही जान पड़ेगा। यहूदियों के धर्म के बारे में अन्य धर्मों के बराबर मैं नहीं जानता, फिर भी इसमें शंका नहीं कि उसमें भी ऐसा ही होगा।

"इस समय युवकों में इसीकी खास जरूरत है। मैं देश के सभी भागों में फिरा हूँ और मुझे मालूम हुआ है कि हमारे युवकों का व्यक्तिगत चारित्र्य जितना चाहिए, उतना पवित्र नहीं है। यह चीज़ चिन्ता और दुःख पैदा करती है। यह क्यों होता है, इसके कारण तो कई दिए जा सकते हैं। परन्तु आप स्वयं पवित्र रहने का प्रयत्न न करें, तो आपका विनाश ही है। आपमें से बहुत यह कहेंगे कि व्यक्तिगत चारित्र्य की पवित्रता और सेवा का कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु आप जीवन में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे, त्यो-त्यो देखेंगे कि जो पवित्र जीवन नहीं बिताते, उनके मार्ग में अनेक विघ्न खड़े होते हैं। मैंने शुरू में कहा कि युवकों के साथ मेरा तो व्यक्तिगत सम्बन्ध है। आप इसका अर्थ समझिए। युवकों का निजी जीवन जितना मैं जानता हूँ, उतना बहुत कम जानते होंगे। मैं क्या कहना चाहता हूँ, यह आप समझ सकेंगे। एक युवक अंग्रेजी, संस्कृत और मातृभाषा में भले ही निष्णात हो, परन्तु यदि उसका व्यक्तिगत जीवन पवित्र न हो, तो उसके अंग ढीले पड़ जायँगे और जीवन के झंझावातों का सामना करने में वह अशक्त बन जायेगा। ऐसे कितने ही लोगों ने मेरे सामने खून के आँसू बहाये हैं। यह कहते समय मेरी नजर के आगे जो चित्र खड़ा होता है, उससे मैं काँपता हूँ। मैं एक किस्सा जानता हूँ। वह एक बहुत ही होनहार युवक था। वह एक उमदा कार्यकर्ता था और सत्य से बँधा हुआ था। वह एक शिक्षक था। आज वह अदृश्य हो गया है। वह कहाँ है, इसका मुझे पता नहीं। देश ने उसे खो दिया है। आज जब मैं यहाँ आया, तब समय थोड़ा होने पर भी आपसे ये दिल की बातें कहकर आपका समय ले रहा हूँ। बंगाल के युवक के जीवन से मैं अपरिचित नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि उसके मार्ग में अनेक प्रलोभन हैं।

"परन्तु उनसे छूटने का उपाय आपके अपने हाथ में है। गुजरात के एक कोने में पड़े हुए ज्ञानी लोगों को मैंने जो सलाह दी है, वह आपको भी देना चाहता हूँ। वहाँ कालीपरज नाम की एक जाति है। वह कालीपरज इसलिए नहीं कहलाती है कि वे लोग मेरे-आपके रंग से बहुत काले रंग के हैं। मगर असली कारण यह है कि ये लोग कुचली हुई स्थिति में हैं। दूसरे लोग उजली प्रजा कहलाते हैं। काली प्रजा इस उजली प्रजा से दबायी हुई है और लगभग उसकी गुलाम है। ऐसे लोगों को मैंने अपने देशबंधु कहने की हिम्मत की है। ये लोग शराब बहुत पीते हैं। मैंने उनके सामने चरखे की बात रखी और शराब न पीने की प्रतिज्ञा लिवायी, तब उसके पक्षों में बहुतों ने अपने हाथ उठाये। आप तो जानते होंगे कि बिना समझे हाथ उठाने को मैं अपने श्रोताओं से नहीं कहता, क्योंकि ऐसा करके मुझे डाउनिंग स्ट्रीटवाल पर कोई असर नहीं डालना है। मैं तो जब उनसे कुछ कराना हो, तभी हाथ उठवाता हूँ। मैंने यह बात रखी कि उन्होंने ही हाथ उठाकर सहमति प्रकट करने का आग्रह किया। मैं जानता हूँ दुनिया में ऐसे लोग भी हैं, जो व्रत लेते हैं और बाद में शाप देते हैं और मुकर जाते हैं। इसलिए इसका मुझे क्या भरोसा कि वे अपना दिया हुआ वचन पालन करेंगे? इसलिए उन्होंने जो कहा था, वह मैं आज आपसे कहना चाहता हूँ। मैं आशा रखता हूँ कि आप इसकी हँसी नहीं उड़ायेंगे और सन्निष्ठा से स्वीकार करेंगे।

"ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए सबेरे के समय में जल्दी उठकर ईश्वर का नाम लिया जाय और प्रार्थना की जाय कि प्रभु हमारी प्रतिज्ञाएँ पालन करने का हमें बल दे। आप एक बार अशुद्ध बन गये, तो फिर शुद्ध बनना मुश्किल है। इस बीच यदि थोड़ी भी श्रद्धा हो, तो कठिनाई में से निकलने का यह रास्ता है। तुलसीदास के हृदय में ऐसी श्रद्धा राम-नाम के प्रति थी। गीता एक महान् धर्म-ग्रंथ है। परन्तु मैंने गीता के बारे में जब कुछ भी नहीं जाना था, तब भी तुलसीदास के राम के विषय में जानता था। मैं नहीं कहता कि आप राम का ही नाम लें। ईश्वर को किसी भी नाम से भजें। मेरा तो इतना ही कहना है कि यदि आपको ऐसा लगता हो कि मैं जो कहता हूँ, वह शाश्वत महत्त्व का है, तो जैसे मैं शक्ति प्राप्त करने के लिए कहता हूँ, वैसे ही ईश्वर में श्रद्धा रखना सीखो, उसकी प्रार्थना करो, सुबह उठकर उसका नाम लो और रात को उसका नाम लिये बिना आँखें बन्द न करो। ऐसा करोगे तो यह नाम आपकी रक्षा करेगा और आपको हर प्रकार के कष्ट से बचायेगा। प्रार्थना में उद्धतता नहीं होनी चाहिए। ईश्वर तो सर्वज्ञ है। उससे कुछ छिपा नहीं है। वह सम्पूर्ण अविभक्त भक्ति चाहता है। आप वह करेंगे, तो आपका सब भला ही होगा।

"असहयोग बहुत बड़िया शब्द है। इसमें आत्मशुद्धि की भावना भरी हुई है। मुझे लगा कि यह मंत्र मैं छोटे बच्चे को भी दे सकता हूँ। इसकी सफलता के लिए तीन बातें करनी जरूरी हैं: अस्पृश्यता-निवारण,

हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य और खादी का अंगीकार। ये तीनों अनिवार्य हैं। आपको राजनैतिक मंच पर नाचना हो या नहीं, परन्तु ये तीन बातें जरूरी हैं। हिन्दू-मुसलिम-एकता के लिए आप स्वयं एक बार अपने मन में निर्णय कर लें तो फिर आपको स्वयं कोई परिश्रम नहीं करना होगा। इसी तरह हिन्दू अपने मन से अछूतपन निकाल दें तो फिर उन्हें खुद कुछ करने को नहीं रह जाता। परन्तु हमें गरीबों के साथ एक होना हो, तो उसका कुछ-न-कुछ प्रत्यक्ष दर्शन कराना चाहिए। वह है चरखा। यह आपके दिल में बसे, यह मैं चाहता हूँ। इससे उनकी और परिणामस्वरूप सारे देश की समृद्धि में वृद्धि हो। चरखा कातने से आप पर कोई भार नहीं आ पड़ेगा और यह नहीं कहा जायगा कि आपने कोई नीचा देखने लायक काम किया। उल्टे आप पवित्र बन सकेंगे। मैं जानता हूँ कि बहुत लोग ऐसे हैं, जो काटते हैं, परन्तु पवित्र नहीं हैं। परन्तु ऐसों की परवाह न कीजिए। मेरे पास ऐसे अनेक पत्र युवकों की तरफ से आये हुए रखे हैं, जिनमें वे बताते हैं कि उन्हें तो कातने से लाभ ही हुआ है। कातने में आपको पूनी और चरखे के यंत्र-कार्य के साथ हमेशा झगड़ना होगा। और उसे ठीक-ठाक करने में आप लगे रहेंगे, तो आप शांत हो जायँगे। चरखा इसीलिए ढूँढ़ा गया है।

"ईश्वर आपकी रक्षा करे और मैंने जो कुछ कहा है, उसमें से थोड़ा भी समझने लायक शक्ति आपको दे। मेरी बताई हुई पवित्रता जीवन की बुनियाद में नहीं डालेंगे तो कोई आशा नहीं है।"

चार बजे से बिना रुके कार्यक्रम जारी ही रहा है।

रात को नौ बजे कुछ अछूत भाई आये। उनमें से एक श्री भीम देवदास वकील हैं और पहले विधानसभा के सदस्य थे। इनके साथ दो शिक्षक थे। उन्होंने अत्यंत सौम्यता, विवेक और विनय से बातें कीं। उनसे मालूम हुआ कि भारत के अन्य स्थानों की तरह बंगाल में भी अछूतों में अनेक जातियाँ हैं—साहा, कैवर्त, नामशूद्र वगैरह। परन्तु इनकी बातचीत से ऐसा लगा कि बंगाल में गुजरात जैसी अस्पृश्यता नहीं है।

गांधीजी ने पहले नामशूद्रों की कठिनाइयों के बारे में पूछा। उन्होंने कहा: "नामशूद्र तो अधिकांश घरों में जा सकते हैं। केवल जहाँ पानी रखा हो, उस कमरे में हम नहीं जा सकते। उच्च वर्ण के लोग हमारे हाथ का पानी नहीं पीते। ये लोग हमें मन्दिर में नहीं जाने देते और पाठशाला में हमारे लड़कों को दूसरे लड़कों के साथ एक बेंच पर नहीं बैठने देते। हमारी आबादी बीस लाख की है। हमारी जाति में दो सौ ग्रेजुएट हैं। थोड़े-से वकील भी हैं। हम अपनी ये कठिनाइयाँ किस प्रकार दूर कर सकते हैं?"

गांधीजी ने कहा: "आपने बहुत बढ़िया प्रश्न पूछा है। मैं इस बारे में आपसे कहने ही वाला था। ये मुश्किलें दूर करने के अनेक उपाय हैं। कुछ लोग कहते हैं कि कठिनाइयाँ खड़ी करनेवालों के विरुद्ध हिंसा अपनायी जाय और उनसे सुधार छीने जायँ। ऐसी आदमियों से मेरी पूना में भेट हुई थी। ये लोग मुझे मानपत्र देना चाहते थे। मानपत्र न तो मराठी में था, न हिन्दी में। वह गुजराती में था। इन लोगों में कोई गुजराती पढ़ा हुआ युवक था और उसका आग्रह था कि मानपत्र गुजराती में ही देना चाहिए। इस मानपत्र में यह बताया गया था कि 'उच्चवर्ण के लोग यदि अपना व्यवहार न सुधारें, तो हम उनसे लड़ेंगे और उनकी हत्या करेंगे।' मैंने इसका जवाब देते हुए बताया कि 'आप ऐसा करेंगे, तो आप सबकी सहानुभूति खोयेंगे, आपका जो हेतु है, वह मारा जायगा और सुधारक आपके लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उन सबको आप नाकामयाब बनायेंगे।' एक और वर्ग भी है। मुझे उसका अनुभव दक्षिण-अफ्रीका में हुआ था। उसने धमकी दी थी कि 'यदि हमारे दुःख दूर नहीं किये गये, तो हम ईसाई या मुसलमान बन जायँगे।' मुझे उन्हें बहुत कटू वचन कहने पड़े। मैंने कहा: 'यही आपके धर्म की परीक्षा हो रही है; और आपके प्रति अच्छा व्यवहार नहीं रखा जाता, इसी कारण यदि आप धर्म छोड़ देंगे, तो आपके धर्म की कोई भी कीमत नहीं है। मैं विलायत गया था, तब मुझे जाति-बाहर कर दिया गया था, परन्तु इसी कारण मैंने हिन्दू-धर्म छोड़ नहीं दिया था।' तीसरा मार्ग आत्म-शुद्धि का है। अर्थात् आपके विरुद्ध जो-जो आक्षेप किये जाते हैं, उन सबसे आपको मुक्त होना चाहिए। आप मांस खाते हैं क्या?"

जवाब: "नहीं। कोई-कोई ही खाते होंगे। हममें जो वैष्णव हैं, वे मांस नहीं खाते। परन्तु हम मछली तो जरूर खाते हैं।"

गांधीजी: "मुर्दार मांस खाते हैं क्या?"

जवाब: "नहीं, कोई नहीं।"

गांधीजी: "तो फिर आपके लिए करने को बहुत थोड़ा रह जाता है। परन्तु ये लोग आपके विरुद्ध जो कुछ कहते हैं, उससे छूटने की आपको कोशिश करनी चाहिए। ऐसा करके आप उनके पूर्वग्रहों का अन्त कर सकेंगे। यह बहुत लम्बा उपाय है। परन्तु यही ठोस उपाय है। मैं जानता हूँ कि आप चाहें तो कड़ा रूख अपनाकर उन्हें ठिकाने ला सकते हैं। उदाहरणार्थ, शहरों में यदि मेहतर हड़ताल कर दें और कह दें कि 'जब तक हमें दूसरों के बराबर का नहीं माना जाय और अमुक कठिनाइयाँ दूर न कर दी जायँ, तब तक हम काम नहीं करेंगे।' तो ज़रूर सफल होंगे। परन्तु ऐसा करके आप उनके दिल नहीं बदल सकते, उलटे आपके प्रति उनके मन में

जो धिक्कार है, वह बढ़ेगा। इसलिए कहता हूँ कि आत्म-शुद्धि ही एकमात्र उत्तम उपाय है। बाकी का काम मेरे जैसे सुधारक पर छोड़ दीजिए। इस काम के लिए मैं यथासंभव प्रयत्न कर रहा हूँ, क्योंकि मेरे खयाल से तो यह एक धार्मिक कार्य है; और मैं जानता हूँ कि यदि हम नहीं सुधारेंगे, तो हिन्दू-धर्म नष्ट हो जाएगा।"

सवाल: "आप कहते हैं कि सुधारकों पर विश्वास रखो। हमें आप पर विश्वास है, परन्तु दूसरों पर विश्वास कैसे जमे? ये लोग अस्पृश्यता मिटाने की बात तो ज़रूर करते हैं, परन्तु अपने अन्तर में तो यह हरगिज नहीं मानते कि अछूतपन मिटाये बिना स्वराज्य नहीं मिलेगा। डॉ. रॉय को, जो हमारे लिए खूब लड़ रहे हैं, हमारे लिए सच्ची लगन है, परन्तु श्री सी. आर. दास जैसे आदमी भी हमारे लिए कुछ खास नहीं करते।"

गांधीजी: "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उनके मन में आपके विरुद्ध कुछ नहीं है। सुधार तो जितने मैं चाहता हूँ, उतने ही वे चाहते हैं। इस प्रश्न में मेरे जितना रस वे क्यों नहीं ले सकते, इसका कोई कारण आप दे सकते हैं?"

जवाब: "जी हाँ। उनके पास अनेक जंजाल हैं और समय भी नहीं है।"

गांधीजी: "हाँ। यही बात है। वे यह मानते हैं कि राजनैतिक कदम उठाकर हम अंग्रेजों को हमेशा दबाकर नहीं रखेंगे, तब तक कोई काम नहीं हो सकता। मेरे और उनके बीच में यही एक मतभेद है। परन्तु अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए वे पूरी तरह उत्सुक हैं।"

जवाब: "हम यह मानते हैं। परन्तु आप तो हमें सुधारकों पर आधार रखने को कहते हैं। साहब, आप तो जानते हैं कि जब हम लड़ाई का मार्ग अपनाते हैं, तभी ये लोग झुकते हैं और यदि हम लड़ाई न करें, तो हमारे प्रति इनका तिरस्कार और धिक्कार उतना ही जारी रहता है। ... कहते हैं कि यदि ये लोग हमारा पानी न लें तो हमें भी इनका पानी नहीं लेना चाहिए।"

गांधीजी: "आप जानते हैं कि इन्हें तो चित्तभ्रम हो गया है। ऐसा कुछ करते समय देख लेना। अपना व्यवहार आप गौरवपूर्ण रखें। मैं यह तो मानता ही नहीं कि आपके हाथ का पानी न लेनेवाले के लिए आपके मन में प्रेम होगा। परन्तु उनके प्रति अपने मन में धिक्कार न रखें, इतना आप जरूर कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ गौरवपूर्ण व्यवहार, न कि जहरीला बर्ताव।"

सवाल: "हम राष्ट्रीय कार्यक्रम में किस ढंग से भाग ले सकते हैं?"

गांधीजी: "क्यों नहीं ले सकते? और आज राष्ट्रीय कार्यक्रम क्या है? अस्पृश्यता-निवारण, खादी-प्रचार और हिंदू-मुसलिम-ऐक्य। मेरा खयाल है कि अन्त में तो ये तीनों कार्यक्रम अस्पृश्यता के प्रश्न के निपटारे में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। हिंदू-मुसलमानों के बीच एकता स्थापित हो जाय, तो कहा जा सकता है कि प्रश्न ज्यादातर निपट गया। और खादी से तो भारत की गरीबी का प्रश्न हल हो जाता है। परंतु मैं आपको इतना कहूँगा कि कोई स्वराज्य की ऐसी योजना लेकर आये, जिसमें आपका स्थान न हो और मिशनरी लोग आपके लिए विशेष मांगोंवाली योजना लेकर आये, तो उनसे सावधान रहें। दोनों को मना कर दें।"

सवाल: "परंतु हमारी कठिनाइयों का अंत किस तरह किया जाय? नाई हमारी हजामत करने से इनकार करते हैं और धोबी हमारे कपड़े धोने से इनकार करते हैं। हम करें क्या?"

गांधीजी: "यह सब अपने-आप बंद हो जायगा। आपको मनुष्य-स्वभाव में रहनेवाली इनकी सद्वृत्ति पर भी विश्वास रखना पड़ेगा। आप स्वयं जब शुद्ध बन जायँगे, तब इन्हें अपने-आप अपने कर्तव्य का भान हो जायगा। मैं जब दक्षिण-अफ्रीका में था, तब ऐसी ही मुश्किलों में से गुजरा था। वहाँ मैंने जो किया था, मैं चाहता हूँ कि वही आप करें। आप जानते हैं मैंने क्या किया था? वहाँ के गोरे नाइयों ने मेरे बाल कातने से इनकार कर दिया। इसलिए मैंने एक कैंची खरीदी और एक सुंदर प्रातःकाल में शीशे के सामने बैठकर मैं अपने बाल कातने लगा। उसी समय एक यूरोपियन मित्र आ पहुँचे। उन्होंने मुझे यह काम करते देखा। उन्होंने कहा: 'यह क्या कर रहे हैं?' मैंने जवाब दिया: 'यदि गोरे नाई मेरे बाल कातने से इनकार करें तो मैं यह काम स्वयं ही क्यों न कर लूँ?' इस पर उन्होंने स्वयं कैंची हाथ में ली और मेरे बाल कातने शुरू कर दिये। परिणाम यह हुआ कि मेरे बालों की कटाई बहुत मजेदार हो गयी। थोड़े बाल यहाँ रह गये और थोड़े वहाँ रह गये; किसी जगह ठीक कटे और किसी जगह कैसे ही कट गये। मेरे पुत्रों को स्कूल भेजने में भी मुझे ऐसी ही कठिनाई हुई थी। वहाँ के लोग कहते: 'अफ्रीकों के स्कूल में आपके पुत्रों को एक अपवाद के रूप में भरती कर लेंगे।' मैंने कहा: 'नहीं। और सब भारतीय बच्चों को इस स्कूल में जाने की छूट न हो तो मैं अपने पुत्रों को वहाँ नहीं भेजूँगा।' और मैंने नहीं भेजे। मुझ पर ऐसा आक्षेप भी हुआ कि मैंने अपने पुत्रों को स्कूल की पढ़ाई से वंचित रखा। ये तो मैंने आपको दो ही उदाहरण दिये। परन्तु ऐसी तो अनेक कठिनाइयाँ थीं। और चूँकि मैं उनमें से गुजरा हूँ, इसलिए मैं आपकी भावनाएँ समझ सकता हूँ। एक बार मैं एक सिगराम* में चढ़ा और अपनी जगह ले ली। एक और मुसाफिर आया और मुझे वहाँ से उठ जाने को कहा। मैं वहाँ से उठकर ड्राइवर के पास की जगह पर बैठ गया। इस जगह पर हवा अच्छी आती थी। इस पर वह मुसाफिर मेरे पास आया और मुझे वहाँ से भी उठ जाने और अपने पैर के

पास बैठने को कहा। मुझे लगा कि यह तो सहन नहीं हो सकता। मैंने उठने से इनकार कर दिया। इस पर वह मेरे मुँह पर तड़ातड़ तमाचे मारने लगा। परन्तु मैं तो अपनी जगह से चिपटा ही रहा, हटने से इनकार कर दिया और कठघरे के पीतल के सिरिये को पकड़े रहा, ताकि वह धक्का मारकर मुझे नीचे न गिरा सके। इस आदमी के ऐसे व्यवहार से दूसरे यात्रियों को इतना अधिक आघात लगा कि वे उसे मना करने लगे। उन्होंने कहा: 'अंदर बैठने का इसे हक है, फिर भी तुमने इसे अंदर नहीं बैठने दिया। और अब तुम इसे ड्राइवर के पास भी बैठने नहीं देते, इसका क्या अर्थ?' केवल शरम के मारे वह वहाँ से हट गया। ऐसे सब अनुभव मुझे होने पर भी आप तो जानते हैं कि समय बीतने पर मैं इन लोगों के पूर्वग्रहों को हटा सका और वे हमारे लोगों की तरफ इज्जत की निगाह से देखने लगे। वहाँ मैं इनका प्रतिकार नहीं कर सकता था, क्योंकि मुझे दिखता था कि भारत में अछूतों के प्रति हमारे व्यवहार का ही फल हम भुगत रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि साम्राज्य में यदि हम अछूत जैसे हैं, तो अपने ही कर्मों से हैं। और यदि हम समय पर चेतकर इस बुराई को दूर नहीं करेंगे, तो हिन्दू-धर्म का इस दुनिया से नाश हो जायगा।"

सवाल: "परन्तु साहब, यह सब होने पर भी हिन्दू-धर्म तो युगों से चलता आ रहा है। अछूतपन के कारण अब इसका नाश कैसे हो जायगा?"

गांधीजी: "क्या दुनिया के कुछ भागों में मनुष्य-भक्षण का रिवाज नहीं था? और क्या हमारे ही देश में सती होने का रिवाज नहीं था? ये दोनों क्या आज बंद नहीं हो गये? इनको बंद होना ही था। यदि ये बंद न होते, तो संस्कृति का नाश हो जाता। और आज सब जगह इसके बारे में भान पैदा हो गया है, इसलिए हिन्दू-धर्म की परीक्षा हो रही है। उसे यदि कायम रहना होगा, तो उसे इस पाप को मिटाना ही होगा।"

सवाल: "तो फिर साहब, हम सब कांग्रेस में भरती हो जायँ?"

गांधीजी: "हाँ, राष्ट्रीय कार्यक्रम को आपसे हो सके, उतनी मदद करनी चाहिए। इस कार्यक्रम को अपनाइए, अपने-आपको शुद्ध बनाइए और विशेष रूप से यह याद रखिए कि चारित्र्य की शुद्धता का ही खास असर पड़ता है। अन्त में तो चारित्र्य पर ही सारा आधार है।"

ये लोग जाने को उठे तो गांधीजी ने कहा: "आपके साथ ये बातें करने का मुझे मौका मिला, इससे मुझे बहुत आनंद हुआ है।"

अछूत-वर्ग में से इतने समझदार और विवेकी सज्जन त्रावणकोर या गुजरात या और कहीं भी अनेक मिलने आनेवालों में नहीं मिले। उनके जाने के बाद गांधीजी बोले: “इनके साथ का यह वार्तालाप सचमुच आनंददायक था। इन्होंने कितनी करुण कथा कही? और वह भी कितने विनय और विवेक से?”

---

* महादेवभाई ने ट्रागगाड़ी का उल्लेख किया है। परन्तु आत्मकथा में सिगराम का उल्लेख है, इसलिए इसे स्वीकार किया है। यह किस्सा बहुत मशहूर है।

३-५-१९२५

आज अस्पृश्यता-निवारण परिषद् में अछूत तो इने-गिने ही थे, इसलिए अछूतों को ही सम्बोधन करके गांधीजी बोले :

"ईश्वर की नजर में सब मनुष्य समान हैं। और हम यदि ईश्वर को मानते हों तो हमारी दृष्टि में भी ऐसा ही होना चाहिए। परन्तु आज हिन्दू-धर्म में ऊँच-नीच की गंदगी घुस गयी है। दक्षिण में तो अछूत पूरी तरह गुलाम हैं। वहाँ अस्पृश्यों की जैसी दुर्दशा है, वैसी यहाँ नहीं है। इसलिए यहाँ के ऊँच-नीच के सामान्य भेद के लिए मैं तैयार था। फिर भी ये भेद अच्छे तो हरगिज नहीं कहे जा सकते।

"दो-तीन अस्पृश्य भाई मुझसे मिलने आये थे। इनके साथ की चर्चा मेरे जीवन में कभी-कभी मिलनेवाला सुअवसर था। मैंने जो कहा, उसे समझने लायक बुद्धिवाले भाइयों से मेरी सीधी-सीधी बात हुई। इनके साथ की बातचीत मुझे जीवन-भर याद रहेगी। उनकी बात पर से मुझे लगा कि ऊँच-नीच की यह गंदगी यहाँ घुसी हुई है। मैंने इनसे कहा है कि जो सुधार करना है, वह कथित उच्च वर्ण को करना है। अछूतपन की यह बुराई हिन्दू-धर्म में से निकालना उसका फर्ज है। जैसे हिन्दू-धर्म के, वैसे ही राष्ट्रीयता के मर्म में अस्पृश्यता की गंदगी घुसकर उसे खा रही है। यह गंदगी मरी से भी ज्यादा संक्रामक है। इसने पारसी, ईसाई, यहूदी, मुसलमान सबको बिगाड़ा है। और इसीलिए भारत के बाहर सर्वत्र भारतीय लोग अछूत माने जाते हैं। इसी कारण गोखले कहते थे कि 'हम अपने कर्मों का फल ही भोग रहे हैं और हम अपने देशबन्धुओं के साथ जो बर्ताव रख रहे हैं, उसका उचित बदला हमें मिल रहा है।' उनका यह कहना आज भी उतना ही सच है।

"यह गंदगी दूर कैसे हो? मुझसे जो भाई मिले, उनसे मैंने कहा कि 'यह तो जो अछूत नहीं हैं, उनकी प्रयत्न से हो सकता है।' तब उन्होंने सरलता से पूछा: परन्तु आप हमें शतरंज के मोहरों की तरह इस्तेमाल करें तो? शायद स्वराज्य मिलने के बाद आप हमें कह दें कि तुम अपने रास्ते जाओ और हम अपने। तब हमारा क्या हो?' उनकी इस आलोचना में सत्य था। हमें इन लोगों को आश्वासन देना चाहिए कि अछूतोद्धार की प्रवृत्ति में राजनैतिक हेतु कुछ भी नहीं है। हिन्दुओं के लिए केवल धार्मिक कर्तव्य-पालन का ही हेतु है। मैंने तो कई बार कहा है कि यदि यह बुराई हिन्दू-धर्म में से नहीं निकाली गयी तो दुनिया में इस धर्म का नाश हो जायगा। इसमें केवल प्रायश्चित्त करने और अछूतों का ऋण चुकाने का ही हेतु है। जब तक हम यह ऋण चुका नहीं देते, तब

तक यह नहीं कह सकते कि हमने हिसाब साफ कर दिया। हम जब तक यह नहीं करते, तब तक अपने-आपको हिन्दू—और आपको बुरा न लगे तो कहूँगा कि मनुष्य—कहने के लायक नहीं होंगे।

"एक अछूत यदि मुसलमान या ईसाई बन जाय तो समाज में उसका स्थान ऊँचा हो जाता है। यह स्थिति आघात पहुँचाती है। इतनी अधिक कठिनाइयाँ होने पर भी जो अस्पृश्य अपने धर्म से चिपटा रहता है, धर्म उसे छोड़ देता है तो भी वह धर्म को नहीं छोड़ता, उसके प्रति आदर उत्पन्न होता है। मेरे अस्पृश्य मित्रो, आपको लिए जो मार्ग है, उस पर चलने में डरिए नहीं। युगों से आपके धर्मभाई आपको गुलामी की हालत में रखते रहे हैं, फिर भी आपने अपना धर्म नहीं छोड़ा। यही आपका सच्चा फर्ज है।

"सिलहट के एक युवक ने मुझसे पूछा: 'मैं अकेला क्या कर सकता हूँ?' मैंने कहा: 'अस्पृश्यों की सेवा करो।' वह कहता है: 'मैं ऐसा करूँ तो मुझे अपनी जातिवाले जाति के बाहर निकाल दें।' मैंने कहा: 'इसमें कोई हर्ज नहीं। अपने-आपको शून्य बना दो। यह नास्तिक बनकर नहीं और न अपना धर्म छोड़कर, परन्तु अस्पृश्यों की सेवा करके। यदि तुममें कोई नूर ही न हो तो तुम अछूतों को छओ, इससे कोई हेतु पूरा नहीं होता। परन्तु तुम यदि कुछ प्रतिष्ठा रखते हो और जाति-बाहर हो जाओ, तो मैं बहुत खुश होऊँगा।' परन्तु ऐसे कारण से प्रतिष्ठा खोने को हमारे लोग तैयार नहीं हैं।

"काठियावाड़ में एक स्थान पर मैं गया, तो वहाँ हजारों आदमियों ने मुझे ऐसा खयाल कराया कि वे अस्पृश्यता के विरुद्ध हैं। मैं वहाँ से चला, तब एक उत्तम कार्यकर्ता को वहाँ जाने को कह आया था। ये कार्यकर्ता ब्राह्मण हैं, परन्तु अपने काम की मदद के लिए वे अपने साथ एक अंत्यज बालक को रखते हैं। यह बालक तो ऐसा है कि उसे देखकर आप कह नहीं सकते कि उसमें और आपके स्वच्छ-से-स्वच्छ लड़के में कोई अन्तर है। जब मैंने इन दोनों को वहाँ रखने के लिए इन लोगों से कहा, तब वे खुश हुए, क्योंकि उस गाँव के अंत्यजों की सेवा के लिए उनकी जरूरत थी। परन्तु जब वह कार्यकर्ता और वह अछूत बालक वहाँ गये, तब जिस मनुष्य ने उन्हें बुलाया था, वह डर गया और उन्हें स्वीकार न कर सका। उस समय उस मनुष्य की परीक्षा हुई और वह उसमें पास नहीं हो सका। वह गिरा और हिन्दुत्व खो बैठा। आपसे ऐसे मौके पर मैं बहादुरी की आशा रखता हूँ।

"फिर अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ वर्णाश्रम का नाश नहीं है, यह भी आपको समझना चाहिए। मानव-जाति की सेवा करने के लिए मुझे किसी मनुष्य के साथ खाने या उसके साथ अपनी लड़की का विवाह करने की जरूरत नहीं रहती। एण्ड्रूज मेरे साथ नहीं खाते, न शौक्तअली खाते हैं, फिर भी मैं दोनों को माजाये भाइयों से अधिक मानता हूँ। शौक्तअली के साथ बैठकर मैं खा नहीं सकता, क्योंकि वे मांसाहारी हैं। शौक्तअली को न

जँचनेवाली कोई चीज मैं खाता हूँ, तो वे भी मेरे साथ न खायें। परन्तु इससे मेरे प्रति उनके प्रेम में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। खाने-पीने और विवाह के अंकुशों से सेवा करने में कोई बाधा नहीं होती। किसी भी प्राणी की सेवा करने में ईश्वर भी मेरे बीच में आये, तो मैं उसका विरोध करूँगा। परन्तु एक बात की अधिक सफाई कर दूँ। आप अछूत अथवा नामशूद्र के साथ खायें-पियें या विवाह-सम्बन्ध करें, यह मैं नहीं चाहता, परन्तु जितना व्यवहार शूद्रों के साथ करें, उतना इनके साथ भी करें, यह तो जरूर चाहता हूँ। मैंने सुना है कि नामशूद्र के हाथ का पानी हिन्दू नहीं पीते। यदि शूद्र के हाथ का पानी आप पीते हैं, तो नामशूद्र के हाथ का पानी न पीना अपराध है। मैंने सुना है कि नामशूद्रों को नाई और धोबी की सेवा नहीं मिलती। यह मानव-जाति के प्रति अपराध है। किसी भी प्राणी की सेवा करने से इनकार करना उच्च भावना नहीं है।

"मैं जानता हूँ कि मनुष्य भावनाओं से भरा हुआ है और हमारे जीवन उनसे प्रेरित होते हैं। परन्तु यदि किसी मनुष्य की भावनाएँ कदम-कदम पर घायल होती हों, तो हम आत्मविश्वास खो बैठेंगे और सेवा के लिए निकम्मे हो जायँगे। जो भावना दुखाता है और जिसकी भावना दुखती है, वे दोनों खराब हैं। 'सृष्टि सुन्दर है'* वगैरह भाववाला जो गीत उस पादरी ने गाया, वह बहुत अच्छा है। वे कहते हैं, सो सच है। वे क्या करते हैं, इसका उन्हें भान नहीं है। इसलिए हम, जो शिक्षित हैं, उनका हिन्दू-धर्म से यह बुराई निकाल देना धर्म हो जाता है। ऐसा करते हुए जाति-बाहर रहना पड़े तो उसे सहन कर लिया जाय और इनसे पानी लेना पड़े तो ले लिया जाय। अब तक हम इस प्रश्न के साथ खिलवाड़ करते रहे हैं। परन्तु अब समय आ गया है कि हरएक को अपने-आपसे पूछना चाहिए कि मैंने इनके लिए क्या किया है। इससे पानी का प्याला लिया है? इनके दुःखों और कठिनाइयों को मैंने समझा है? अभी जो कष्ट अस्पृश्य उठा रहे हैं, वे बने रहें, तो मैं स्वयं तो इसके बजाय यही चाहूँगा कि मेरी पुत्री हमेशा अविवहित रहे।"

---

* इस गीत के बारे में अधिक विवेचन आगे आयेगा।

प्रान्तीय परिषद् के समय दूसरी परिषदें भी होती ही हैं। विद्यार्थियों को गांधीजी की सेवा में मानपत्र अर्पण करना था। परिषद् टिन की चादरोंवाली एक नाट्यशाला में थी। मानपत्र लेने के लिए विद्यार्थी गांधीजी को लेने आये, तब गांधीजी कात रहे थे। गांधीजी ने हँसते-हँसते कहा: "विद्यार्थी यहाँ नहीं आ सकते? मुझे मानपत्र लेने के लिए जाना ही चाहिए? यदि वे यहाँ आये तो मैं इन्हें मानपत्र के उत्तर में भाषण भी दूँगा और कुछ अधिक दूँगा।" परन्तु यह सन्देश लेकर कौन जाय? गांधीजी ने आचार्य कृपालानी को, जो आजकल

हमारे साथ हैं, यह सन्देश ले जानेवाला दूत बनाया। दूत ने अपना भाग भाग अच्छा अदा किया: "देखो, गांधीजी को कातते हुए लाने की अप्रेक्षा कातते हुए देखना क्या अच्छा नहीं है? गांधीजी सिपाही हैं, इसलिए तुम भी सिपाही की तरह कवायद करते हुए दो-दो तीन-तीन की कतार में वहाँ जाओ। और इस झुलस डालनेवाले तंबू की अप्रेक्षा खुली हवा में बैठो, यह अच्छा है।" विद्यार्थियों और उनके मुखिया श्री सुहरावर्दी ने इसे तुरंत स्वीकार कर लिया और विद्यार्थी 'वंदे मातरम्' पुकारते-पुकारते गांधीजी के डेरे पर आये। गांधीजी सो गये थे। उन्हें जगाया गया। दोपहर के दो बजे विद्यार्थी आनाकानी किये बिना चले आये, यह देखकर गांधीजी खुश हो गये। तुरंत चबूतरे पर कुछ बिछाया गया और गांधीजी चरखा लेकर बैठ गये। सामने विद्यार्थी सहन में बैठे। श्री सुहरावर्दी ने मानपत्र पढ़कर सुनाया और कातते-कातते गांधीजी ने इस प्रकार भाषण दिया:

"तुमने मानपत्र दिया, इसके लिए तुम्हारा आभार मानता हूँ। अधिक आभार तो इसलिए कि तुमने यहाँ तक आने का कष्ट किया। मैंने तुम्हें संदेश भेजा था, वह तो आधा मजाक में ही भेजा था। मुझे तुम्हें कातने का पदार्थपाठ देना था और तुम्हें समझाना था कि कातना भारत के उद्धार के लिए अनिवार्य धर्म है। आज तो तुम पूनी से एक धागा निकलते देखते हो, परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक धागा निकलता जाता है, वैसे ही भारत के भाग्य की डोरी खींचता जा रहा हूँ। प्रत्येक धागा निकलता जाता है, वैसे-वैसे मेरा विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि चरखे के बिना हमारे देश का उद्धार नहीं है। इसलिए तुमसे मैं यह चाहता हूँ कि जो समय बातें करने में, गप्पें लगाने में, खेलने-कूदने में बिताते हो, उसमें से केवल आधा घंटा निकालकर उसे कातने के लिए देते रहो।"

फरीदपुर जिले का मुख्य शहर है। तमाम जिले में मुख्य आबादी मुसलमानों की है। पाँच हिस्सा आबादी मुसलमानों की होगी। परन्तु प्रान्तीय परिषद् में उंगलियों पर गिनने लायक मुसलमान दिखाई दे रहे थे। दूसरे दिन गांधीजी अंजमून में गये और वहाँ से कुछ मुसलमानों को ले आये, तब कुछ दीखने जैसी संख्या नजर आयी।

परिषद् स्वराज्यवादियों की थी, यह कह सकते हैं। परन्तु स्वराज्यवादियों में कुछ उग्र लोग जमा हुए थे। श्री देशबन्धु ने इन लोगों की उग्रता देखकर अहिंसा पर ज्यादा जोर दिया। इसे उनमें से अधिक न सह सके और जरा विद्रोह-सा हुआ। इनमें से जल्दबाजों ने छोटी पत्रिकाएँ बाँटीं। उनमें बताया गया था कि न तो गांधी का चरखा काम आएगा, न दास की विधानसभा। इसलिए दूसरे दिन गांधीजी ने चरखे के रहस्य पर और श्री दास के नेतृत्व से ही बंगाल का उद्धार है, इस विषय पर अपने भाषण में जोर दिया।

४-५-१९२५

परिषद् को सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

"स्वागत-समिति के अध्यक्ष और सभापतिजी ने मेरे प्रति जो प्रेमपूर्ण शब्द कहे, उनके उत्तर में मुझे कुछ-न-कुछ बोलना चाहिए। विषय-समिति ने जिस एकमत से काम सम्पन्न किया, उसके लिए उसे बधाई देता हूँ। यह तो बहुत जानी हुई बात है—हमारे यहाँ तो कुछ छिपा हुआ नहीं होता; और इसके आश्वासन के लिए हम तो खुफिया पुलिस के आदमियों को भी निमंत्रित करते हैं—कि कुछ लड़ाई और मतभेद थे। परन्तु जिसका अन्त भला, उसका सब भला। ऐसे मतभेद न हों, ऐसी एक भी विषय-समिति मैं नहीं जानता। परन्तु मैं यह जानता हूँ कि सब किये गये निर्णयों का पालन करेंगे। ब्रिटिश मंत्रिमंडल की भी अपनी गुप्त बातें होती हैं। वे भी हमारे बराबर ही अभागे होंगे। परन्तु यह जानकर हम प्रसन्न होते हैं कि हम सब एक ही हेतु से प्रेरित होकर एक हो सकते हैं।

"सभापतिजी के भाषण की अंग्रेजी अनुवाद की एक प्रति मुझे पहले से भेज दी गयी थी। इससे मुझे आनंद हुआ था और मैंने गौरव अनुभव किया था। इसके साथ एक छोटा-सा प्रेमपूर्ण पत्र भी था। मैंने यह भाषण शुरू से अन्त तक पढ़ लिया और सोच रहा था कि मेरे मन में जो भावनाएँ थीं, उनमें से किसीने उन्हें चुरा तो नहीं लिया? परन्तु भाषण की भाषा एक विद्वान् की थी, मेरे जैसे चरखा कातनेवाले और नामशूद्र जैसे देहाती की नहीं थी। इसमें जो लिखा है, उसके एक-एक शब्द के साथ मैं सहमत हूँ। कोई कहेगा कि इसी कारण यह भाषण बिलकुल नीरस हो, यह पूरी तरह संभव है। परन्तु यह ऐसा नहीं है। जिस चीज के पढ़ने से इन्सान उकताये नहीं, वह रसमय होनी ही चाहिए।

"इसमें प्रकट किये गये विचार देखें तो सही। इसमें क्या है? कलकत्ते में जो नीति अपनायी गयी थी,* उसका हम अनुसरण करना चाहते हों तो इस भाषण में ऐसा कुछ नहीं है, जो हमें आपत्तिजनक लगे। कलकत्ते में हुए कांग्रेस-अधिवेशन के समय पहली ही बार जो नीति स्वीकार की गयी थी, उसका केवल महत्त्वपूर्ण पुनरुच्चारण ही इसमें है। यह बात नहीं कि इससे पहले कांग्रेस हिंसा को मानती थी। परन्तु सन् १९२० में आपने दुनिया को एलान करना पसन्द किया कि अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए हम शांतिपूर्ण और उचित—अर्थात्—अहिंसक—उपाय आजमायेंगे। इसके बाद के इन चार-पाँच वर्षों में, जिनके हाथ में लड़ाई की बागडोर

थी, उन्होंने यही नीति जारी रखी होती, तो कितना अच्छा होता? मैं होता, तो भी आप इससे कम या ज्यादा की मुझसे आशा नहीं रख सकते थे।

---

* सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का निर्देश है।

"कुछ लोग मिर्च-मसालेवाली लड़ाई चाहते हैं। परन्तु हमने तो उसका निषेध किया है। मिर्च-मसाले से, मारपीट से या ऊधम से हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। और किसी उच्च भावना का विचार किये बिना केवल लाभ प्राप्त करने के लिए हम इस रास्ते जायँगे, तो हम राष्ट्र को खड़ा नहीं कर सकेंगे और उसकी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेंगे। हमारे सामने जिस प्रकार के प्रश्न हैं, वैसे दूसरे देशों के सामने नहीं हैं। हमें अनेक दलों का और परस्पर विरोधी रवैयों का मुकाबला करना है। शुद्ध और सच्चे उपायों के सिवा अन्य किसी प्रकार क्या हम एकता प्राप्त कर सकेंगे? बंगाली मानता है कि सारा भारत बंगाल में समा जाना चाहिए। गुजराती मानता है कि मैं भारत पर राज करूँ। बहादुर मराठा मानता है कि मैं भारत का भावी तैयार करूँ। मुसलमान भी निकट भूतकाल को याद करके ऐसा सोचता है। यह सब देखकर समझ में आयेगा कि हम तो किसी भी समय फटनेवाली सुरंग पर बैठे हैं। इसलिए हमने सत्य और अहिंसा की नीति अपनायी है। स्वराज्य मिलने के बाद आपको जो नीति अपनानी हो, सो अपना लेना। मेरे लिए तो यह नीति मेरे जीवन का पहला और अन्तिम श्वास है। मैं चाहता हूँ कि मेरे भीतर की अहिंसा की इस तमन्ना और प्रेम की छूत प्रत्येक मनुष्य को लगे। मैं जानता हूँ कि प्रत्येक युवक इस देश के लिए जैसे जीना चाहता है, वैसे ही मरने को तैयार है। मैं जानता हूँ कि वे देश के प्रति प्रेम और लगन से भरे हुए हैं। मैं भी देश के लिए जी सकता हूँ और मर भी सकता हूँ। मैं मानता हूँ कि यदि मैं निर्दोष हूँ और मेरा हृदय शुद्ध हो, तो देश के लिए हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ने की मुझमें ताकत है।

"क्या इन्होंने* गया में दिये हुए सुन्दर भाषण में यही बात नहीं कही थी? मैंने कोई चोरी से समाचार प्राप्त नहीं किये। परन्तु सीधे ढंग से ही मुझे समाचार मिले हैं कि असहयोग की नीति अपनाने की हिमायत पहले इन्होंने ही की थी। इन्हें भी अनेकों का सामना करना पड़ा था। और ये करते भी क्या? ये अनिश्चित होकर बैठ रहें? बहुत ही प्रेमपूर्वक ये यह कहने को तैयार नहीं थे कि 'मैं आपकी दीर्घायु नहीं चाहता' और 'मैं नहीं चाहता कि गांधी लम्बा जिये।' परन्तु स्वराज्य लेने के लिए वे यह तो जरूर कहेंगे कि 'मैं अब अधिक राह नहीं देखूँगा।' मैं हमारी मयादाएँ समझता हूँ। हमें पागल बनानेवाले ढंग आजमाकर स्वराज्य लिया जाता हो तो मैं

उनका विरोध करूँगा। हम ऐसे तरीके अपना ही नहीं सकते। मेरे देश के लिए ऐसा काम करना हमारी शक्ति के बाहर है, यह मैं स्वीकार करता हूँ। मैं कुछ लोगों के सिर उड़ा सकता हूँ। इसके लिए भी पक्का दिल चाहिए। परन्तु रीडिंग या लिटन का सिर उड़ा देने से मुझे क्या मिल जायगा? मारकाट से स्वराज्य नहीं आयेगा। श्रीमती बेसण्ट ने भी कहा है कि तिरस्कार और दोषारोपण के सामने, झगड़ों और तूफान के सामने टिके रहने में हिम्मत चाहिए।

---

* देशबन्धु दास। सन् १९२२ के अन्त में कांग्रेस के गया-अधिवेशन के ये समापति थे।

"तो फिर हम स्वतंत्रता कैसे प्राप्त करेंगे? मारकाट करके तो हरगिज नहीं। परन्तु सतत परिश्रम करके प्राप्त करेंगे। इस दृष्टि से मैंने देश के सम्मुख त्रिविध कार्यक्रम रखा है। हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य हमारा प्रथम कार्यक्रम है। इसके लिए चौबीसों घंटे काम करने की जरूरत नहीं है। दूसरा है अस्पृश्यता-निवारण का कार्यक्रम। तीसरा है चरखे का। आपमें से कोई भी यह कार्यक्रम अपना सकता है। चरखा आप जैसे-जैसे काटते जायँगे, वैसे-वैसे स्वराज्य को नजदीक लाते जायँगे। आपमें से किसीको ऐसा लगेगा कि चौबीसों घंटे चरखे की ही बात करनेवाला यह कोई बेवकूफ है। परन्तु अपनी यह राय आप जल्दी ही बदल लेंगे और भूखों को रोटी दिलानेवाले चरखे की बात करनेवाले गांधी को आप ही प्रमाणपत्र देंगे। चरखे के भविष्य के लिए मेरे मन में कोई अविश्वास नहीं है। आप सब—श्री दास तक—कहेंगे कि यह गांधी तो पागल है, तो भी मैं तो कहूँगा कि आप मुझे चरखा दीजिए—आप काटिए—और मैं आपको स्वराज्य ला दूँगा।

"हम बातूनी लोग हैं। यह बन्द होना चाहिए। आपको पता नहीं कि हमारे लोग कितने आलसी हैं। चम्पारण में मैंने देखा है कि किसान दिनभर मेरे आस-पास मुँडराते रहते थे। वे सब भूखे-प्यासे नहीं थे। परन्तु वे लोग अपने शरीर का उपयोग करना भूल गये थे। उनके घर में कोई सहायक उद्योग नहीं था। कुछ भी काम करना उन्हें भारस्वरूप लगता था। हमारे अवयय ईस्ट इंडिया कंपनी ने काट डाले थे, यह इन लोगों का काले-से-काला कृत्य था। परन्तु बाद में हम आलसी बन गये। इसलिए जब तक हम भारत के सामान्य लोगों की दृष्टि से विचार नहीं करते, तब तक भारत के उद्धार की कोई आशा नहीं है। मैं अंग्रेजों से बिनती करता हूँ कि तुम भारत के आम लोगों के हृदय की वेदना सुनो। इनका—न कि यूरोप का—अर्थशास्त्र समझो। जिस वक्त ये लोग ऐसा करेंगे, उस वक्त लोग इनके पैरों पड़ेंगे।

"परन्तु आप स्वयं ही दुष्कृत्य करते हों, तब दुष्कृत्यों के लिए अकेले अंग्रेजों से कहने में क्या लाभ? जब आप इस आशय की पत्रिकाएँ प्रकाशित करें कि गांधी ने हम पर एक बड़ा शापपूर्ण भार लाद दिया है, तब मैं आपसे क्या कहूँ? गांधी आपको क्या ऐसा कुछ भी करने को कहता है, जो आपकी शक्ति के बाहर हो? लोग कहते हैं कि बंगाली अव्यावहारिक हैं। एक दृष्टि से यह सच है। हमें तो कुछ भी मेहनत किये बिना सब कुछ चाहिए। परन्तु देश के लिए करने के काम से जो हट जाते हैं, उनके हाथ में देश का भावी निर्माण नहीं होता। इसलिए कहता हूँ कि कातना और हमेशा खाली पहनना प्रत्येक के लिए अनिवार्य बनाइए। यह मेरा सन्देश है। यह मेरी माँग है। मांडले में बन्द रखे हुए कैदियों की मुक्ति के लिए आप व्याकुल हैं। परन्तु यह मुक्ति कुछ भी किये बिना आप प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी आशा रखना व्यर्थ है। यदि आप चाहते हों कि इन लोगों की सम्मानपूर्वक मुक्ति हो, तो मुझे वचन दीजिए कि आपमें से प्रत्येक व्यक्ति कातेगा। आप ऐसा करेंगे तो मुझे उतना ही आनंद होगा, जितना एक आशिक को अपने माशूक के पास जाने पर होता है। मैं आपसे किसी बहुत बड़े भगीरथ-प्रयत्न की माँग नहीं करता। यह काम इतना कठिन नहीं है। परन्तु आपको कातने में विश्वास नहीं है। और इसलिए आप कातने से इनकार करते हैं। इसी कारण इतना कहता हूँ।

"आपमें से कुछ मानते हैं कि ये* समझौते की बातचीत कर रहे हैं। आप पूछेंगे कि इसके पीछे है क्या? मैं कहता हूँ कि जितना इसके पीछे है, उतना ही इसके आगे है। यह आप इनके भाषण से और जीवन से देख सकते हैं। आप जरा गहरे उतरकर जाँच करंगे, तो आपको मालूम होगा कि ये पुरुष देश की मुक्ति के लिए तड़प रहे हैं। मेरे और इनके बीच के सम्बन्ध की यह कड़ी है। मैं चाहता हूँ कि आप भी इस प्रकार इनके साथ बँध जायँ। सैनिक को यह नहीं कहना होता कि 'किसलिए'। कोई पहले से नेता ही बनने को पैदा हुए हैं। इन्हें नेता के रूप में आप स्वीकार करें या नहीं, यह आपको सोचना है। परन्तु एक बार आपने उन्हें नेता चुन लिया और गले में वरमाला डाल दी, तो फिर सती सीता की तरह उनके साथ अग्नि-प्रवेश करके आपको अपनी शुद्धता और योग्यता साबित करनी है।"

---

* दासबाबू।

ऐसे भाषणों से सबको संतोष हुआ है, यह तो कैसे कहा जाय? लोकनेता को खाँड़े की धार पर चलना है, इस बात का यकीन इन दो दिनों में बहुत हो गया।

फरीदपुर में एक बड़ी आधुनिक बहन गांधीजी से मिलीं। सरकारी फार्म देखने का गांधीजी को निमंत्रण था। वहाँ सरकारी नौकर जमा हुए थे। वहाँ ये बहन भी थीं। गांधीजी की तकली तो चल ही रही थी। पहले तो उस महिला ने तकली का मजाक उड़ाया और गांधीजी की सादगी की भी हँसी उड़ाई। परन्तु बातें हो रही थीं और गांधीजी की तकली भी चल रही थी। गांधीजी तो सेशन जज और कलेक्टर को भी समझा रहे थे कि आप मुकदमे की कार्रवाई करते हुए भी तकली चला सकते हैं। और सेशन जज ने तो कहा भी सही कि "मैं स्वीकार करता हूँ कि कभी-कभी थका देनेवाले लम्बे झगड़े करनेवाले वकीलों को सुनते हुए तो तकली चलाते रहने में मजा आये।" इस पर वह बहन भी पिघली। उन्होंने तो जाते-जाते गांधीजी से खिलौने के तौर पर तकली माँगी। गांधीजी बाद में भेजने को कहकर घर आये। स्टेशन पर आकर सूत उतारने को कहकर मुझे अपनी बढ़िया तकली भेज देने को कहा। मैंने कहा: "बापू, आप व्यर्थ तकली भेज रहे हैं। यह उसकी मेज पर पड़ी रहेगी और दूसरों के आगे आपका मजाक उड़ाने में इसका उपयोग होगा।" गांधीजी हँसे: "भले ही हो। इसमें हमारी क्या हानि है?"

यह डर था कि बंगाल में बहुत धूप होगी, मगर वह गलत निकला। फरीदपुर में तो तिथल जैसी हवा आ रही थी। पास में विशाल पाटवाली और अनेक बार बंगाल को अपना भीषण स्वरूप बतानेवाली पद्मा नदी बहती है। इस भाग में हरियाली का तो पार ही नहीं है—लगभग त्रावणकोर के बराबर ही है। परन्तु त्रावणकोर की झाड़ी जरा अधिक मोहक लगती है, कारण यह होगा कि यहाँ अधिक नमी है। पशु त्रावणकोर जैसे ही दुबले हैं। मेरा खयाल है कि बिहार, त्रावणकोर और पूर्वी बंगाल में जैसे दुर्बल पशु पाये जाते हैं, वैसे कहीं नहीं होंगे। प्रदर्शनी भरी हुई थी, उसमें रोज़ १२ पाँड दूध देनेवाली उत्तम गाय बतायी गयी थी !

कला में त्रावणकोर बंगाल से बढ़कर होगा, ऐसा फरीदपुर देखकर ही कह दूँ, तो ज्यादाती नहीं होगी। परन्तु छोटे-छोटे ठिगने घरों पर लोहे की चादरें देखकर शत्रुंजय पर ये चादरें देखकर जैसी चिढ़ हुई थी, वैसी हुई। गरीबों के झोपड़ों पर घास के सुन्दर छप्पर हैं, परन्तु जिनके पास पाँच पैसा हो गया है, उन्होंने सब पर चादरें डाल दी हैं।

प्रत्येक घर में मेहमान आये, तब दरवाजे के आगे केले का द्वार और मंगल कुंभ रखने का रिवाज है। त्रावणकोर में भी यह मंगल कुंभ स्थान-स्थान पर देखा गया था। त्रावणकोर में मंगल कुंभ के साथ धान का ढेर और पाँच-सात बत्तियोंवाला नारियल के तेल का बड़ा दिया चौबीस घंटे जलाया जाता देखा था। एक और चीज त्रावणकोर और पूर्व बंगाल में सामान्य देखी—जो और कहीं नहीं पायी जाती। स्त्रियाँ अतिथि का स्वागत करते

और विदा देते समय जो मंगल ध्वनि करती हैं, वह दोनों प्रदेशों में एक-सी है—'हुलूललू...' करके जीभ से आवाज करती हैं। यह साम्य पुरातत्ववालों के विचार करने लायक है। पश्चिम बंगाल में स्त्रियाँ ऐसी ध्वनि नहीं करतीं, परन्तु शंखध्वनि करती हैं।

बंगाल में पर्दा है भी और नहीं भी। बहुत पुराने विचारवाले तो पर्दा रखते हैं और बाहर नहीं निकलते। परन्तु गांधीजी ने तो सभी जगह पर्दा तोड़ा है। गांधीजी से मिलने सैकड़ों नहीं, तो बीसियों स्त्रियाँ फरीदपुर में भी आयी थीं। चंदननगर में अनेक स्त्रियाँ बाहर निकलकर शंख फूँक रही थीं। हमारे यजमान की पत्नी को कभी भुलाया नहीं जा सकता। सुरेशचंद्र विश्वास तो पद्वीधारी थे और बड़े फौजदारी वकील थे। सन् १९२१ में उन्होंने अपना धड़ाके से चलता हुआ धंधा छोड़ा था, सो आज तक वापस शुरू नहीं किया। आज वे स्वराज्यवादी बनकर प्रांतीय विधानसभा में हैं। इनका गांधीजी के प्रति अपार प्रेम और इनकी पत्नी द्वारा की गयी गांधीजी की सेवा कभी भुलायी नहीं जा सकती। गांधीजी गये, तो तुरन्त उन्होंने अपने काते हुए सूत की एक धोती उनके चरणों में रख दी। ये बहन अपने सारे कुटुम्ब को अपने ही घर के कपास से सूत कातकर कपड़े पहनाती हैं। श्री विश्वास नियमित कातते हों, ऐसा मुझे नहीं लगा, परन्तु उनकी पत्नी अपना सारा अवकाश का समय कातने में देती हैं और घर में बालक तो सभी कातते हैं। प्रभात में उठकर रात तक काम करना, गांधीजी के लिए तमाम तैयारी खुद करनी और दोपहर को गांधीजी थोड़ी देर आराम करें, तो दूसरे से पंखा लेकर उनके पंखा करना और कातने बैठें, तब देव कपास में से ताजा पूनी बनाकर देना। आज घर की धड़ल्ले की कमाई चली गयी है और गरीबी ने अड्डा जमा लिया है, परन्तु ऐसा मालूम हुआ कि इस गरीबी के लिए पति-पत्नी दोनों को गर्व है। इतनी सारी प्रसन्नता, भक्ति और निष्ठावाली बहन के मैंने कवचित् ही दर्शन किये हैं।

दूसरी बहनों भी जितनी आयाँ, उतनी अत्यंत भक्ति से अपना सूत लेकर आयी थीं। अटेरन अपने घर का बनाया था और उसमें भी त्रिशूलाकार करके कला का प्रमाण दिया था। बंगाल में कातकर सदस्य बननेवाले थोड़े होंगे, परन्तु कातनेवाली बहनें तो अनुपात में बहुत होंगी। और सब अत्यंत बारीक कातनेवाली। बहन अपर्णादेवी के दर्शन तो कलकत्ते में हुए थे। यह बहन बेचारी गांधीजी के दर्शनों के लिए कितने समय से कोशिश कर रही थी, मेरे नाम कितने ही पत्र लिखे थे और गांधीजी के पास आकर खड़ी हुई, तब मूक होकर खड़ी रही। १५० नम्बर का रेशम जैसा ४४०० गज सूत एक सुन्दर थैली में रखकर वह लायी थी। थैली पर पीले रेशम से हिन्दी में 'बापूजी' काढ़ा गया था! और नीचे बंगला में 'अपर्णा' कढ़ा हुआ था! उसे बोलने लायक अंग्रेजी आती है, परन्तु उसके क्षोभ ने उसे एक अक्षर भी बोलने नहीं दिया।

फरीदपुर से चलकर कलकत्ता आये।

श्री देशबन्धु दास फरीदपुर से बुखार लेकर आये। उनका शरीर इतना सूख गया है कि वे पहचाने नहीं जा सकते। उनका महल चला गया, परन्तु आज एक मित्र ने उनके रहने के लिए ५०० रुपये मासिक किराये का एक मकान आग्रहपूर्वक मुफ्त दिया है—इस मित्र का इनकी राजनीति से कोई संबंध नहीं है।

कलकत्ते में दो दिन रहना हुआ। उसमें कुछ कार्यक्रम तो रखा ही था। एक दिन चंदननगर (चंदरनगर तो अंग्रेजों का रखा हुआ नाम है) हो आये। वहाँ अरविन्द बाबू के अनुयायी मोतीलाल राय के हाथ के नीचे प्रवर्तक संघ चल रहा है। उसे देखने के लिए गांधीजी को बुलाया गया था। इसके वर्णन में उतरने का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि एक घंटे के अवलोकन में वहाँ के आश्रम और आश्रमवासियों के बारे में राय बनाना ठीक नहीं होगा। और शान्त बातचीत के लिए उन्होंने जो व्यवस्था की थी, वह सब भंग हो गयी थी और हजारों की भीड़ ने सभा को आम सभा बना दिया था। स्त्री-विभाग में २५-३० बहनें कात रही थीं। इनके चरखे तो ढंग के नहीं थे, परन्तु पूनियाँ बढ़िया थीं। गांधीजी ने अपने भाषण में आश्रम के आदर्श **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का अर्थ करके बताया और त्याग का रहस्य समझाया। त्याग अर्थात् प्रवृत्ति का त्याग नहीं और न संसार के संसर्ग का ही त्याग, परन्तु सारा जगत् वासुदेवमय समझकर जगत् के स्वार्थ को आपना स्वार्थ बनाना और उस स्वार्थ के लिए प्रवृत्ति करना बताया।

५-५-१९२५

कलकत्ते के निवास के दौरान अमरीकन कौंसल मिलने आये। शुरू में आपना परिचय देते हुए उन्होंने कहा कि "मि. लेह केपटाउन में थे और मैं नैरोबी में था। बाद में मैं कैपटाउन में बीस वर्ष रहा।"

इस सज्जन के साथ बात हुई तो उसमें उन्होंने शुरू में सीधा सवाल पूछा: "हिन्दू-मुसलिम-एकता स्थापित करने में आप सफल हुए हैं क्या?"

गांधीजी: "नहीं। परन्तु मुझे लगता है कि मैं सफल होऊँगा जरूर।"

कौंसल : "आपके उपवास ने इस प्रश्न पर बहुतों का ध्यान केन्द्रित किया था।"

गांधीजी: "हाँ। उसका थोड़ा-सा परिणाम हुआ जरूर है, परन्तु वह बहुत नहीं कहा जा सकता।"

कौंसल: "आपका चरखा लोगों को थोड़ा अनुशासन सिखाता है, परन्तु अर्थ-शास्त्र तो नहीं ही।"

गांधीजी: "मैं तो एक व्यावहारिक मनुष्य हूँ।"

कौंसल: "इसके पीछे मुख्य हेतु आध्यात्मिक नहीं है?"

गांधीजी: "मेरे लिए तो यही सबसे बड़ा हेतु है।"

कौंसल: "लोगों को इसकी और खींचकर सबको एक करना, यही न?"

गांधीजी: "परन्तु इसमें भी, जैसा आपने कहा, जड़ आध्यात्मिक है। यदि मुझे इसमें सफलता मिले तो मैं मानूँगा कि दुनिया में सबसे बड़ी सहकारी मंडली स्थापित करने में मुझे सफलता मिली। इसमें दो दृष्टिबिन्दु हैं—जो गरीब हों, वे दूसरों के लिए कातें और दूसरे यज्ञार्थ कातें।"

कौंसल: "कितने कातनेवाले होंगे, इसका अंदाज आप बता सकते हैं?"

गांधीजी: "कच्चे अंदाज से यह कहा जा सकता है कि दस लाख से कम नहीं होंगे।"

कौंसल: "मजदूर-वर्ग में बहुत सफलता मिलने की आपको आशा है?"

गांधीजी: "नहीं। धनिक-वर्ग में दस हजार भी नहीं होंगे।"

कौंसल: "मुझे यह हेतु लगता तो महान् है, परन्तु इससे सबके लाभ के लिए सब एक हो सकते हैं?"

गांधीजी: "असहयोग में भी भारतवासियों के बीच सहयोग साधने का हेतु था।"

कौंसल: "जिन्हें स्वतंत्रता से गरज न हो, वे इसका विचार भी करेंगे?"

गांधीजी: "जरूर। जो भूखे हैं, उन्हें स्वतंत्रता की कल्पना नहीं होगी। परन्तु वे सब गरीबी दूर करने को एक हो सकते हैं। कथित अस्पृश्य इस वर्ग में आ जाते हैं। अस्पृश्यता को निर्मूल करने में बहुत समय नहीं लगेगा। यदि हिन्दू-धर्म में इसे कायम रखने के लिए कोई आधार होता, तो मैं इस धर्म को कभी से छोड़ देता।"

कौंसल: "यह बाद में घुस गयी होगी।"

गांधीजी: "हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में कुछ श्लोक हैं, जिनमें अस्पृश्यता का उल्लेख है। एक समय ऐसा था कि कुछ लोग इस धर्म का विरोध करते थे। उन्हें इसमें से निकाल दिया गया—डायर जैसे जोर-जुल्म से। जैसे डायर अपने विरोधियों में आतंक फैलाना चाहता था, वैसे इन सनातनियों ने आतंक फैलाने के लिए यह घोषणा कर दी कि ऐसे विरोधियों को छूने में पाप है।"

कौंसल: "अस्पृश्यता की हिमायत करनेवाले ज्यादा ब्राह्मण हैं?"

गांधीजी: "नहीं। मैं ऐसा नहीं मानता कि अस्पृश्यता धर्म का एक सिद्धांत है।"

कौंसल: "इस परिषद् के करने का क्या हेतु था?"

गांधीजी: "हमारे यहाँ अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय वार्षिक परिषदें होती हैं। इस बार बाजार में उड़नेवाली गप्पों के कारण सबको ऐसा लगता था कि दास कोई बड़े महत्त्व की घोषणा करेंगे और इसलिए यह परिषद् बहुत महत्त्व की मानी जाती थी।"

कौंसल: "लॉर्ड रोनाल्डशे अपनी 'बर्ड्स आई व्यू ऑफ इंडिया' नाम की पुस्तक में ऐसी राय प्रकट करते हैं कि भारत में पश्चिमी ढंग का राज्य-विधान नहीं चल सकता। वे कहते हैं कि सारे भारत में सब विधानों के मूल में ग्रामीण नीति का विधान है। यह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जैसा नहीं होगा? अलबत्ता इसका राज-नैतिक स्वरूप था, परन्तु इसमें सत्ता जैसा कुछ नहीं है"

गांधीजी: "पुराने जमाने में मताधिकार था अवश्य, परन्तु वह जड़ नहीं था। परन्तु इसीमें उसका महत्त्व था। आजकल मतदान बनावटी होता है।"

कौंसल: "आपका कातने का आन्दोलन जैसा किसी समय चीन में चल रहा था, उससे भिन्न नहीं है। मि. गांधी, मुझे लगता है कि भारतीयों को दी जानेवाली शिक्षा केवल बौद्धिक ही होती है—इसमें औद्योगिक शिक्षा जैसी बात बहुत नहीं होती।"

गांधीजी: "मैं आपसे सहमत हूँ।"

कौंसल: "इस स्थिति को सुधारने के लिए आप क्या करते हैं?"

गांधीजी: "सरकार बहुत कर सकती है। लोगों को भी बहुत करना चाहिए। परन्तु शुरू में मुख्यतः सरकार को ही करना चाहिए। लोगों से यह नहीं हो सकता। यदि सरकार ने केवल कारकूनों की सेना ही खड़ी करने की दृष्टि से अपनी शिक्षा-सम्बन्धी नीति न बनायी होती, तो ऐसा होता ही नहीं।"

कौंसल: "सुधरे हुए ढंग की खेती करना सिखाना अभी शुरू नहीं किया?"

गांधीजी: "हाँ। एक प्रकार से है।"

कौंसल: "क्या भारत अपनी तमाम जरूरतें पूरी कर सकता है?"

गांधीजी: "हाँ। एक-एक। अपनी जरूरत के तमाम साधन वह बना सकता है। और पश्चिम से हम मारकाट के हथियार मँगवाते हैं। अठारह करोड़ की चीनी मँगवाते हैं। सात करोड़ का लोहे का सामान मँगवाते हैं। मुझे इससे विरोध नहीं है। मेरा जो विरोध है, वह कपड़े के आयात से है। जिस समय इसके लिए विदेश में जानेवाला रुपया हम बचा लेंगे, उस समय अन्य वस्तुएँ खरीदने के लिए हम समर्थ हो जायँगे।"

६-५-१९२५

दूसरी चीज थी कलकत्ते के दो दिनों के बीच सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की मुलाकात। इसका तो गांधीजी ने स्वयं ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

तीसरी चीज मिर्जापुर पार्क में कताई-प्रदर्शन था। इसमें गांधीजी के साथ बंगाल की प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती कामिनी राय, डॉ. राय, श्यामबाबू और नाकीपुर के बड़े जमींदार राय जतीन्द्रनाथ चौधरी ने भाग लिया था। डॉ. राय तो कातते भी सुन्दर हैं। स्त्रियों में श्रीमती हेमप्रभा मजुम्दार भी थीं। यह कहा जा सकता है कि यह प्रदर्शन मद्रास और बम्बई में किये गये प्रतियोगिता-प्रदर्शनों से बढ़कर था। कातनेवाले सब कातने की कला जाननेवाले थे और सब शिक्षित-वर्ग में से थे।

७-५-१९२५

चौथी चीज महाबोधि मंडल में पूर्णिमा के दिन श्री बुद्धदेव की जयंती के अवसर पर किया गया गांधीजी का प्रवचन था। यह प्रवचन अत्यन्त महत्त्व का था। इस प्रसंग पर सभापति-पद के लिए गांधीजी का नाम पेश करनेवाले ने अपने प्रवचन में अन्य बातों के साथ एक ऐसा सुझाव दिया कि अछूतों के उद्धार के लिए उन्हें बौद्ध धर्म अपनाने का सुझाव देना चाहिए।

अपने प्रवचन में गांधीजी बोले:

"प्रार्थना की पूर्णाहुति का प्रवचन करते हुए मुझे आनन्द होता है। अलबत्ता इससे समारोह का अन्त नहीं होता। डॉ. धर्मपाल ने इस प्रार्थना में दया-धर्म का उल्लेख किया है और पूर्णाहुति का प्रवचन करने का काम मुझ पर रखकर उन्होंने मेरे सिर पर बड़ा बोझ डाला है। मुझे लगता है कि मैं इसे उठाने के योग्य नहीं हूँ। पिछले वर्ष भी मैंने आनाकानी की थी। जब मैं अपनी बीमारी के बाद शक्ति प्राप्त कर रहा था, तब नटराजन ने मुझे बिस्तर में बैठा दिया और उस समय के जयंती-समारोह की अध्यक्षता करने का सुझाव दिया। उनके प्रति मुझे बहुत गहरी भावना है, इसलिए मैं उनकी अवहेलना नहीं कर सका। मैं जानता था कि भारत में ऐसे समारोहों में भाग लेने को मुझे प्रतिवर्ष कहा जाएगा। तदनुसार इस वर्ष कलकत्ते में भी ऐसा ही हुआ।

"एक आश्चर्य की बात है कि संसार के सभी धर्मों के लोग मुझे अपना समझते हैं। जैन मुझे जैन मानते हैं। कुछ बौद्ध मुझे बौद्ध मानते हैं। ऐसे सैकड़ों ईसाई हैं, जो यह मानते हैं कि मैं ईसाई हूँ। और कुछ ईसाई मित्र तो यह भी कहते हैं कि 'हम जानते हैं कि आप ईसाई हैं, परन्तु डर के मारे आप यह स्वीकार नहीं करने, परन्तु आप क्यों नहीं खुल्लमखुल्ला कहते कि 'मैं ईसाई हूँ' और प्रभु ईसा का साम्राज्य स्वीकार करता हूँ?' बहुत-से मुसलमान भाई मुझे मुसलमान मानते हैं। इतना नहीं तो कम-से-कम मैं मुसलमान बनने की तैयारी में हूँ, ऐसा लोग कहते हैं।

"इन सब बातों से मुझे आनंद होता है। और मैं मानता हूँ कि यह सब मेरे प्रति प्रेम और भावना प्रकट करता है। मैं स्वयं तो अपने-आपको एक अति नम्र हिन्दू मानता हूँ। हिन्दू-धर्म का मैं जैसे-जैसे अधिक-अधिक गहरा अध्ययन करता हूँ, वैसे-वैसे मेरा खयाल होता जा रहा है कि वह सारे विश्व जैसा विशाल है और समस्त संसार में जो कुछ अच्छा है, उसका अपने में समावेश करता है। इसीलिए मैं इसलाम की सेवा के बखान करता

हूँ और उसके गुण गाता हूँ; और दूसरे धर्मों के लिए भी यही कहता हूँ; फिर भी मुझे मेरी अंतरात्मा कहती है कि यह सब होने पर भी मेरा हिन्दूपन मिट नहीं जाता।

"बौद्ध धर्म के बारे में मैंने चालीस वर्ष पहले सुना था। सैंतीस* वर्ष पहले जब मैं विद्यालय गया, तब मैं लड़का जैसा था। उस समय मेरे हाथ में सबसे पहले जो धार्मिक पुस्तक आयी, वह यह उमदा पुस्तक—

'लाइट ऑफ एशिया'—थी। उससे पहले दुनिया के किसी धर्म के बारे में मैंने नहीं पढ़ा था—हिन्दू-धर्म के बारे में भी नहीं। हिन्दू-धर्म के विषय में मैं जो कुछ जानता था, वह वही था, जो मेरे माँ-बाप

ने मुझे सिखाया था; और वह भी सीधा नहीं, परन्तु उनके आचारमात्र से। और थोड़ा-सा मैंने रामरक्षा सिखानेवाले ब्राह्मण से भी सीखा था। जब 'लाइट ऑफ एशिया' को पढ़ा, तब धर्मविषयक मेरा इतना अल्पज्ञान था। यह पुस्तक हाथ में आने पर मैंने इसका पन्ना-पन्ना पढ़ा। मैं साहित्य का अभ्यासी नहीं था, तो भी मैं इसे पढ़ जाने से अपने-आपको रोक नहीं सका। और इसके लिए अपने मन से आभार माना। दक्षिण अफ्रीका में वकालत शुरू करने के बाद फिर से मैंने यह पुस्तक पढ़ी। इस बार दूसरे धर्मों के बारे में भी मैंने कुछ पढ़ा। दूसरी बार पढ़ने पर भी मेरा आदर घटा नहीं—शायद उसमें दिये गये ज्ञान के कारण बढ़ा होगा। इसके सिवा बौद्ध धर्म के बारे में मैंने और कुछ नहीं पढ़ा। जब यरवदा-जेल में था, तब थोड़ा-सा और पढ़ना हुआ।

---

* हस्तलिखित डायरी में ३८ वर्ष लिखे हैं। परन्तु गांधीजी विद्यालय के लिए ता. ४-९-१८८८ को रवाना हुए थे। इस हिसाब से यहाँ सैंतीस रखा है।

"परन्तु इस समारोह का अध्यक्ष-पद लेने के लिए मुझसे क्यों कहा गया, यह मुझे पता है। महावीर की बात हो, बुद्ध की बात हो या ईसा की बात हो—मैं अपनी अल्प शक्ति के अनुसार इन लोगों का उपदेश अपने जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नवान् हूँ। बहुत-से मित्र मानते हैं कि मैं अपने जीवन में बुद्ध का उपदेश उतार रहा हूँ। मैं इसे स्वीकार करता हूँ और मानता हूँ कि इसके लिए मुझसे हो सके, उतना प्रयत्न करता हूँ। बौद्ध धर्म का पालन करनेवालों और बहुत-से हिन्दुओं से भी मैं भिन्न मत रखता हूँ कि इन दोनों धर्मों के बीच तात्त्विक अन्तर नहीं है। मेरी ऐसी राय है कि बुद्ध ने स्वयं अपने जीवन में सच्चा हिन्दू-धर्म उतारा है। अलबत्ता वे सुधारक थे—सत्याग्रही सुधारक थे। सुधार के लिए वे खूब उत्सुक थे और मानते थे कि जरूरी सुधार करने के लिए चुकायी जानेवाली कीमत की कोई बिसात नहीं है। स्वार्थ से अंधे बने हुए ब्राह्मणों ने उनका विरोध किया। परन्तु जन-

समुदाय मंतव्यों की झूठी-झूठी चर्चाओं में अपना समय बिगाड़ना नहीं चाहता था। वह तो मंतव्यों को कार्यान्वित करना चाहता था। उसमें सामान्य बुद्धि थी और इसलिए उन्होंने ब्राह्मणों में, जो धर्मगुरुओं के स्थान पर थे, उनकी उपेक्षा की अर्थात् स्वार्थ-वृत्ति की अवहेलना करके धर्म का सच्चा अर्थ समझाने वाले बुद्ध को अपनाने में उन्हें देर न लगी। मैं स्वयं भी जन-समुदाय में से एक हूँ और उसके बीच में रहता हूँ। इसलिए यह माननेवाला हूँ कि बौद्ध धर्म का अर्थ है, हिन्दू-धर्म को कार्य में उतारना।

"कुछ पढ़े-लिखों को बौद्ध धर्म के बिलकुल सीधे-सादे सिद्धांतों से सन्तोष नहीं होता। उन्हें ऐसा चाहिए, जिससे उनकी बुद्धि को सन्तोष हो। इस धर्म में उन्हें यह नहीं दीखा, इसलिए वे निराश हो गये। परन्तु धर्म तो मुख्यतः हृदय की बात है। जो मनुष्य धर्म के बारे में बौद्धिक अभिमान से विचार करता है उसे निराशा ही मिलती है। बुद्ध-जयंती मनानेवाली सभा के अध्यक्ष-पद से ईश्वर का विचार करने का मौका मुझे मिला, यह एक अच्छी बात है और मैं साहसपूर्वक कहता हूँ कि बुद्ध नास्तिक नहीं थे। जो भी मनुष्य अभिमान रखकर ईश्वर को भजता है, उसे वह दाद नहीं देता। ईश्वर तो नम्रता से नाक घिसता हुआ आये, उसका स्वागत करता है और उसके नाक के ऊपर की खरोंच देखना चाहता है। मुसलमान नाक घिसते हैं, यह आपने देखा होगा। रुपये के सिक्के की धार पर जैसे निशान होते हैं, वैसे आपने देखे होंगे। परन्तु ईश्वर ऐसे बाहरी निशान ही देखना नहीं चाहता। वह तो अन्तर्यामी है और हमारे हृदय पर ऐसे निशान पड़े हैं या नहीं, यह देखना चाहता है। श्यामबाबू घिस-घिसकर अपनी सारी नाक काट लें, तो भी ईश्वर इसकी परवाह नहीं करेगा। परन्तु किसीकी सुन्दर नुकीली नाक हो और फिर भी उसका दिल घायल हुआ हो—उसमें से खून बहता हो, उसे ही ईश्वर पहचानेगा। वह देख सकेगा कि उसका कहना इस आदमी ने जीवन में उतारा है। बुद्ध ऐसा कहते हैं। इसलिए बौद्ध धर्म मुख्यतः जन-समुदाय का धर्म है।

"इस समय भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार नहीं है, इससे मैं जरा भी निराश नहीं होता। मैं नहीं मानता कि वह भारत में मिट गया है। इस धर्म के मुख्य-मुख्य अंगों का जैसा दर्शन भारत में होता है, वैसा चीन, जापान या लंका में नहीं होता। बर्मा के बारे में तो मुझे निजी जानकारी है और मैं नम्रतापूर्वक कह सकता हूँ कि अपने कार्य में हमने बर्मा के लोगों की अपेक्षा बुद्ध को अपने जीवन में अधिक उतारा है। बुद्ध का निषेध करना ही असंभव है। कोई उसे अपने जन्मस्थान से अलग नहीं कर सकता। उसने तो अमरत्व प्राप्त किया है। बुद्ध का कुछ भी मिटाया नहीं जा सकता। हम मंदिर में जायँ, उसकी मूर्ति की पूजा करें या नाम लें, इससे क्या? मेरा हिन्दू-धर्म मुझे सिखाता है कि मुख्य बात प्रार्थना है। फिर भले ही उच्चारण मैं शुद्ध न करता होऊँ। परन्तु यदि

कोई एक बड़ा तत्त्ववेत्ता बहुत ही शुद्ध उच्चारण से राम का नाम लेता हो, मगर उसकी बगल में छुरी हो तो उसका नाश है। इसलिए मैं कहता हूँ कि 'धम्म' (धर्म) ही सच्ची बात है।

"ऐसे शुद्ध मनुष्यों की संख्या थोड़ी हो, तो इससे क्या? बुद्ध ने कभी संख्या का विचार नहीं किया। बुद्ध ने तो हमें यह सिखाया है कि लाखों लोग अपने-आपको बौद्ध कहें या उसमें मिल जायँ, इसका कोई खास महत्त्व नहीं है। जो कुछ महत्त्व है, वह सच्चाई का है। और एक भी मनुष्य सच्चा होगा, तो निराश होने की जरूरत नहीं है। यदि हम सच्चे और स्थिर होंगे, तो सभी सच्चा और स्थिर है। परन्तु हमीमें श्रद्धा का अभाव हो और हम बाहरी बातों पर आधार रखते हों, तो हमारा छुटकारा नहीं है। उस महान् विभूति का हमें संपर्क साधना हो, तो इसका विचार न कीजिए कि लोग हमारे बारे में क्या कहेंगे। हमें इतना ही विचार करना चाहिए कि दया और प्रेम का जो सन्देश उसने दिया है, उसमें से कितना हमने अपने जीवन में उतारा है। जिस हद तक यह किया होगा, उस हद तक यह कहा जायगा कि हमने बुद्ध का अनुसरण किया। जब तक दुनिया का अस्तित्व होगा, तब तक बुद्ध सबसे महान धर्मगुरु माने जायँगे। ढाई हजार वर्ष बीत गये। एक जाति के जीवन में इतने-से समय की क्या बिसात? विचार रेलगाड़ी की तेजी से भी ज्यादा तेज चलते हैं। परन्तु संसार में तेजी ही एक महत्त्व की बात नहीं है। धीमी-से-धीमी गति से भी सफर करने में जानकारी होती है। बुद्ध का दिया हुआ सन्देश कभी मरनेवाला नहीं है। उसके तो अभी अंकुर फूटनेवाले हैं। बाह्य दृष्टि से हमें लग सकता है कि बौद्ध धर्म क्षीण होता जा रहा है। परन्तु मुझे तो ऐसी आशा है कि वह दिन दूर नहीं, जब सभी धर्मों में भरा हुआ मैल, ढोंग, धोखाबाजी, असत्य, निर्दयता और निर्माल्यता का नाश होगा और वे सब धर्म बन जायँगे। ऐसा विचित्र दिन आयेगा, जब सबेरे उठते ही मनुष्य को सत्य और प्रेम के साम्राज्य की प्रतीति होगी; सच्चा सिक्का कर्म होगा, और बाकी सब खोटा सिक्का होगा।

"हम अपने-आपको हिन्दू कहें या कुछ भी कहें, परन्तु मनुष्य-जाति को बुद्ध ने जो संदेश दिया, उसे समझने और जीवन में उतारने लायक बल ईश्वर हमें दे, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है।

"विनयपूर्वक और ध्यानपूर्वक आपने मेरी बात सुनी, इसके लिए आपका आभार मानता हूँ। यह छोटी-सी प्रार्थना सबको लाभदायक सिद्ध हो।"

ता. ७ को कलकत्ता छोड़कर असली बंगाल की यात्रा पर निकले। फरीदपुर भी गाँव तो है ही नहीं। अब गाँवों में जाने को निकले। पूर्वी बंगाल में जाने के लिए पहले कलकत्ते से ईशान कोण में गोवालंदो तक

जाना पड़ता है। फिर वहाँ से जहाज में बैठकर पद्मा नदी के किनारे के गाँव देखते हुए दक्षिण में उतर पड़े, तो ढाका जिला आता है। हमारा दौरा ढाका जिले के विक्रमपुर विभाग के गाँवों से शुरू हुआ। ढाका जिला बंगाल में सबसे ज्यादा आबादीवाला भाग है। प्रत्येक वर्गमील में १,०६४ तक आबादी इस जिले में है और कुछ भागों में तो २,००० तक है। आबादी के ९६ प्रतिशत लोग देहात में रहते हैं, और उनमें से भी केवल १० फीसदी २,००० की आबादीवाले गाँवों में रहते हैं। छोटे-छोटे गाँवों की हद बाँधना भी मुश्किल है, क्योंकि बड़ी भयंकर नदियों में बाढ़ आये, गाँव बह जायँ और इस साल जहाँ गाँव हो, वह अगले वर्ष पानी भी हो जाय! ऐसे एक गाँव में हम पहले गये। सभा तो पद्मा के किनारे थी। जहाज कलकत्ते के एक जमींदार ने दो दिन के लिए खास गांधीजी के वास्ते दिया था। वह हर जगह लंगर डालता था और किनारे पर सभाएँ होती थीं। परन्तु गांधीजी ने कहा कि गाँवों में गये बिना मेरा काम नहीं चलता। गाँवों में जाकर जो दृश्य देखा, उससे थोड़ी देर तो मुझे कँपकँपी हो आयी! झाड़ियों का पार नहीं। उन झाड़ियों में से एक घर से दूसरा दिखाई तक नहीं देता। घर बाँस की खपच्चियों के और घास के छपरोंवाले, निरंतर नमीवाले। घरों के आसपास पुकुर (तालाब) अथवा खाड़ियाँ। नदी के पास रहनेवाले नदी से पानी ले आते हैं, परन्तु नदी से दूर रहनेवाले पुकुर से पानी लेते हैं, उसीमें जूठन धोते हैं, और उसकी बाँध पर गंदगी करते हैं! चौमासे में गाँव बह जाय तो वहाँ से उठकर किसी ऊँची जगह पर चले जाते हैं, अथवा नमीवाले घर में भी छिपकर रहते हैं। ऐसी हालत में मलेरिया, हैजा जैसे रोग न हों, तो क्या हो? फिर भी यह जिला तो बंगाल में सबसे अधिक आरोग्यवाला माना जाता है। इसका कारण है, सारे पूर्व बंगाल को गंगा और ब्रह्मपुत्रा ने अनेक पेचों में फँसा लिया है। इन शाखाओं के अनेक नाम पड़ गये हैं और कहाँ क्या नाम दिया जाता है, इसकी स्थानीय निवासियों को भी अक्सर खबर नहीं होती। 'शाखा' कहता हूँ, परन्तु इन शाखाओं की तो माही, ताप्ती या नर्मदा को देखकर भी कल्पना नहीं होती। पद्मा कई जगह चार-चार मील तक चौड़ी हो जाती है और नारायणगंज छोड़कर चाँदपुर जाते-जाते जहाँ पद्मा और मेघना दोनों मिलती हैं, वहाँ तो आठ-दस मील चौड़ा पाट हो जाता है! ये नदियाँ प्रदेश को साफ करने का भी काम करती हैं। बाढ़ आये, तब असवच्छताएँ सब साफ हो जाती हैं। पश्चिम बंगाल में इतनी नदियाँ नहीं, और वहाँ तो लोग पुकुर पर ही आधार रखते हैं और इस कारण वहाँ रोगों ने घर कर रखा है। पूर्व बंगाल में नदियों की निरंतर प्रवृत्ति के कारण कुछ स्वच्छता कायम रही है। अलबत्ता, गाँवों में से नदियों का पानी अनायास मदद न करे, तब मल गौरह साफ करने की लोग परवाह ही नहीं करते। पानी भी उबालकर पीने की परवाह नहीं है। त्रावणकोर के जिन भागों में पानी बहुत भरा रहता है, वहाँ गरीब-अमीर सभी उबला हुआ पानी पीते हैं, क्योंकि उबाले बिना पीने की आदत ही नहीं पड़ी। यहाँ कुछ भी परिणाम हो, लोगों को कोई परवाह नहीं।

ऐसे गाँवों में लोग किस तरह जाकर रहे होंगे, किसलिए जाकर रहे होंगे, ऐसा सहज विचार होता है और पानी के समुद्रों जैसी नदी और उसके आसपास के दृश्य देखते हुए जब आँख तृप्त नहीं होती, तब किनारे उतरकर किसी गाँव में जाकर खड़े रहें, तो एक दिन भी रहने की हिम्मत नहीं होती। फिर भी लोग इस प्रदेश में जाकर रहे हैं, घर बनाये हैं, नदी में पानी आने की सूचना मिलते ही जान लेकर भागते हैं और नदी के जाते (पानी के उतरते) ही फिर आकर रहते हैं और घर बह गया हो, तो नया घर बना लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य में एक प्रकार का साहस जन्म से ही पैदा हुआ है। अधिकांश लोग तैरना जानते हैं, नाव चलाना जानते हैं। विप्लववादियों के लिए कोई भी नाव उठा लेना, रात को कहीं भी जाकर किसी भी जमींदार को लूटकर नाव को डुबोकर किसी भी झाड़ी में छिप जाना सहज बात है!

ढाका के इस विक्रमपुर विभाग में ही बंगाल के अधिकतर महापुरुष पैदा हुए हैं। एक तरह से कहें तो रत्नागिरी जिले ने जैसे महाराष्ट्र को चितपावन दिये हैं, वैसे विक्रमपुर ने दास, राय, घोष जैसे दिये हैं—जिनके विक्रम की कथा जहाँ-तहाँ गूँज रही है। अलबत्ता इनके विक्रम बंगाल के गाँवों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए, बंगाल के गरीब किसान को स्वतंत्र करने के लिए इस्तेमाल करना अभी बाकी है। तालतला, गाँव के आगे से हम गुजरे, तब एक भाई ने देशबंधु दास का पक्का मकान जहाज में से बताया था। ऐसे पक्के मकान तो हजारों में एक ही होते हैं, क्योंकि पक्का मकान किस भरोसे बनायें? मुख्यतः चावल और सन की खेती की जाती है। इस जिले में लगभग चार करोड़ का सन पैदा होता है। लोगों की खुराक भात, साग-भाजी और नदियों में से मिलनेवाली मछली है। शाक्त लोग मांसादि भी खाते हैं, वैष्णव मांस नहीं खाते, परन्तु मछली तो सभी खाते हैं।

ऐसा पहला गाँव जो हमने देखा, वह मलिकांडा था। यह डॉ. प्रफुल्ल घोष का गाँव है। नदी के किनारे पर बाँस की खपच्चियों का एक सुंदर छत्र बनाकर गांधीजी की बैठक की गयी थी और आसपास हजारों की भीड़ शांति से बैठी थी।

डॉ. घोष ने विक्रमपुर में ५०-६० काम करनेवालों का संघ बनाया है। मलिकांडा को—अपने गाँव को—केन्द्र बनाया है। ऐसे १० केन्द्र हैं। इन केन्द्रों में खादी का ही काम होता है। मलिकांडा में एक प्रदर्शनी भी थी, जिसमें विक्रमपुर में बनी खादी के सिवा दूसरी खादी नहीं थी। डॉ. घोष का संघ अभी बहुत कम उत्पन्न करता है—पिछले साल १३,००० की खादी बनायी थी और स्थानीय बिक्री ८,००० की हुई थी। परन्तु यह खादी देखकर हैरत होती थी। इसमें जो बारीक खादी थी, वह आंध्र की बराबरी करनेवाली थी, बिचले दर्जे की तिरुपुर से टक्कर लेनेवाली थी और किनारी तथा बेल-बूटे में किसीसे भी प्रतियोगिता कर सकती थी। अनेक नमूने थे,

जिनमें एक छोटी माखनलाल सेन के सूत से बुनी हुई थी। यह सूत कम-से-कम ६० नम्बर का था। माखनलाल सेन का सूत कहने में बड़ा इतिहास आ जाता है। माखनलाल सेन का नाम रौलट कमेटी की रिपोर्ट में प्रसिद्ध है, सरकार के कागजात में मशहूर है। अराजकतावादियों का वह सरदार था। आज उसे अहिंसा का, खादी-कार्य का ऐसा रंग चढ़ा है कि उसने इस काम में भी अपने को बेजोड़ साबित किया है।

वहाँ से गाँव तो भीतरी भाग में था। गाँव देखने गये। वहाँ डॉ. घोष को बुनने में मदद देनेवाले एक मुसलमान जुलाहे के घर में घुसे। घर बढ़िया था। पाँच मनुष्यों का कुटुम्ब। बूढ़ा और उसका लड़का बुनने से चालीस रुपये कमाते थे। दूसरे जुलाहों ने अभी तक अपने करघे से विलायती सूत उठा नहीं लिया।

वापस आकर गाँव की स्थिति पर विवेचन करते हुए गांधीजी ने कहा:

"मैले पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था हो, तो मलेरिया चला जाता है। आक्सफर्ड गाँव अब जहाँ है, वहाँ पहले तो पानी के गढ़े ही थे। और साठ वर्ष पहले इंग्लैंड क्या होगा? हॉलैण्ड की स्थिति कैसी थी और आज कैसी हो गयी है? मैं तो यह बात मोटली की पुस्तक पढ़कर कहता हूँ।"

वहाँ से वापस जहाज पर आ रहे थे, तब डॉ. घोष से गांधीजी ने पूछा: "आपका घर कहाँ है?" अपनी अपार नम्रता में डॉ. घोष ने अपना घर तो बताया ही नहीं था! गांधीजी कहते हैं: "उसे देखे बिना काम चल सकता है?" कुछ झाड़ियाँ पार करके डॉ. घोष के घर आये।

डॉ. घोष का घर अर्थात् मिट्टी की बुनियाद पर उठाये हुए लकड़ी के खोंखों पर बनाया हुआ बाँस का एक छप्पर। जिसमें इनका जन्म हुआ था, वह तो टूटा पड़ा है। जिस घर में इनके माता-पिता, भाइयों और बहनों का बड़ा परिवार साथ रहता था, वह छोटा-सा घर अर्थात् २० फुट लंबा और १० फुट चौड़ा घर मौजूद है। गांधीजी ने पूछा:

"इस घर में आप उठते-बैठते हैं?"

"हाँ।"

"सोते भी इसीमें हैं?"

"हाँ।"

"पढ़ाई भी यहीं करते हैं?"

"जी।"

इस गाँव से निकलकर डॉ. घोष कलकत्ते में पढ़े और डी. एस सी. की डिग्री ली। ५०० के वेतन से टकसाल में नौकर रहे। असहयोग आया, तो यह नौकरी छोड़कर गांधीजी के दल में भरती हो गये। डॉ. घोष की एक बहन है। यह बहुत बोलनेवाली लड़की हमारे साथ सफर में आयी थी। गांधीजी ने प्रफुल्लबाबू से पूछा: "अपनी बहन को कहाँ पढ़ाते हो?" उन्होंने जवाब दिया: "भगिनी निवेदिता की कन्याशाला में—कलकत्ते में।" "खर्च कहाँ से जुटाते हो?" "पन्द्रह रुपये खर्च होता है, जो मेरा एक मित्र देता है। मैंने तो नौकरी छोड़ी, तब मेरे पास १५० रुपये थे, सो बहन को देकर उसकी शिक्षा शुरू की थी।" गांधीजी कहते हैं: "ऐसे ही होता है। आप कहते हैं, उससे मुझे जरा भी दया नहीं आती। जहाँ सारे समाज की पुनर्रचना करनी होती है, वहाँ बहुतों को स्वेच्छा से भिखारी बनना ही पड़ता है।"

पद्मा में और दक्षिण में जाते हुए लोहोगंज आता है। रास्ते में भाग्यफूल नाम का एक गाँव आता है। जिस जहाज में हम सफर कर रहे थे, उसे देनेवाले जमींदार इस गाँव के हैं। उन्होंने जहाज को यहाँ खड़ा रखवाया। वहाँ उतरने का कार्यक्रम नहीं था। प्रफुल्लबाबू का गांधीजी के उतरने पर विरोध था। परंतु गांधीजी जमींदार के पुत्र का आग्रह देखकर उतरे। सैकड़ों लोग वहाँ भी इकट्ठे हुए थे। यह जमींदार बंगाल में सबसे अधिक समृद्ध जमींदार था। उसकी जाति—कुंडु लोगों की—कुछ भागों में अछूत मानी जाती है और कुछ भागों में नहीं मानी जाती। अस्पृश्यता की मात्रा भी प्रदेशवार बदलती है, यह तो यहाँ पहली बार सुना।

८-५-१९२५

लोहोगंज सन का बड़ा केन्द्र है। लोहोगंज के बाजार से लाखों रुपये का सन जहाजों में चढ़ता है। वहाँ एक मारवाड़ी गृहस्थ ने सारी व्यवस्था की थी। यहाँ विक्रमपुर की तरफ से डॉ. घोष ने मानपत्र दिया, और इस विभाग की ओर से साढ़े पाँच हजार रुपये की थैली गांधीजी को अर्पित की गयी। यह थैली उन्होंने खादी-काम के लिए सौंप दी।

मानपत्र में बताया गया था कि इस गाँव ने तेरह हजार रुपये की खादी पैदा की थी, आठ हजार की स्थानीय बिक्री की थी और तीन हजार की आज के आगमन के सिलसिले में बेची गयी थी। कातनेवाले सदस्यों की संख्या १११ है। बेलगाँव में हुए प्रस्ताव से यहाँ नशा बढ़ गया है।

उत्तर देते हुए गांधीजी बोले:

"आपके मानपत्र के लिए, सूत के लिए और चंदे के लिए धन्यवाद देता हूँ। अलीभाई नहीं आये, इसका मुझे दुःख है। हम सबको आत्मशुद्धि करनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानों को एकदिल होना चाहिए। यह होगा तो अस्पृश्यता भी चली जायेगी। हम किसी के प्रति घृणा न करें। इसलिए चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति आधा घंटा सूत काते। प्रफुल्लबाबू सेवा के लिए ही रहते हैं। दस हजार कातनेवाले इकट्ठे करने की प्रतिज्ञा का पालन कीजिए। मेरे दर्शन से या मेरा भाषण सुनने आने से आपको कोई लाभ नहीं होगा।

"मैंने प्रार्थना की है, उसके अनुसार चलने से मुझे, आपको और सारे भारत को फायदा होगा।"

श्यामबाबू[१] ने मछली का एक श्लोक कहा:

इल्लिषं जितपीयूषं वाचा वाचामगोचरं
रोहितं हि हितं प्रोक्तं मद्गुरो मद्गुरो प्रियं।[२]

---

१. श्यामसुन्दर चक्रवर्ती।

२. इस श्लोक में दो अर्थवाले शब्द इस्तेमाल करके चार भिन्न-भिन्न प्रकार की मछलियों के गुण वर्णन किये गये हैं—इल्लिशा मछली का स्वाद अमृत से भी बढ़कर है; वाचा (= बचा) मछली के स्वाद का तो वर्णन भी नहीं हो सकता; रोहित मछली हिताकारी है और मद्गुर (मांगुर) मछली तो मेरे गुरु को बहुत भाती है।

यहाँ से निकलकर दीघीरपार गाँव आये। यहाँ एक राष्ट्रीय पाठशाला भाई जतीन्द्रनाथ कुशारी चलाते हैं। ये भी बड़े हिंसावादी थे। हम गये, तब तीस लड़के कात रहे थे। सबके कातने में तो कसर नहीं थी, परन्तु चरखे का ठिकाना नहीं था। गांधीजी ने शिक्षक से कहा:

"यह भयंकर चरखा देखकर मुझे दुःख होता है। ऐसे चरखे लेकर आप पाठशाला चलाते हों और गाँव पर आपका असर न पड़े, तो आपका दोष या गाँव का? अच्छा हुआ कि मैं यहाँ आया। न आया होता तो मुझे लगता कि गाँववालों का ही दोष होगा! इस चरखे का तकुआ देखिए! लड़के चला-चलाकर थक जाते हैं, तब मुश्किल से धागा मिलता है। इस हिसाब से लड़के कितना सूत निकाल सकते हैं? न इसमें संगीत ही है। बच्चे गाते-गाते तो यह चरखा चला ही नहीं सकते, क्योंकि इनके गाने के साथ इनका सुर नहीं मिल सकता। यहाँ के बच्चों को तो कातना स्वाभाविक हो गया दिखता है। ऐसे बच्चे अच्छे चरखे पर कातते हों, तो आज कातते हैं, उससे सहज दुगुना कातेंगे। इतने खराब चरखे होने पर भी बच्चे इतना अच्छा कात सकते हैं, यह देखकर यह कल्पना होती है कि चरखे का भविष्य कितना बलवान् है। शिक्षक कहता है कि मुझे इतनी अधिक चीजों पर देख-रेख करने का समय नहीं मिलता। यदि चरखे को ठीक करने या उसकी खामी समझने का समय न हो तो शिक्षक को एक वर्ष की तपस्या करनी चाहिए और उसके शास्त्र में पारंगत होकर बाद में पाठशाला का काम शुरू करना चाहिए।"

पाठशाला छोड़कर सार्वजनिक सभा के स्थान पर आये। यहाँ कम-से-कम पन्द्रह हजार के करीब लोग थे, फिर भी शांति का पार नहीं था। यह सतीशबाबू की व्यवस्था और सावधानी की बलिहारी। 'महात्मा गांधी की जय' के नारों तक की मनाही थी। केवल स्त्रियों की 'हुलू' ध्वनि कोई रोक नहीं सकता था।

यहाँ प्रवचन करते हुए गांधीजी ने कहा:

"म्युनिसिपल बोर्ड ने पाँच चरखों की भेट दी है, इसके लिए वह धन्यवाद का पात्र है। परन्तु यह तो उन्हें जितनी मदद देनी चाहिए, उसकी केवल निशानी ही है। इस यज्ञ में जितना काम दिया जा सके, उतना कम है।"

९-५-१९२५

वहाँ से चले तालतोला और फिर मलखानगर को। मलखानगर दक्षिण में नहीं, परन्तु नदी का जो टुकड़ा उत्तर में गया है, उस ओर है। यहाँ के दृश्य आसानी से भुलाये नहीं जा सकते। लगभग दो मील तक सारा किनारा कतार बने हुए मनुष्यों से भरा था। नदी छोड़कर गाँव में एक खाड़ी जा रही थी। इस खाड़ी में नाव से ही प्रवेश किया। खाड़ी के दोनों किनारों पर मनुष्यों की भीड़ जमा थी। पचीस हजार से शायद ही कम होंगे। नाव से उतरकर स्त्रियों की सभा में गये। वहाँ हजारों स्त्रियाँ शांति से बैठी थीं। सुन्दर सूत के नमूने मेज पर रखे थे और वहाँ की बहनों के काते हुए अत्यन्त बारीक सूत की बुनी हुई धोतियाँ भी थीं। गांधीजी ने उनके सामने आंतर-बाह्य शुद्धि की बात की। दयाधर्म, सत्यधर्म और शील का पालन आंतर-शुद्धि; और बाह्यधर्म कातना और खादी पहनना—इन दोनों धर्मों का पालन सीता के आदर्श में आ जाता है। "यह वाक्य बोलते हुए सीता का नाम लेते ही स्त्रियों में से आकाश को गूंजा देनेवाली हुलूध्वनि निकली!

वहाँ से पुरुषों की सभा में गये। उस सभा के मनुष्यों की गिनती करना कठिन था। ४०-५० हजार की संख्या थोड़ी कहलायेगी। उत्तेजना तो अपार थी, फिर भी लोग शांति से बैठे थे। परन्तु इन लोगों को भाषण किस प्रकार दिया जाय? सारी सभाओं में गांधीजी के हिन्दी भाषणों का बंगला में भाषान्तर करनेवाले श्यामबाबू थे। श्यामबाबू का भाषान्तर एक स्वतंत्र भाषण होता था। विवेचन के साथ भाषान्तर करने की उनकी पद्धति दक्षिण के डॉ. राजन की याद दिला रही थी। परन्तु डॉ. राजन भी श्यामबाबू की आवाज कहाँ से लायें? यहाँ के जलसे के लिए तो श्यामबाबू का ही काम था। परन्तु इस स्थान के जलसे में श्यामबाबू भी निकम्मे हो गये। गांधीजी सभा के एक-एक विभाग के सामने खड़े रहते, थोड़ी वातें करते और दो-तीन वाक्यों में अपना सन्देश देते। ऐसा करके कोई आध घण्टे में पूरा किया।

इन जलसों को छोड़कर एक घनी खाड़ी में से गुजरकर राष्ट्रीय पाठशाला में गये। वहाँ कार्यकर्ताओं की सभा थी। कार्यकर्ता बंगाल के खादी-प्रतिष्ठान के मातहत नहीं, सब डॉ. घोष के ही मातहत हैं। दो-तीन के नाम तो मैं बता चुका हूँ। दूसरों में जतीन्द्रनाथ चौधरी, परेशप्रसन्न सिंह, निवारणचन्द्र सरकार के नाम देने चाहिए। ये सब बहुत पहले अराजक दल में थे। लगभग सभी ग्रेजुएट या अंडर ग्रेजुएट हैं। एक-दो डॉक्टर हैं। अधिकांश केवल खाने के सिवा कुछ नहीं लेते। खाने का खर्च १० रुपये। कुछ को परिवार के खर्च के लिए १० रु.) मासिक ज्यादा देना पड़ता है। इनमें से किसी पर भी २० रुपये मासिक से ज्यादा खर्च तो आता ही नहीं। १३ केन्द्रों में से पाँच में खादी-उत्पत्ति का काम होता है और आठ में केवल पाठशालाएँ ही हैं।

कार्यकर्ताओं के साथ बातचीत चली, तो आसपास खलबली मचने लगी। इसलिए गांधीजी सब कार्यकर्ताओं को लेकर जहाज पर गये। वहाँ उनके साथ बातचीत हुई, उसका सार दे रहा हूँ। प्रश्न दो थे: (१) अनेक कार्यकर्ताओं में निराशा उत्पन्न हुई है, क्योंकि गाँवों से ठीक उत्तर नहीं मिलता। चरखे से ही स्वराज्य मिलेगा, ऐसी श्रद्धा शायद ही दो-तीन मनुष्यों को है। क्या आप सचमुच समझ सकते हैं कि चरखे से स्वराज्य मिल जायगा? (२) कांग्रेस में रहने का सार क्या है? हम कातते रहें और कातने का मंडल बना लें और कांग्रेस से अलग हो जायँ तो क्या बुरा?

इन दो प्रश्नों के उत्तर में गांधीजी ने प्रवचन किया:

"पहली बात यह है कि मैंने यह बात नहीं कही कि कातने से ही स्वराज्य मिलेगा, यद्यपि मैं मानता यही हूँ। मैंने तो बार-बार यह बात कही है कि काते बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। परन्तु दोनों बातों मैं सिद्ध कर देने को तैयार हूँ। कातने का अर्थ क्या? कातने का अर्थ है कातने को सार्वत्रिक कर देना। कातना अर्थात् ओटने, पींजने और कातने की सारी क्रियाएँ करना हमें आये; और काते हुए सूत को बुनवायें। कातना अर्थात् राजा से रंक तक सभी मनुष्य मानसिक रूप में सब प्रकार की तैयारी करें। आँखों देखे बिना चीज-वस्तु का विचार करने का नाम मानसिक तैयारी है। हिमालय में रहनेवाले देवी-देवताओं को हम देख नहीं सकते। फिर भी उनके बारे में हम खयाल करते हैं, क्योंकि हमारे हृदय में पवित्रता भरी हुई है। यही बात कातने के विषय में है। जब हम यह कहें कि लाखों लोग कातें, तब यह खयाल रखना चाहिए कि इसमें हम भी आ जाते हैं। यदि आपको ऐसा विश्वास हो कि काते बिना स्वराज्य नहीं मिलेगा, तो आप जब तक स्वयं कातना शुरू न करें, तब तक आपको ऐसा लगना चाहिए कि स्वराज्य हरगिज नहीं आयेगा।

"ये सब बातें स्वयं करने और करोड़ों को कातनेवाला बनाने में कितने भगी-रथ-प्रयत्न की जरूरत है? यह भगीरथ-प्रयत्न अर्थात् सारे देश में एक जीवित संगठन कायम करना है। बड़े जहाजों में कप्तान का हुक्म जहाज का प्रत्येक मनुष्य मानता है और न माने, तो उसे गोली मार देने का अधिकार होता है। कोई रसायनशास्त्री छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखनेवाले मनुष्यों की मदद के बिना काम नहीं कर सकता। इसी प्रकार सारे खादी-संगठन में कुछ को चरखे के बारे में ध्यान देना चाहिए। इसी प्रकार खादी-सम्बन्धी सारी संगठन-व्यवस्था हम बना दें, यह कोई छोटा-सा काम है? और करोड़ों से आप कतवाने लगें, तो अस्पृश्यता का प्रश्न हल हो जाय, हिन्दू-मुसलिम-सवाल का भी निपटारा हो जाय। अस्पृश्यता का निपटारा कैसे होगा? अछूत लोग आज खादी के काम में भाग लेते हैं, तो मेरी खातिर लेते हैं। कर्नाटक और मद्रास में अछूतों ने मुझसे

कहा था कि जब लोग हमें अछूत मानते हैं, तब हमें उनके लिए श्रम करने की क्या जरूरत है? हम इनके लिए खादी क्यों बुनें? फिर भी वे मेरी खातिर बुनते हैं। मलाबार में जिनका दिखाई देना भी मना है, वे अदर्शनीय तो मेरी सुनने को ही तैयार नहीं थे। मैंने कहा: 'आओ। आओ।' परन्तु वे तो आते ही नहीं थे न? उन लोगों को शारीरिक दृष्टि से ही अपंग बना दिया गया था। अर्थात् उन्हें मनुष्य ही नहीं माना जाता।

"इन अंग्रेज लोगों ने सारंगी के सारे तारों पर अपनी उँगलियाँ जमा दी हैं। परन्तु एक पर उनकी उँगली नहीं है। उस पर मेरी उँगली है। वह है अहिंसा। आप अहिंसा से एक बार स्वराज्य ले लीजिए और बाद में जो करना हो, सो कर लेना। मेरी नजर के सामने खड़े हुए ये खयाल मैं जितनी स्पष्टता से देख सकता हूँ, उतनी स्पष्टता से ही कह सकता हूँ कि अहिंसा के बिना स्वराज्य मिलनेवाला नहीं है।

"इसीलिए कहता हूँ कि कांग्रेस में वैतनिक कातनेवाले को स्थान नहीं है। जहाज के कप्तान का हुक्म एक-एक आदमी मानता है और तभी जहाज ठीक तरह चलता है। मुझे कांग्रेस को इस ढंग से चलाना है और ऐसा कर उसे एक जीती-जागती संस्था बनानी है। परन्तु यह मैं तैंतीस करोड़ आलसियों के द्वारा नहीं बना सकता। मुझे तो स्वयं कातनेवाले चाहिए। समय आने पर ये लोग अपना काम करके रहेंगे। ईश्वर इन्हें काम करने का बल देगा। सरकार के विरुद्ध मेरी लड़ाई इस प्रकार की है।

"ट्रांसवाल के मजदूरों और खदान में काम करनेवालों ने क्या किया था, यह मैं आपसे कहूँ। इन्होंने जब जाना कि हम सबको जेल में बंद कर दिया गया, तब वे जाग उठे। हरबनसिंह* मुझे कहते हैं: 'आप जेल में जायँ और ये सब दूसरे भी जेल में जायँ; फिर मुझे जीकर क्या करना है?' परिणामस्वरूप खानें कामचलाऊ जेलें बन गयीं और हमें खानों में ही बन्द रखा गया । परन्तु अन्त में वे जीते । इसका रहस्य यह था कि उन्हें ईश्वर में श्रद्धा थी । लोग मुझसे पूछते हैं कि 'अब सत्याग्रह की लड़ाई कब शुरू करेंगे?' मेरा उन्हें एक ही उत्तर है: 'इसकी मैं चिन्ता नहीं करता । आप रचनात्मक कार्य शुरू कर दें, इतना काफी है ।' यों कहकर मैं सरकार का सामना करता हूँ।

---

* ये भाई गिरमिटिया के रूप में भारत से दक्षिण अफ्रीका में गये थे। वहाँ की सत्याग्रह की लड़ाई में वे गांधीजी के साथी थे। वे जेल गये, तब उनकी ऊम्र सत्तर वर्ष की थी।

"आपके मार्ग में बाधाएँ हैं, यह मैं जानता हूँ। नवाब और महाराजा बाधक हैं। परन्तु आप इन लोगों का विचार न कीजिए। इनका निपटारा अपने-आप हो जायेगा। आप तो जो सीधा-सादा कार्यक्रम हो, उसका विचार कीजिए। एक अध्यापक ने मुझे सुझाव दिया कि मैं लोगों से कहूँ कि सभी रूई उगायें। मगर मुझे बुद्धिभ्रम पैदा नहीं करना है। यह नहीं हो सकता कि सभी कच्चा माल उगायें। इसलिए कहता हूँ कि जिससे हो सके, वह उगाये। परन्तु रूई उगाने से काम पूरा नहीं होता। लाखों लोगों को पींजने और कातने का काम करना पड़ेगा। चरखा तो स्वराज्य-विश्व का मध्यबिन्दु है। हमने तो अभी इस विश्व की किनार को ही छूआ है। मैं आशा रखता हूँ कि आप मेरी दी हुई उपमा समझ सके होंगे। कानून के अध्ययन में यह नहीं सिखाया जाता कि शर्त कैसे लगायी जाय, परन्तु उसकी भाषा सिखायी जाती है। कुछ को जहाजरानी की भाषा सीखनी होती है और कुछ घूस-रिश्वत की भाषा भी सीखते हैं। ये सारी भाषाएँ सांकेतिक शब्दों की बनी होती हैं और आपको सीखनी पड़ती हैं। यहाँ भी ऐसा ही है और इसे अच्छी तरह ब्योरेवार समझने के लिए आपको इसे निपटाना पड़ेगा। आप सब तो समझदार हैं और मैंने ऐसी भाषा में कहा है, जिसे समझदार आदमी समझ ले। इसमें से सार ले लीजिए। लोग आज मेरा लिखा हुआ पढ़ते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि एक वाक्य में मैं अनेक बातें कह देता हूँ। ये बातें लोगों के दिल में अच्छी तरह जमें, इसके लिए इस नमीवाली जमीन में आपको जीवन बिताना पड़ेगा।

"परन्तु आप कहेंगे कि कातने का अर्थ स्वराज्य किस तरह? मैं कहता हूँ कि कातना सार्वत्रिक बनाइए, तो जो तीन महा प्रश्न आज कांग्रेस के सामने हैं, उन तीनों का निराकरण हो जायेगा, फिर बाकी क्या रहेगा? ये तीन बातें हो जाने पर हम अपनी शर्तें रख सकेंगे। इसके बाद अंग्रेजों को चले जाना हो, तो चले जायँ और हमारी शर्त पर रहना हो तो रहें। आप पूछेंगे कि जिन अंग्रेजों के साथ इतना युद्ध किया, जिन्होंने अत्याचार किये, उनके साथ आप सहयोग करेंगे? मैं कहता हूँ कि 'हाँ, जरूर करूँगा, क्योंकि मुझे तो शत्रु को भी मित्र बनाना है।'

"अब कातने से ही स्वराज्य मिलेगा, यह समझाने के लिए एक बात अच्छी तरह समझनी चाहिए। वह यह है कि आप किस मार्ग से स्वराज्य लेना चाहते हैं? यदि हिंसा के मार्ग से स्वराज्य लेना चाहते हों, तो आपको कातने का विचार छोड़ देना चाहिए। परन्तु हिंसा के मार्ग से आप अंग्रेजों को नहीं जीत सकते, यह मैं प्रत्यक्ष देख सकता हूँ। आज शतरंज के सारे मोहरे उनके हाथ में हैं, केवल एक मेरे हाथ में है। वह है अहिंसा का। इस अहिंसा के मोहरे से ही उन्हें जीता जा सकता है। इतना आप स्वीकार करें, तो आप यह समझ सकेंगे कि काते

बिना काम हरगिज नहीं चलेगा। क्योंकि अहिंसात्मक रीतियों का केन्द्र ही चरखा है, जिसके आसपास और सब बातें फिरती हैं।

"वातावरण हरगिज नहीं बिगड़ा। सरकार को झगड़े चाहिए, उसे विघ्न-संतोषी मिल भी जाते हैं। परन्तु आप तो यही कहेंगे कि कितने ही विघ्न आयेंगे, तो भी हम तो कातते ही रहेंगे। सब कातना छोड़ दें, इसलिए आप थोड़े ही छोड़ सकते हैं? सब स्वच्छ रहना छोड़ दें; सब ब्रह्मचर्य छोड़ दें, सब अहिंसा छोड़ दें, तो क्या आप भी छोड़ देंगे?

"ऐसे जो सच्चे कातनेवाले हैं, वे जब समय आयेगा, तब जरूर निकल पड़ेंगे। कातने में विश्वास न रखनेवाले तीन करोड़ सदस्य होंगे, उनसे मैं कोई काम नहीं ले सकता। परन्तु ३०० आदमी सच्चे होंगे, तो उनसे मैं देश को जगा सकूँगा। ये लोग समय आने पर कैसे निकल पड़ेंगे, यह आप पूछेंगे तो मैं नहीं कह सकूँगा। इसलिए कहता हूँ कि ईश्वर इन्हें आगे लायेगा। ईश्वर पर मेरा इतना विश्वास है कि मैं उस पर आधार रखकर बैठा हूँ कि प्रसंग आने पर वह सबको जाग्रत कर देगा। ट्रांसवाल में क्या हुआ था? अन्त तक किसीसे कहा नहीं गया था। परन्तु जब कुलियों ने देखा कि हम सब जेल में जाकर बैठ गये हैं तो वे भी निकल पड़े। हरबनसिंह तो मुक्त था। उसे कर देना नहीं था, परन्तु उसे भी शौर्य चढ़ा, वह भी जेल में गया और वहाँ मर गया। खानों की जेल बनायी गयी, उसमें वे बन्द किये गये, अनेक दुःख सहे। मुझे थोड़े ही कल्पना थी कि यह सब होगा? परन्तु ईश्वर में श्रद्धा की यही बात है। इसलिए जब लोग पूछते हैं कि सविनय-भंग कब करेंगे, तब मैं उन्हें कोई जवाब नहीं देता, मैं कहता हूँ कि ईश्वर अवसर लायेगा।

"अब इस प्रश्न पर आता हूँ कि कांग्रेस में रहने में क्या उपयोग है। मैं स्वीकार करता हूँ कि बहुत उपयोग नहीं है। परन्तु हम कांग्रेस में न रहें, तो स्वराज्य-वादियों को व्यर्थ दुःख हो, इस अर्थ में कि हम उन्हें सहानुभूति भी देने को तैयार नहीं हैं। इस वर्ष तो सदस्य बनकर जितना काम कराया जाय, उतना करना ही पड़ेगा। अगले साल इन्हें यह भी नहीं चाहिए, तो देख लिया जायगा। तो हम कातनेवालों का मंडल स्थापित कर सकेंगे। परन्तु यों तो वह मंडल इस वर्ष के कार्य का परिपक्व फल होगा। कांग्रेस में रहने में लाभ नहीं है, यह मान लें, तो भी हानि तो कुछ है ही नहीं।"

आंतर भोजन अर्थात् एक ही थाली में खाना।

ढाका डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में से ऐसी जानकारी मिली है कि आबादी की संख्या प्रति वर्गमील १०६४ है। कहीं-कहीं अधिक है। लोग मुख्यतः देहात में रहते हैं। आबादी के ९६ प्रतिशत गाँवों में ही निवास करते हैं।

दो हजार से अधिक आबादीवाले गाँवों में रहनेवालों की संख्या १० फी सदी है। जनगणना की इकाई भ्रम पैदा करनेवाली है। घरों और गोदामों की दीवारें लकड़ी के चौखटों में कमचियाँ जोड़कर बनाई हुई हैं और उन पर लिपाई की हुई है। छप्पर टिन के हैं। उनमें पानी-पेशाब के लिए नाली के सिवा और कोई व्यवस्था नहीं होती।

बोली के बारे में ग्रियर्सन कहता है कि उनके उच्चारण खास मालूम होते हैं। 'ह' से शुरू होनेवाले शब्दों में 'ह' बोलने की ओर लोगों की अरुचि है। परन्तु 'स' से शुरू होनेवाले शब्दों में 'स' के बजाय 'ह' बोलने का रिवाज आम है। 'सीबोलेथ' के बजाय पश्चिम बंगाल में 'शीबोलेथ' बोलेंगे और पूर्व बंगाल में 'हीबोलेथ' बोलेंगे। पूर्व बंगाल में 'च', 'छ', 'ज' जैसे उच्चारण ही नहीं हैं। बदले में 'त्स', 'स' और 'झ' बोलते हैं।

आठ हजार मुसलमान जुलाहे हैं।

नामशूद्र लोग बंगाल की नदियों के मुख की तरफवाले दलदली प्रदेश के आदिवासी हैं। बंगाल का विभाजन किया गया, तब उन्होंने असहयोग अपनाया था।

गाँवों में रहनेवाले रोग रोकने के उपाय अपनायें, ऐसी आशा रखना व्यर्थ है। नदी का बहुत पानी मिल सकता हो तो भी, हम कितना ही मना करें तो भी, वे तो गंदा ही पानी पियेंगे। वे पानी उबालकर या छानकर पियें, नाली साफ करें, रोगग्रस्त इलाके से कामचलाऊ भी स्थानान्तर करें और रोग रोकने की दवा लें, ऐसी आशा रखना आकाशकुसुमवत् है। इनके मल-मूत्र नदी में जाते हैं और पीने का पानी भी उसी जगह से आता है। रॉबर्ट मिटफर्ड ने ढाका में कई वर्ष तक नौकरी की थी। सन १८३६ में उनका यूरोप में अवसान हुआ था। तब उन्होंने अपनी संपत्ति का बड़ा भाग ढाका में सार्वजनिक कामों पर खरचने के लिए सरकार को सौंप दिया था।

सन् १७४७ में ढाका से साढ़े अट्ठाईस लाख रुपये के सूती कपड़े की निकासी हुई थी। सन् १८८० में मि. टेलर ने जानकारी दी थी कि सन् १७६० में एक जुलाहा मासिक एक से डेढ़ आरकट रुपये कमाता था। ब्रिटिश सूत सन् १८२१ में आयात किया गया था। आयात किया गया उत्तम (२०० नंबर का) सूत तीन आने पड़ता था, जब कि उसी दरजे के देशी सूत का भाव तेरह आने था।

सन् १९०६ में जूट ४६५ लाख रुपये के मूल्य का पैदा हुआ था।

सीलोन, बम्बई और मद्रास के किनारे से सीप का कवच मँगाकर उस पर नक्काशी करने का उद्योग था।

नारायणगंज के आगे अनेक रेल-मार्ग एकत्र होते हैं, क्योंकि दक्षिण जाने के लिए जहाज पकड़ने का यह जंक्शन है। कलकत्ते के जमींदार के जिस जहाज में हम मेघना नदी के किनारे पर फिर रहे हैं, वह नारायणगंज छोड़ देनेवाला था और वहाँ से दक्षिण में चाँदपुर जाने के लिए डाक का जहाज पकड़ने का निश्चय किया गया था, परन्तु उस जमींदार के मुनीम ने नारायणगंज में बहुत आग्रह किया कि जहाज ठेठ चाँदपुर ले ही जाइए। इसलिए उसी जहाज में चाँदपुर गये। चाँदपुर जाते हुए मेघना और पद्मा का संगम आता है। इस संगम का पाट लगभग १० मील चौड़ा है। चाँदपुर के ३०-४० मील दक्षिण में मेघना नदी का मुख है और वहाँ नोआखाली आता है। कलकत्ता और नोआखाली लगभग एक रेखांश (? अक्षांश) पर हैं। गंगा नदी की राजशाही जिले के आगे दो शाखाएँ हो जाती हैं; एक कलकत्ते की ओर जाती है, दूसरी नोआखाली की तरफ। ये दो शाखाएँ त्रिकोण के दो बाजू हैं और इसका आधार कलकत्ते से नोआखाली तक खिंची हुई सीधी लकीर है। नदियों के कारण ऐसे त्रिकोण बंगाल में बहुत हैं। उनमें यह सबसे बड़ा है।

परन्तु भूगोल छोड़कर फिर चाँदपुर आ जायँ। चाँदपुर टिपेरा (त्रिपुरा) जिले के दो शहरों में से एक है। दूसरा कुमिल्ला है, जो जिले का केन्द्र है। इन दो के सिवा शायद ही कोई शहर है। और सब गाँव हैं। इसलिए यहाँ भी देहाती आबादी ढाका जिले जितनी ही है। परन्तु प्रति वर्गमील आबादी ढाका जैसी घनी नहीं है। ढाका तो भारत में सबसे अधिक घना जिला होगा। इस जिले में भी प्रति वर्गमील ८००-९०० की आबादी तो जरूर है। चाँदपुर सन का सबसे बड़ा केन्द्र है। अनेक विदेशी व्यापारी दुकानें रखकर यहाँ पड़े हैं और बहुत-से जहाजों में इसी बंदर से सन चढ़ता है। कुमिल्ला चाँदपुर के पूर्व में है। जैसे चाँदपुर सन का केन्द्र है, वैसे कुमिल्ला रूई का कहा जा सकता है। रूई का केन्द्र अर्थात् जिन स्थानों में मिलें नहीं, परन्तु कुमिल्ला की तरफ के पहाड़ी भाग में रूई बहुत पैदा होती है और अभी वहाँ हजारों चरखे जीवित हैं।

चाँदपुर में रेलवे का काम करनेवालों पर हड़ताल के समय चार वर्ष पहले गोली चली थी, यह बहुतों को याद होगा। और चाँदपुर है हरदयालबाबू और कृष्णदास का। बाबू हरदायल नाग को महासमिति के तमाम सदस्य तो जानते ही हैं। सतर-पचहत्तर वर्ष की उम्र में अब भी युवकों जैसा उत्साह इनमें है। जहाज से उतरते ही गांधीजी ने पहला ही प्रश्न यह किया: “पहले जैसे ही जवान हैं न ?” गयाजी के बाद असहयोग नीति में ये श्री राजगोपालाचार्य के साथ रहे थे और बेलगांव के प्रस्ताव से इन्हें दुःख हुआ था। यह दुःख चला गया हो, सो बात है ही नहीं, अब उन्हें स्वराज्यवादियों का पूरी तरह अविश्वास है—पूरी तरह नहीं, बेहद अविश्वास है, यह कहूँ तो हर्ज नहीं, क्योंकि और काम के लिए नहीं, परन्तु केवल स्वराज्यवादियों के बारे में ही मुख्यतः प्रश्न पूछने

के लिए इन्होंने गांधीजी से दो घंटे लिये थे! इतनी उम्र में कातते हैं, यद्यपि गांधीजी को नहीं पहुँच सकते। सबेरे कातने का प्रदर्शन हुआ, उसमें गांधीजी के साथ ये कातने बैठे। गांधीजी से कहते हैं: "आपको तो नहीं हराया जा सकता।" गांधीजी कहते हैं: "मुझे हराने का हक केवल मेरे लड़कों और पोतों को है। आप जैसे बुढ़ों से मैं हार नहीं सकता।"

कृष्णदास को भी गुजरात जानता है। 'गांधीजी के साथ सात मास' जिसने 'नवजीवन' में पढ़ा, वह भी कृष्णदास को नहीं भूला होगा। इनका जन्म का नाम तो इनकी जन्मभूमि में आकर जाना। देवेंद्रनाथ सिंह रॉय के रूप में इन्हें पहचाननेवाले कोई-कोई सहपाठी तो मिल जाते थे, यद्यपि इन्हें घर छोड़े तो पंद्रह-सोलह वर्ष हो गये। उस समय ये राष्ट्रीय विद्यापीठ के मैदिक होकर विवाह से डरकर घर छोड़कर भाग गये थे। उस समय के अपने गुरु का साथ छोड़कर घर आये ही नहीं। आज सब इन्हें इनके गुरु के दिये हुए ब्रह्मचारी कृष्णदास के नाम से पहचानते हैं। इनका अध्ययन तेजस्वी था और आज जो बड़े-बड़े डिग्रीधारी नव-युवक असहयोग-आन्दोलन में लगे हुए हैं, वे इन्हें एक मान्य मित्र मानते हैं। बचपन में जब घर छोड़ा, तब तो माँ-बाप को क्यों अच्छा लगा होगा? कारण घर में सबसे बड़े लड़के ये थे। विवाह के बारे में भी झगड़ा लम्बा चला था। परन्तु जब से गांधीजी के साथ हुए, तब से घर का यह मीठा झगड़ा भी मिट गया है; इतना ही नहीं, परन्तु सारा घर जितना इन्हें चाहता है, उतना ही इनकी प्रवृत्ति को चाहता है। अपने पुत्र की प्रवृत्ति से पूरी तरह रंगे हुए माँ-बाप बहुत थोड़े होंगे। आज इनके पिता असहयोग के समय से वकालत छोड़कर बैठे हुए हैं; माता, बड़े भाई (चाचा के लड़के), भाभी, भाई-बहन, भाई का सारा परिवार और चाचा-चाची का मिलकर कोई पचास मनुष्यों का कुटुम्ब अच्छी तरह कातता है और सिर से पैर तक खादी पहनता है। पिता चरखा खूब चलायें, इतने सशक्त नहीं हैं, इसलिए थोड़ा चलाते हैं। परन्तु चरखे के गीत बनाते हैं और माता तथा भाभी महिलाओं में फिरती हैं और कतवाती हैं। इनकी भाभी कृष्णदास की बातें करते हुए कहती हैं: "अरे, पहले तो ठाकुरपो (देवरजी) के साथ बातें करना मुश्किल होता था। इनमें विशेष ही कैसे किया जाए? गांधीजी के साथ रहकर इनमें हमारे सबके लिए प्रेम बढ़ा है। और अब इनके साथ हँसने-बोलने में संकोच नहीं होता।" इनके जीवन की बातें करके कहती हैं: "कृष्णदास का विवाह नहीं हुआ, परन्तु गांधीजी आज हमारे घर पधारे, अर्थात् कृष्णदास का विवाह ही तो है!" इनकी माता जैसी सौम्य, गंभीर, प्रसन्न-वदना स्त्री मैंने बहुत कम देखी हैं। गांधीजी के साथ खानगी बातें करने आयी थीं। खानगी बातों में कुछ करना नहीं था। "मेरा कृष्णदास बच्चा है। इसकी सेवा से आपको संतोष होता है न?" गांधीजी ने मौन के कारण लिखा: "संपूर्ण संतोष है। इसकी चिन्ता मुझे नहीं करनी पड़ती,

यह मेरी करता है।" बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहें तो गांधीजी ने लिखा: "आपको जो कहना हो सो खुले दिल से कहिए। कृष्णदास का 'विवाह चाहती हैं?' सब खिलखिलाकर हँस पड़े। परन्तु माता ने दृढ़ता से कहा: विवाह? आपको दिया तो आपको वह दास हो गया है। अब इसका विवाह कैसा?"

इन बहनों के कारण चाँदपुर की स्त्री-सभा बहुत ही सुन्दर हुई थी। गांधीजी से सभा में मिलने आने से पहले सूत लेकर आने का अनुरोध इन बहनों ने घर-घर फिरकर प्रत्येक बहन से किया था। इस प्रकार सैकड़ों स्त्रियाँ अपना सूत लेकर आयी थीं। ऐसे जलसे में आनेवाली स्त्रियाँ बहुत-सी खादी पहनकर आयें, ऐसा तो रिवाज ही पड़ गया है। इसी प्रकार पुरुषों में भी है। परन्तु कोरी खादी उसी दिन पहनने को निकाली हुई बहुतों के शरीर पर दिखाई देती है। बिथ्यून कॉलेज में पढ़नेवाली एक बहन ने गांधीजी का काफी ध्यान खींचा। मानपत्र स्त्रियों की तरफ से स्वयं ही अंग्रेजी में तैयार किया हुआ था, वह पढ़ा। परन्तु बंगाल में पुरुष आम तौर पर अंग्रेजी मानपत्र पढ़ते हैं, उसे कहीं बेहतर ढंग से पढ़ा; और चरखे का सुन्दर गीत गाया। चरखे के इस गीत की ध्रुवध्वनि 'घोर, घोर, घोर, आमार साधेर चरखा घोर' अभी तक गांधीजी भूले नहीं और जहाँ-तहाँ गाने को सबसे कहते हैं। यह ध्रुवध्वनि तो एक मुसलमान कवि के रचे हुए गीत में से है, परन्तु इसे लेकर दूसरी मधुर कड़ियाँ इस बहन ने रची थीं। गांधीजी ने इनसे पूछा: "कातती तो हैं न?" उन्होंने कहा: "जी हाँ। परन्तु आधे घंटे से ज्यादा नहीं दिया जाता।" बाद में पता चला कि इनके पिता भी, जो डॉक्टर हैं, नियमित कातते हैं।

यह प्रवासक्रम इतना बढ़िया रखा गया है कि प्रत्येक स्थान पर स्त्रियों का जलसा और कातने का प्रदर्शन तो होगा ही। चाँदपुर के कताई-प्रदर्शन में ज्यादातर चरखे खादी-प्रतिष्ठान के थे। बंगाल में सूत अच्छा है, इसका कारण पूनी पर बहुत ध्यान दिया जाता है। अधिकांश कातने में रस लेनेवाले अपनी पूनी बना लेते हैं और यह हई को अच्छी तरह साफ करके ही बनाते हैं। बहुतों के यहाँ देव कपास के पेड़ होते हैं। और कातने की पुरानी कला तो अभी तक कायम रही ही है। वैसे चरखे के सुधार की जरूरत तो सभी जगह पायी गयी। चरखा-प्रदर्शन सबेरे के समय खुले मैदान में रखा गया था। थोड़ी देर बाद रिमझिम-रिमझिम बरसात होती रही, परन्तु कोई हिला नहीं। आम सभा भी बरसात में ही हुई। चाँदपुर से मानपत्रों की शुरुआत हुई। जैसे-जैसे आगे चलते जा रहे हैं, वैसे-वैसे दिये जानेवाले मानपत्रों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। चिटेगांग (चट्टग्राम) में पाँच मानपत्र, नोआखाली में छह और कुमिल्ला में आठ दिये गये हैं। यह संख्या भयंकर है, छापने का खर्च व्यर्थ ही है। परन्तु एक-दो बातों में गांधीजी के सुझावों पर अक्षरश:अमल हुआ है। बहुत-से मानपत्रों में तथ्य भरे होते हैं और विशेषण कम होते हैं। चाँदपुर में—१० कातने वाले और ६८ न कातनेवाले सदस्य, २४५ चरखे,

आम तौर पर १०० गज फी घंटा कातनेवाले, महीने में एक मन सूत, कोई एक हजार करघों में से ७ शुद्ध बुननेवाले, मासिक २५० गज कपड़ा, मासिक ३०० रुपये की खादी-बिक्री और ४ राष्ट्रीय पाठशालाएँ, शराब का व्यसन बढ़ता जा रहा है—वगैरह तथ्यों से भरा हुआ मानपत्र हरदायलबाबू ने पढ़ सुनाया और वर्तमान स्थिति के विषय में निराशा दिखायी। जवाब में गांधीजी के कहे हुए कुछ उद्गार उल्लेखनीय हैं।

"प्रगति का इतिहास देखर आपने निराशा प्रकट की है। परन्तु जो मनुष्य अथवा समिति संपूर्ण त्याग-बुद्धि, दृढ़ता और उद्योग से काम करती है, उसे फल कम मिलने से निराशा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि भगवान् ने ऐसा कहा है कि हम फल के अधिकारी नहीं हैं। परन्तु इतनी कम प्रगति का कारण यह है कि कार्य-क्षेत्र में हमने थोड़े ही समय से प्रवेश किया है। अब तक हमने वाक्-क्षेत्र में ही विहार किया है, अब शरीर से काम कर रहे हैं, इसलिए वाणी से लायी हुई स्थिति के साथ तुलना करते हुए कार्य से बनी हुई स्थिति निराशाजनक लगती है। दो, चार या दस वर्ष पहले हमें भाषण देनेवाले, ताली बजानेवाले असंख्य मिलते थे, इसके बजाय आज थोड़े कातनेवाले मिलते हैं, इसमें क्या बुरा? मुझे तो इस कार्य में परिणाम जैसे-जैसे घटता जाय, वैसे-वैसे विश्वास अधिक दृढ़ होता जाता है। चार आने ही देनेवाले एक करोड़ मनुष्यों से हम कोई काम नहीं ले सकते, परन्तु बुद्धि और हृदयपूर्वक चरखे का कार्यक्रम मानने और चलानेवाले, हिन्दू-मुस्लिम-एकता को माननेवाले और अस्पृश्यता का त्याग करनेवाले तीस सदस्यों से मैं अधिक काम लेने की आशा रखता हूँ। हजार खोटे रुपयों को हम नदी में फेंक देंगे; जब कि पाँच खरे होंगे तो उनका थोड़ा आनज आयेगा। इसलिए कांग्रेस का नया मताधिकार छलनी है, जिसमें से निकम्मे छन जाते हैं और काम के रह जाते हैं।

"यदि चरखे पर या कार्य पर विश्वास न हो, तो हमें इसका त्याग कर देना चाहिए। परन्तु जब तक हमारा विश्वास इस चीज पर कायम हो, तब तक, यह जानते हुए भी कि बहुत लोग नहीं चलाते, इस वस्तु से निराश नहीं होना चाहिए। जिसे इस चीज में विश्वास हो, वह निरन्तर जाग्रत रहेगा और अपना कर्तव्य करता चला जायेगा। हिन्दू, मुसलमान वगैरह इस चीज को छोड़ दें, तो भी मैं अकेला घर में बैठकर आठ घण्टे चरखा चलाऊँगा। आपने सुना कि यहाँ दरिद्रता बढ़ती जा रही है और यह भी सुना कि इसके कारण लोगों में अपराध भी बढ़ते जा रहे हैं। और कल मैं सुन आया हूँ कि आजकल इस नदी में कुछ जहरीले पत्ते पैदा हो गये हैं, जिनसे खेत के खेत उजड़ जाते हैं। जैसे हमारी गफलत से ये पत्ते पैदा हुए हैं, वैसे ही हमारे प्रमाद के कारण दारिद्र्य उपन्न हुआ है। यह गफलत और आलस्य हटाने के लिए सारे भारत में चरखा रखा गया है। यदि करोड़ों की

कंगाली का नाश करना चाहते हैं तो चरखे के सिवा और किसी चीज से यह हो नहीं सकता। चरखा सब कार्यों की जड़ है, पहले वह चलाइए, बाद में जितने काम करने हों, कीजिए।

"निराशा में आशा की बात करने की आपने माँग की है। मैं क्या कहूँ? आशा, निराशा हमारे अपने ही भीतर हैं। मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु है और मित्र भी है। परन्तु इन बच्चों ने एक बात बतायी। जो गीत इन्होंने सुनाया, उसका तात्पर्य यह है कि संकट के समय ईश्वर का स्मरण किया जाय। परन्तु जब तक हम कर्तव्यपरायण न रहें, तब तक ईश्वर भी हमारी बात नहीं सुनेगा, वह ऐसा निर्दय है। इसलिए आखिरी बात यह है कि चरखा चलाइए और ईश्वर का नाम लीजिए। जब तक यह काम पूरा न हो, मैं चैन से नहीं बैठना चाहता। मुझे जो सारी बातें कही गयी हैं, वे सब मैं सुनता रहा हूँ। मेरे बखान करने से न आपको लाभ है, न मुझे। काम करने का समय आ चुका है। हम हिन्दू और मुसलमान एक होंगे तो ही एक-दूसरे से प्रेम कर सकेंगे। नामशूद्र आकर मुझे कह गये कि 'हिन्दू हमें धिक्कारते हैं।' अर्थात् हिन्दू धोबी और हिन्दू नाई उनका काम नहीं करते। मेरी दृष्टि में ऐसा करना पाप है। अन्त में यह कहना है कि विदेशी कपड़ा छोड़कर हाथ से काते हुए सूत के कपड़े पहनने लग जाइए।"

११-५-१९२५

गांधीजी ने गाँव की पाठशाला देखी। उस समय उन्होंने लड़कों से काफी हँसी-विनोद किया।

"जो सबसे चंचल बालक हो, वह आगे आये।" गांधीजी बोले।

पाँच बालक सामने आये।

"जो सबसे मूर्ख बालक हो, वह आये।"

लगभग सभी खड़े हो गये।

"सबसे अधिक दुष्ट कौन?"

एक लड़का खड़ा हुआ।

"बहुत दुष्ट कैसे?"

"मैं पेड़ पर चढ़ता हूँ। भाग-दौड़ करता हूँ।" लड़के ने जवाब दिया।

"तू कितना कातता है?"

"नहीं जानता।"

"तो जा। चंचलता के लिए तू फेल होता है।"

"सबसे मूर्ख कौन?"

एक लड़का खड़ा हुआ।

"मूर्ख कैसे?"

"बहुत बुद्धि नहीं और बहुत पढ़ाई नहीं।"

"कैसा कातता है?"

"बहुत अच्छा नहीं कात सकता। एक घंटे में ५०-६० गज ही कातता हूँ।"

"बहुत दौड़ता है?"

"नहीं।"

"कूद-फाँद?"

"हाँ।"

"सिलाई आती है?"

"थोड़ी।"

फिर उन्हें सम्बोधन करके गांधीजी बोले:

"अब तुम चंचल की व्याख्या सुनो। खूब खेले, दौड़े, नाचे, कूदे, वह चंचल तो है ही, परन्तु साथ ही साथ जो खूब जानता है, सब कामों में आगे बढ़ता है, वही सचमुच चंचल कहलाता है। जो खूब अंग्रेजी बोलता है, उसे मैं चंचल नहीं कहता। परन्तु जो खूब काते, उसे मैं खूब चंचल कहूँगा, क्योंकि वह समझता है कि मुझे कैसे कातना चाहिए। जिसकी बुद्धि इतनी तेज है, वह समझता है कि मेरे कातने से भारत का दारिद्र्य कम होगा। वह बड़ा चंचल कहलाता है। इसलिए वह हमेशा सोचेगा कि मुझे सुन्दर और खूब कातना चाहिए। वह अपने सामने घड़ी रखकर बैठेगा और देखेगा कि कितने समय में कितना काता? फिर वह पूछेगा कि दूसरे कितना कातते हैं। शिक्षक उससे कहेगा कि घंटे भर में ७०० गज भी कातनेवाले हैं। यह सुनकर यह चंचल बालक स्वयं कम कातता होगा, तो भी निराश नहीं होगा। परन्तु सोते समय प्रार्थना करेगा कि 'भगवान्, ७५० गज कातने की मुझे शक्ति दे।' दूसरे दिन वह खूब जोर से चरखा चलायेगा, तब वह देखेगा कि मैंने तो सिर्फ ३५० गज ही काता है। फिर भी निराश नहीं होगा और आगे चलकर ७०० गज भी कातने की आशा करेगा। इतनी प्रार्थना के बावजूद भी इतना न कात सके तो फिर यह सोचेगा कि इसका कारण क्या है? चरखे में कोई दोष है? यदि दोष होगा तो उसे ठीक करेगा। ठीक करने के बाद भी न बढ़े, तो सोचेगा कि पूनी में खराबी है? यदि वह हुई तो निराश हुए बिना पूनी सुधारेगा। इस प्रकार अन्त में ७५० गज कातकर ही चैन से बैठेगा।

"अब यह बताता हूँ कि मूर्ख किसे कहते हैं: मूर्ख वह, जिसे सन्तोष ही न हो। ७५० गज कातने के बाद भी ऐसा लगे कि अभी और कातना चाहिए। वह तो कहेगा कि 'मैं बढ़ता ही रहूँगा।'

"ऐसा मूर्ख भी अच्छा और ऐसा चंचल भी अच्छा। अपने-आपको मूर्ख माननेवाले ऐसे मूर्ख में नम्रता है; चंचल माननेवाले ऐसे चंचल में साहस है। हमें तो दोनों चाहिए। चंचल आगे रहेगा और मूर्ख आगे जाने की

चेष्टा करेगा। दोनों भारत की सेवा के लिए प्रयत्न करेंगे। उनमें स्वार्थ नहीं होगा। दोनों सदा ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, दया का पालन करेंगे; और सहपाठी की सेवा में समय लगायेंगे। माता-पिता के प्रति भक्ति रखेंगे। ऐसे दोनों को मैं मूर्ख और चंचल कहता हूँ—मानता हूँ। मैं चाहता हूँ, तुम ऐसे बनो।"

१३-५-१९२५

चाँदपुर में दो दिन रहने के बाद वहाँ से चले। आग्नेय दिशा में चटगाँव आया। या तो चाँदपुर से जहाज में बैठकर मेघना में से बंगाल की खाड़ी में उतरकर पूर्वी किनारे-किनारे चटगाँव जाते हैं या रेल से। जहाज का रास्ता मेघना के विकराल मुख में से होकर जाता है, इस कारण विकट है और लंबा भी है, इसलिए रेल के रास्ते ही सब जाते हैं। पहले तो पूर्व में जाना पड़ता है। पूर्व में नोआखाली जिले की सीमा में कटाई का बड़ा केन्द्र फेनी है। फेनी के आगे होकर फिर सीधे दक्षिण में पचहत्तर मील दूर चटगाँव है। फेनी में हाथ के सूत की बड़ी हाट लगती है। यह सूत लेकर जुलाहे ताना मिल के सूत का डालकर अपूर्ण खादी बुनते हैं। फेनी के शुद्ध खादी-सेवकों ने स्टेशन पर गांधीजी को छंद-बद्ध संस्कृत मानपत्र दिया। संस्कृत इसलिए कि गांधीजी बंगाली नहीं समझते और अंग्रेजी में लिखना ठीक नहीं। इस प्रकार और तीन जगह संस्कृत में मानपत्र दिए गए थे। महाजन हाट खादी-प्रतिष्ठान का चटगाँव जिले में बड़ा केन्द्र है। खादी-प्रतिष्ठान आजकल वहाँ नौ मन सूत प्रति सप्ताह बुनवाता है। जैसे त्रिपुरा जिले का पूर्वी भाग पहाड़ी है, वैसे ही चटगाँव जिले का पूर्वी भाग भी पहाड़ी है। इन पहाड़ियों में कपास खूब होती है—इतनी अधिक कि दोनों जिलों की कपास सारे बंगाल को पूरा कपड़ा दे सकती है। इन दोनों जिलों में असहयोग और गांधीजी के आगमन से पहले भी चरखा बन्द नहीं हुआ था। चटगाँव जिले के सन् १९१२ के सरकारी गजेटियर में बताया गया है कि ११,००० मनुष्य कातकर अपना निर्वाह करते हैं। आज संख्या बहुत अधिक है। महाजन हाट के आसपास के गाँवों में जाकर खादी-प्रतिष्ठानवाले सूत ले आते हैं और लोगों को रूई दे आते हैं। ज़ुलाहे अधिकतर हिन्दू हैं और कातनेवालों का बड़ा भाग मुसलमान है। आजकल महाजन हाट के सूत-बाज़ार से बहुत-से अपूर्ण खादी बुननेवाले सूत ले जाते हैं। सतीशबाबू का मनोरथ यह है कि यह सब सूत खादी के लिए खरीद लिया जाए और शुद्ध खादी का उत्पादन बन्द हो जाए।

महाजन हाट में एक जमींदार कुटुम्ब खादी में बड़ी दिलचस्पी ले रहा है और खादी-प्रतिष्ठान को खूब मदद दे रहा है। इन लोगों का नाम रायचौधरी है। रायचौधरी पाँच भाई हैं। पाँचों भाई शामिल हैं और पाँचों के घर में चरखे चलते हैं। पुदुपालयम् के रत्नसभापति गवर्नर जैसा त्याग इनका न हो और उनके घर में स्त्रियाँ जितना कातती हैं, उतना यहाँ न काता जाता हो, परन्तु सारा घर खादी से ढँका हुआ है और गांधीजी के आगमन के बाद खादी के लिए अधिक त्याग करना निश्चित है।

चटगाँव अर्थात् भारत का पूर्वी सिरा। महाजन हाट से दक्षिण में चटगाँव स्थित है। चटगाँव जिले का बड़ा भाग पहाड़ी होने के कारण वहाँ की आबादी अपेक्षाकृत कम है। हवा में नमी ढाका और त्रिपुरा जिलों से

भी ज्यादा है। गाँव में लगभग ९०० तालाब हैं। कुछ वर्ष पहले ११०० थे। चौमासे में कभी-कभी सख्त तूफान आते हैं, जिनसे भारी हानि होती है। सन् १८९७ में आये हुए ऐसे तूफान से अधिक नहीं, तो २०,००० मनुष्य मरे थे। चटगाँव आबादी में नड़ियाद जितना है, परन्तु सभा तो इतनी बड़ी हुई थी कि नड़ियाद में कभी देखी न गयी हो। इतनी बड़ी सभा, फिर भी शांति अपार थी और व्यवस्था बहुत ही बढ़िया थी। मानपत्रों में कांग्रेस के कार्य का विवरण था। यह बताता था कि पिछले दो-तीन वर्षों में कुछ भी काम नहीं हुआ। "आप पिछली बार यहाँ आये थे, उसके बाद हम कितने गिरे हैं!" यों कहकर उसमें असफलता का इकरार किया गया था। चटगाँव में कांग्रेस के ४५ सदस्य बताये गये थे। ये सब सुचिया और महाजन हाट के खादी-प्रतिष्ठान के कार्यकर्ता थे। शहर या जिले का एक भी आदमी उनमें नहीं था। श्री सेनगुप्ता कलकत्ते रहते हैं और किसी दूसरे को चरखे की परवाह नहीं है।

इस गाँव के लोकल बोर्ड ने मानपत्र देने से इनकार कर दिया। इसलिए लोकल फंड से देनेवालों ने मानपत्र भेट किया।

म्युनिसिपैलिटी ने भी मानपत्र दिया। उसमें बताया गया कि प्रारंभिक और माध्यमिक पाठशालाओं में चरखा जारी करने का प्रस्ताव किया गया है।

सभा को सम्बोधन करके गांधीजी जो बोले, उसका भाषान्तर एक मुसलमान ने किया। गांधीजी बोले:

"इस ऐतिहासिक स्थान में आकर मुझे एक बात के विचार से दुःख होता है। पिछली बार जब मैं आया था, तब मेरे साथ एक अली थे (भाषान्तर करने वाले ने कहा: 'उनके साथ और किसी भी प्रकार का भेद नहीं है।') आज वे नहीं हैं। सेनगुप्ता भी नहीं हैं। उस समय तो उन पर प्रतिबन्ध था कि वे सभा में नहीं जा सकते। वे हम दोनों को यहाँ छोड़कर गये थे। सारा प्रबंध उन्होंने किया था।

"आपकी कार्गुजारी के लिए आपको बधाई देता हूँ, क्योंकि आपने मुक्त शिक्षा देने की व्यवस्था की है। शिक्षा अनिवार्य कर देने से फायदा है या नहीं, इसका मुझे पता नहीं है। परन्तु मैं जानता हूँ कि देश में इस बारे में दो पक्ष हैं। मैं आपके प्रयोग का अवलोकन करूँगा। नौकरों के लिए खादी का पहनना अनिवार्य किया है, इसके लिए बधाई देता हूँ। चरखे के बिना हमारा उद्धार नहीं है। कलकत्ते में मैंने जो कहा था, वह याद दिलाता हूँ। मैंने कहा था कि कौंसिलों में जाकर कुछ काम करना चाहो तो भी चरखा चलाना चाहिए। सहयोग करना चाहो तो भी चरखा चलाना चाहिए। इसके बिना सहयोग असम्भव है। यहाँ कपास बहुत होती है। खादी-

प्रतिष्ठानवाले सतीशबाबू के साथ बातें करने से मालूम हुआ है कि मुसलमान बहनें इतनी गरीब हैं कि उन्हें कातने का काम मिले तो वे बहुत खुश हो जायें। और उन्हें यह काम इतना बढ़िया आता है कि बंगाल को जितना कपड़ा चाहिए, वह सब बंगाल ही पूरा कर सकता है। परन्तु यह जानकर मुझे कष्ट होता है कि बंगाल के भाई बिलयती कपड़े पर मुग्ध हो गये हैं और खादी नहीं पहनते । कहा जाता है कि मांचेस्टर का कपड़ा सस्ता पड़ता है । मैं यह बात स्वीकार करता हूँ कि उसकी तुलना में खादी महँगी पड़ती है । परन्तु खादी में लगनेवाला रुपया देश में ही रहता है । तो क्या हम इतना त्याग नहीं कर सकते ? फिर आप खुद रोज एक घंटा कातें तो खादी सस्ती भी हो सकती है ।

"आपने नौकरों के लिए खादी अनिवार्य कर दी, यह तो ठीक, परन्तु क्या इससे पहले आपने यह भी प्रस्ताव किया है कि आप सब खादी पहनें? इन लोगों के लिए प्रस्ताव करने से पहले आप स्वयं खादी पहनेंगे, ऐसा प्रस्ताव करना चाहिए था । नौकर खादी पहनें और म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन और कौंसिलर न पहनें, क्या यह शोभा देगा? और, लोगों से भी कहता हूँ कि आपने इन लोगों को चुना है और ये कमिश्नर का आदेश जारी कराकर नौकरों को खादी पहनायें, इससे पहले ये सब पहनें, यह देखना क्या आपका फर्ज नहीं है? खादी तो आत्मशुद्धि के लिए है । और सब किये बिना जो सच बात है, वही आप कीजिए । आपमें सच्चाई होनी चाहिए। और जितनी प्रगति की है, उसका पालन करना ही चाहिए ।"

सभा खत्म होने से पहले गांधीजी से अंग्रेजी में बोलने को कहा गया । गांधीजी विशेषतः बंगाल में लोगों को हिन्दी समझने और सीखने की आदत पड़े, इसके लिए केवल हिन्दी में ही बोलते हैं और उसका भाषान्तर अंग्रेजी में (? बंगला में) होता है । परन्तु ऐसी माँग हुई, इसलिए हिन्दी में भाषण करने के अलावा अंग्रेजी में भी बोले:

"कुछ अंग्रेजी में कहने के लिए मुझे सुझाव दिया गया है । बंगालियों में अंग्रेजी के प्रति जो मोह रहा है, उसे मैं जानता हूँ । मैंने जो कुछ कहा है, उसका बंगला में—आपकी मातृभाषा में—ठीक अनुवाद किया गया है । मुझे नहीं लगता कि जो भाषा मेरी या आपकी मातृभाषा नहीं है, उस भाषा में मैं कुछ अधिक स्पष्ट रूप में आपसे कह सकूँगा । परन्तु मुझे तो आपना काम करना है और अंग्रेजी में बोलकर भी यदि आपमें से कुछ को भी मैं खादी, सत्य और अहिंसा की तरफ मोड़ सकूँ, तो मुझे ऐसा करना चाहिए । इसलिए अंग्रेजी में भी बोलकर मैं आपका समय लेता हूँ तो यह उनको खुश रखने के लिए करता हूँ, जो यह माँग करते हैं कि मैं अंग्रेजी में बोलूँ । और यदि अब तक उन्हें सत्य न मिला हो, तो अब मिल जाय, इस हेतु से करता हूँ । कुछ वर्ष पहले मेरे

एक साथी कार्यकर्ता ने कहा था कि कातना और खादी की बातें समझना बिलकुल आसान है और इसलिए शिक्षित वर्ग घबराता है । उन्होंने बिलकुल सच कहा कि ये चीजें सीधी-सादी हैं । इसलिए पढ़े-लिखे लोग उनका हार्द और महान् हेतु समझ नहीं सकते । चरखा कातना बिलकुल आसान मामला है और चार वर्ष के अपने गहरे और प्रार्थनामय मनोमंथन के बाद मुझे लगा है कि भारत में दुःख दूर करने के लिए खादी से अधिक सफल कोई और साधन नहीं है।

"हमारे देश के प्रश्न इतने विशाल और पेचीदा हैं कि उन्हें हल करने के लिए सादा-से-सादा उपाय चाहिए। हम जो अटपटी शिक्षा पाते हैं, उससे हमारे विचार भी पेचीदा हो गये हैं, हमारे दिमाग सुन्न पड़ गये हैं और कोई चीज अटपटे ढंग से हमारे सामने न रखी जाय तो उसके भीतर का सत्य समझने से हम इनकार करते हैं!

"परन्तु यदि आप खूब सोचेंगे अथवा एकांत में जाकर ईश्वर की शरण खोजेंगे, तो वह आपका हाथ उठाकर सीधा चरखे पर रखेगा। हम बहुत बके, हमने बहुत भाषण दिये, बहुत अखबार रँगे, बहुत किताबें लिखीं और बहुत खोज कीं; परन्तु भाषणों और पुस्तकें लिखने का जमाना गया सो गया। अब वह फिर न आयेगा। अब काम का जमाना आया है। आपको जिस जाति के साथ निपटना है, वह जाति वक्ताओं की नहीं, कर्मयोगियों की है। झुकना किसे कहते हैं, उस जाति ने कभी जाना नहीं, वह जाति अटल निश्चयवाली है, उस जाति ने संसार के कुछ बड़े-से-बड़े वीर योद्धा उत्पन्न किये हैं। इसलिए कितनी भी राजनीतिज्ञता करें, वह काम नहीं आयेगी। हमें लोक-जाग्रति चाहिए। हमारे कौंसिलर विधान-मंडलों में गये हैं। क्या आप चाहते हैं कि उनके वचन को कुछ वजन मिले? आज तो इनके शब्द में कोई जोर नहीं, इनके प्रस्तावों में कोई बल नहीं। कारण यह नहीं कि इन्हें बोलना नहीं आता। देशबन्धु ने बताया है कि सरकार के प्रस्ताव और विधान को पछाड़ना उन्हें कैसा आता है। परन्तु उनके पीछे सत्ता न हो तो वे भी कुछ नहीं कर सकते। हम सब कौंसिलों में नहीं जा सकते। मैंने बार-बार कहा है कि मेरा कौंसिल प्रवेश में विश्वास नहीं है। परन्तु जिसे विश्वास हो वह जाय, यह भी मैंने कहा है। उन्हें भेजकर उन्हें सत्ताहीन रखना ठीक नहीं है। वहाँ जाकर वे बदनाम हों, यह मैं नहीं देखना चाहता। मैं चाहता हूँ कि सरकार इन्हें सम्मान और ध्यानपूर्वक सुने।

"यह कैसे हो?—बड़ी सभाएँ करके? प्रस्ताव करके? उनके प्रस्तावों का समर्थन करके? सत्ता, शक्ति आपमें न हो, तब तक आप उन्हें क्या दे सकते हैं? और हमारे पास वह सत्ता नहीं है। सरकार की हिंसा से निपट सकने लायक हिंसा-शक्ति कोई पैदा कर सके, ऐसा मेरी जानकारी में तो नहीं है। संसार के दूसरे देशों में भले

ही हो, परन्तु भारत में तो हिंसा से स्वराज्य हरगिज नहीं मिलेगा। मैंने अहिंसा का कार्यक्रम देश के सामने रखा है, इसका कारण यह नहीं कि मैंने उसे धर्म के रूप में स्वीकार किया है, परन्तु इस कारण किया है कि आज यही फलदायक है। देश के लिए मुझे और कोई राजकाम आज नहीं सूझ रहा है। और जिसमें कुछ भी समझदारी हो, वह निश्चय कर ले कि हिंसा से कुछ होना नहीं।

"आपको देश पर लगी हुई बेड़ियाँ तोड़नी हैं। इसके लिए युवकों में आयी हुई अधीरता मैं समझ सकता हूँ। परन्तु उन्हें तोड़ने के प्रयत्नों में मैं आपमें से किसीसे पीछे नहीं रहता। मैं अपने-आपको एक समझदार आदमी मानता हूँ। मैंने दुनिया देखी है। मैं आजन्म लड़वैया हूँ। मैं जवान हुआ, तब से सबके साथ—अपनी पत्नी, माँ-बाप, सहधर्मी, मुसलमान भाई, सबके साथ—लड़ता ही आया हूँ। परन्तु इन तमाम लड़ाइयों में मेरा एक ही सामान्य हथियार था—और वह था अहिंसा का। अपनी पत्नी के साथ मैं हिंसक लड़ाई नहीं अपना सकता था। मुसलमानों के साथ मैं हिंसक लड़ाई लड़ना नहीं चाहता था। हिन्दुओं के साथ हिंसक लड़ाई लड़ने की मुझमें हिम्मत नहीं। इन सब बातों से मैंने सार निकाला कि मैं अंग्रेजों के साथ भी हिंसक लड़ाई नहीं अपना सकता। मैं छाती ठोंककर कह सकता हूँ कि अहिंसक रहकर—न कि हिंसक बनकर—मैंने अनेक अंग्रजों का हृदय-परिवर्तन किया है। मेरा यह दावा है तो बड़ा, मगर यह समझ लीजिए कि यह एक नम्र मानव का दावा है।

"परन्तु अहिंसा कार्य में परिणत होनी चाहिए, और यह कार्य अविरत होना चाहिए; अखंड अविअन्त होना चाहिए—श्रद्धा के साथ होना चाहिए। और भारत के आबालवृद्ध, शिक्षित, अशिक्षित, संन्यासी और संसारी, राजनीतिज्ञ और पंडित सबके लिए चरखा चलाने के सिवा मुझे और कुछ दिखाई नहीं देता। आधे घंटे की मेहनत के परिणाम को तीस करोड़ से गुणा कर लीजिए और फिर देखिए कि क्या परिणाम आता है। आज चालीस-चालीस वर्ष के शुष्क राजनैतिक जीवन के अन्त में एक भी चीज हम सांगोपांग करके नहीं दिखा सकते। हमने अनेक कार्यक्रम देश के सामने रखे। आज देश के आगे में एक ही कार्यक्रम पेश कर रहा हूँ; और देश और किसीका विचार करे, इससे पहले इस कार्यक्रम को पूरा करने की मैं देश से बिनती करता हूँ। खादी कितनी ही महँगी या मोटी हो, तो भी हम सब पहनें, क्या यह बहुत मुश्किल बात है? यदि महँगी पड़ती हो, तो दो टुकड़े करके अपनी लाज ढँकें और ऐसा करेंगे तो इतना तो आपके खाते में जमा हो जायगा। यदि वह आपको चुभती हो तो भारत के खातिर चुभनेवाली खुरदरी भी पहनना सहन कर लें। देश की गुलामी खादी से भी अधिक खुरदरी है। देश की दरिद्रता चटगाँव में पैदा होनेवाली खुरदरी खादी से भी अधिक चुभनेवाली है। यदि भारत के कंगालों के लिए आपके दिल में दर्द हो तो कातिए, कातिए, कातिए—यहाँ तक कि कातते-

कातते आपके हाथ सुन्न पड़ जायँ और खादी इतनी पहनिए कि खादी पहनते-पहनते पसीने से नहा लें। इस प्रकार आपकी कल्पना का और मेरी कल्पना का स्वराज मिल जायगा और आप हर्ष से नाचेंगे।"

इस भाषण के बाद और किसी प्रवृत्ति का उल्लेख करना शायद ही रह जाता है। चटगाँव में कार्यक्रम तो ढेर सारा रखा हुआ था। विद्यार्थियों की सभा, व्यापारियों का मानपत्र, मछेरों का मानपत्र, अंत्यजों का मानपत्र, भंगियों का मानपत्र इ. इ.

विद्यार्थियों की सभा सुन्दर थी। श्री सेनगुप्ता के बँगले के आँगन में ही छह-सात सौ विद्यार्थी इकट्ठे हुए थे। "किस पर बोलूँ?" ऐसा सवाल गांधीजी ने किया। इस पर विद्यार्थियों ने कहा: "राष्ट्रीय शिक्षा" इस प्रकार यह प्रश्न पूछा गया कि "राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ क्या?" अनेक प्रश्नों के बाद गांधीजी कहते हैं:

"अच्छा, तो मैं कहता हूँ कि सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का आरंभ कातने की शिक्षा से हो। इंग्लैंड में जैसे प्रत्येक लड़का नाविक की शिक्षा प्राप्त करता है और बंगाल में भी स्वाभाविक रूप में तुम सबको तैरना और डाँड़ चलाना आता है, वैसे भारत के सात लाख गाँवों की रक्षा के लिए खेती के सिवा कातने का धंधा चाहिए। अमरीका में भी ऐसे सहायक धंधे पर जोर देते हैं, यद्यपि वहाँ सम्मिलित परिवार की उपाधि नहीं है और राज्य तो स्वराज्य ही है। भारत में प्रत्येक किसान खेती के अलावा कुछ-न-कुछ दूसरी थोड़ी-सी कमाई के बिना जी नहीं सकता और वह कातने से ही प्राप्त कर सकता है। बुनना उसके लिए अनुकूल नहीं है, क्योंकि फालतू वक्त देने से काम नहीं चलता। मैं स्त्रियों की सभा में हो आया और वहाँ कातने का पाठ दे आया। (तकली निकालते-निकालते) इस छोटी-सी खोली के अन्दर मेरा चरखा यह है। यह तुम्हें बहुत बढ़िया नहीं लगेगी, परन्तु जो बढ़िया थी, वह मैं फरीदपुर में कुमारी घोष को दे आया। वे शिक्षा-विभाग की अफसर हैं। उन्हें वह पसंद आयी है और उन्होंने जवाब भेजा है कि मैं कातूँगी और मित्रों को सिखाऊँगी। तुम गप्पें लगाते हो, मित्रों के साथ दिल्लगी करते हो, भूमिति के प्रश्नों का विचार करते हो, तब भी इसे चला सकते हो। हमारे यहाँ पशुपालक चलते-चलते इसे चलाते रहते हैं। उनकी नजर अपनी भेड़ों पर होती है और तकली चलती रहती है। तुम्हें मेरी दलील समझ में न आये, तो सतीशबाबू से पूछो। ये अपना रसायन का कारखाना और कमाई छोड़कर इसमें लगे हैं। ये तुम्हें मेरी अपेक्षा अधिक अच्छा हिसाब लगाकर बतायेंगे, क्योंकि इनका खोजबीन का दिमाग है। तुम्हें ऐसा लगता हो कि तुम्हारे देश में भूख से तड़पनेवालों की खातिर तुम्हें यह नित्ययज्ञ करना चाहिए, तो इसे करने लगो।"

इतना कहकर विद्यार्थियों से पूछा: "बोलो, कितनों के गले मेरी बात उतरी?" बोलना शुरू करने से पहले पूछा था कि कातना कितनों को आता है, तो किसी ने हाथ नहीं उठाया था और कितने का वचन कितने देंगे, इसके उत्तर में दस जनों ने हाथ उठाये। सप्रयोग भाषण के बाद का अंतिम प्रश्न पूछा गया, तब ५०-६० जनों ने हाथ उठाये। "अच्छा, तो कितने कितने का वचन देते हैं?" इस बार बीसेक हाथ उठे। विद्यार्थियों में प्रामाणिकता का भान कितना बढ़ता जा रहा है, यह बताने का इससे अच्छा और क्या प्रमाण चाहिए?

इसके बाद व्यापारियों की सभा थी। वहाँ भी बात यही की यही थी, परन्तु वहाँ की दलील दूसरे ही प्रकार की थी:

"व्यापारियों के साथ मेरा संबंध गाढ़ है। मेरा दृढ़ निश्चय है कि व्यापारियों के द्वारा ही हमने भारत खोया और व्यापारियों के द्वारा ही वापस लेंगे। शिक्षित वर्ग के द्वारा भारत की स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। सारी दुनिया में शिक्षित वर्ग के द्वारा स्वतंत्रता की रक्षा कहीं भी हुई हो, यह मेरी जानकारी में नहीं है। देश की रक्षा करनेवाले व्यापारी और योद्धा हैं। परन्तु भारत का स्वातंत्र्य लड़ाई में नहीं गया, केवल व्यापार में ही गया है। इसलिए आपसे कहता हूँ कि व्यापारियों की सहायता जब मुझे अपने काम में पूरी तरह मिलेगी, तब भारत की स्वतंत्रता हस्ता-मलकत्व हो जायेगी। इसलिए व्यापारियों से खादी-प्रचार के सार्वजनिक सेवा के कार्य में पूरा हिस्सा देने की प्रार्थना करता हूँ। आप यज्ञ की खातिर आधा घंटा कातें और शुद्ध खादी पहनें। मेरे एक-दो करोड़पति मित्र खादी पहनते हैं और कातते हैं। आप भी ऐसा क्यों न करें? आप द्रव्य और बुद्धि से भी सहायता दे सकते हैं। आप करना चाहें तो मुझसे ज्यादा कर सकते हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप इस कार्य में तन, मन और धन से योग दें।"

इस प्रकार चरखे के सिवा और बात ही नहीं। अब तो गांधीजी तकली ठीक-ठीक कात सकते हैं। इसलिए रेल में, घोड़ा-गाड़ी में, सभाओं में भी तकली चलाते हैं। गो-सभा के सदस्य के नाते दो हजार गज सूत कातने का काम बढ़ गया है। इस प्रकार चार हजार गज निकालना हुआ। अतः चरखे पर भी ठीक एक घंटा बैठते हैं और तकली तो जहाँ जाते हैं, वहीं रखते हैं। बंगला अक्षर जरा-जरा पढ़ना सीख लिया है और छोटे स्टेशन पर एक वाक्य के भाषण में बंगला ही बोलते हैं: "चोरखा कांतो; खद्दर पोरो।"

जैसे-तैसे करके कातने का एक घंटा चुरानेवाले गांधीजी के भक्तों को दया नहीं है। बहुतेरे तो इन्हें चरखा कातने को देते हैं और बाद में प्रसाद के रूप में सूत रख लेना चाहते हैं! यह नहीं सोचते कि कांग्रेस को

देने का सूत उतना कम हो जाता है। परन्तु चटगाँव में एक अजीब मित्र मिल गये। सरकारी कॉलेज के प्रिंसिपल मुसलमान सज्जन थे। वे तो गांधीजी से कहते हैं: "मुझे तो आपके काते हुए सूत का कपड़ा चाहिए। वह हो, तो खादी पहनूं।" औरंगजेब बादशाह की तरह गद्दी पर ही बैठे रहे हों, तब तो जैसे वह टोपी सीकर बेचता था, वैसे गांधीजी भी बुनकर अपना कपड़ा बेचते। गांधीजी ने कहा: "मुझसे अभी तक इतना नहीं काता जाता और बुनूँ तो कब?" फिर भी उन्होंने आग्रह जारी रखा। गांधीजी कहते हैं: "प्रयत्न करूँगा।" दधीचि की हड्डियाँ माँगने जानेवाले भी ऐसे ही होंगे?

अंत्यजों की सभा में नीचे का गीत गाया गया:

बांगलार माटि बांगलार जल,
बांगलार वायु बांगलार फल।
धन्य होऊक धन्य होऊक धन्य होऊक। हे भगवान
बांगलीर प्राण बांगलीर मोन,
बांगलार घोरे जत भाई बोन,
एक होऊक एक होऊक एक होऊक। हे भगवान

यहाँ कुल तीन मानपत्र दिये गये। सबकी भाषा हिन्दी थी। मछेरों के दिये हुए मानपत्र में नाम लिखा था—मोहनदास कर्मचार गांधी! मानपत्र में बताया गया—हमारे पाँच हजार रुपये बैंक में जमा हैं। हममें से अधिकांश शराब पीते थे। उनमें से बहुतों ने छोड़ दिया है। परन्तु कुछ अब भी मँगाते हैं। हम मैला काम करते हैं। हम न हों, तो हिन्दू-समाज न रहे। हम आपकी आज्ञा पालते हैं। आपकी खादी की बात कहीं-कहीं चलती है। हमने सूत कातना और खादी पहनना नहीं सीखा।

उत्तर देते हुए गांधीजी बोले:

"आपके मानपत्र के लिए आपका एहसान मानता हूँ। मेरे सामने कोई अछूत नहीं है। कोई अस्पृश्य नहीं है। आपको अछूत कहा जाता है, परन्तु इसे मैं गलती समझता हूँ। मैंने अनेक बार कहा है कि आजकल अस्पृश्यता का जो अर्थ किया जाता है, वैसी अस्पृश्यता के लिए हिन्दू-धर्म में कोई स्थान नहीं है। आपके मानपत्र में आपने अपने दुःखों की बात कही है। मेरा विश्वास है कि समय जाते सारे दुःख चले जायँगे, क्योंकि आजकल

जमाना ऐसा आया है कि किसी पर दुःख पड़ता है तो कोई बरदाश्त नहीं करता। हिन्दू-जाति में भी एक प्रकार का आन्दोलन चल रहा है। इसलिए कुछ-न-कुछ व्यवस्था होगी।

"परन्तु अस्पृश्यों से एक-दो बातें कहना चाहता हूँ। आप लोगों में रहकर मुझे आपका बहुत अनुभव मिला है। मैं मानता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य अपनी रक्षा के लिए खुद ही उपाय न करे, तो उसके कष्ट का निवारण नहीं होता। इसलिए वह इलाज बताना चाहता हूँ, जो आपके हाथ में है। आपने मुझे बताया है कि आपका धंधा मछली मारना है, उसमें दूसरे हिन्दू दखल देते हैं। यदि यह बात सच हो तो मुझे दुःख होता है। परन्तु इसे दूर करने का उपाय आपके हाथ में है। वह यह है कि आप अपनी हालत को अच्छी तरह समझें और अपनी रक्षा करें। इसके लिए आप लोगों में संगठन होना चाहिए और आपमें से ऐसे आदमी पैदा होने चाहिए, जो त्याग से जाति-सेवा करें। और जब तक ऐसे स्वार्थ-त्यागी पैदा न हों, तब तक आपके धंधे की दूसरों के हाथों में रक्षा नहीं होगी। मेरे जैसे कुछ मनुष्य आपको नसीहत दे सकते हैं, परन्तु काम करना तो आपके ही हाथ में है। मेरे जैसे आदमी हकीम का काम करें; दवा सुझायें, परन्तु दवा खाने का काम तो आपको ही करना चाहिए। इसलिए आपको यह बात अच्छी तरह समझनी चाहिए कि मैं आपको कितना ही आश्वासन दूँ, परन्तु आप अपने कार्य के लिए कटिबद्ध नहीं होंगे, तब तक कुछ नहीं होगा। नाई-धोबी आपका काम नहीं करते, इसके लिए जरूर हिन्दुओं पर जिम्मेदारी है और इसके लिए दूसरे हिन्दुओं से कह रहा हूँ कि धोबियों और नाइयों को समाझाइए। मेहतरों ने बताया है कि मद्यपान लगभग छोड़ दिया है। इसके लिए उन्हें बधाई देता हूँ। परन्तु उन्होंने कहा है कि शादी होती है, तब थोड़ी शराब काम में ली जाती है। मैं कहता हूँ कि आप उस समय भी मदिरा छोड़िए। मैंने सुना है कि कुछ धर्म-सम्प्रदायों के लोग मानते हैं कि कुछ क्रियाओं में शराब की जरूरत रहती है। परन्तु इससे यह न मान लेना कि धर्म मजबूर करता है कि शराब पियें। शौक के लिए जो पीते हैं, वे तो जरूर छोड़ें। दूसरे मानपत्र में बताया गया कि सूअर का मांस छोड़ दिया है। इसके लिए बधाई देता हूँ। इस प्रकार आपमें कोई गोमांस खानेवाले हों अथवा मुर्दार मांस खानेवाले हों, तो वे भी छोड़ें। आप दातुन करें, ईश्वर का नाम लें और ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह आपको हृदय, मन और शरीर पवित्र बनाये। अपने बच्चों को तालीम देने की कोशिश कीजिए। आपकी स्त्रियाँ सूत कातने को तैयार हों, तो उनकी मदद करने को खादी-प्रतिष्ठान तैयार है। विदेशी कपड़ा पहनना छोड़कर खादी पहनिए। चटगाँव में आपको जैसी खादी चाहिए, वैसी मिलती है। वह महँगी पड़ती हो, तो आप स्वयं सूत कातें, तो वह सस्ती होगी।

"दूसरे हिन्दुओं से दो शब्द कहना चाहता हूँ। हिन्दू-धर्म या इसलाम-धर्म या ईसाई-धर्म—सब धर्मों की आज संसार में तुलना हो रही है। और मैंने बताया है कि जगत् को ऐसा मालूम होता है कि यदि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का एक अंग माना जाता हो, तो यह धर्म अंतिम पंक्ति में आ जायगा। इससे आगे बढ़कर मैं कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म के लोग अस्पृश्यता का निवारण जल्दी न करें, तो मैं इसका नाश मानता हूँ। धर्म में अस्पृश्यता को स्थान देकर, अस्पृश्य को जानवर से भी खराब समझकर उन्होंने सारे भारत को कलंकित किया है। इसका खराब असर मुसलमान, पारसी वगैरह जातियों पर भी पड़ा है, क्योंकि जब भारत के रहनेवाले हिन्दुस्तान से बाहर जाते हैं, तब वहाँ के लोग भारत के सभी लोगों को अछूत मानते हैं। हम जैसे अछूत को अलग मानते हैं, वैसे हमें भी वे लोग अलग समझते हैं। विदेशों में हमें ट्राम में या दफतर में जगह नहीं मिलती। उनके लिए हम अस्पृश्य हो गये हैं। इसे मैं यहाँ मानी जानेवाली अस्पृश्यता की सजा समझता हूँ। जहाँ ऐसा हो, वहाँ स्वराज्य असंभव है। जिस धर्म में किसी भी मनुष्य के प्रति घृणा या तिरस्कार होता है, वह धर्म नहीं, परन्तु अधर्म है। अहिंसा को माननेवाले लोग दूसरे किन्हीं लोगों को अस्पृश्य कैसे मान सकते हैं?

"ईश्वर आपको अपना धर्म पालन करने का ज्ञान दे, ऐसी मेरी प्रार्थना है। और अस्पृश्यों के लिए ईश्वर से सदा प्रार्थना करता हूँ कि हम जो कष्ट इन्हें देते हैं, उसे वह मिटाये। मेरा विश्वास है कि इनका सारा दुःख मिट जायगा।"

नोआखाली मेघना के मुहाने पर है। नदी यहाँ अठारह मील चौड़ी हो जाती है और कई बार नदी के तटवर्ती घर बह गये हैं। पानी का कटाव इतना होता रहता है कि कब और कहाँ तक पानी पहुँचेगा, इसका पता ही नहीं चलता। जो जमींदार हमारे यजमान थे, उनका लाखों रुपये का मकान टुकड़े-टुकड़े होकर एक महीने के भीतर बह गया! ऐसी नाशकारक प्रवृत्ति के कारण नदी का नाम 'कीर्तिनाशा' भी पड़ गया है।

नोआखाली जिले के गजेटियर में उसके कातने-बुननेवालों की संख्या छह हजार बतायी गयी है। सन् १९२१ में वहाँ खूब काम चलता था। अनेक करघे हाथ का सूत बुननेवाले थे, आज तो एक करघा रह गया है। इस मुसलमान बुनकर से गांधीजी मिले थे। उसने देव कपास के चालीस पेड़ लगाये हुए हैं। उनसे होनेवाली रुई वह कतवाता है और बुनता है। मैं हाथकता सूत बुनना कभी नहीं छोड़ूँगा, यह आश्वासन उसने गांधीजी को दिया।

१४-५-१९२५

स्त्रियों की सुन्दर सभा हुई। नोआखाली के पास के लामचर गाँव की ६० बहनों ने गांधीजी के आगमन के निमित्त एक दिन उपवास करके सारे दिन काता था और उससे उत्पन्न हुए खादी के दो थानों की 'भक्ति और श्रद्धा की पुष्पांजलि' गांधीजी के आगे रखी।

इसका मानपत्र ऐसा था, जो खास उत्तर की अपेक्षा रखता है। इस मानपत्र में 'जन गण मन अधिनायक भारत-भाग्यविधाता' और 'स्वाधीनता के अग्रदूत गांधीजी को चिरपराधीना नारी-जाति के प्रणाम' ऐसे वचन थे। गांधीजी ने जवाब में कहा:

"स्त्री को पराधीन किसने कहा? शास्त्र में स्त्री की पराधीनता नहीं है। सीता राम की अर्धांगिनी थी और उसने राम के हृदय पर प्रभुत्व प्राप्त किया हुआ था। दमयंती पराधीन नहीं थी। महाभारत पढ़कर कौन कहेगा कि द्रौपदी पराधीन थी? पांडव जब उसकी रक्षा करने से रुक गये थे, तब कृष्ण की स्तुति करके अपनी रक्षा करनेवाली द्रौपदी को पराधीन कौन कहेगा? हमारे यहाँ जिन सात सतियों को प्रातःस्मरणीय माना है, क्या वे पराधीन थीं? जिसमें पवित्र रहने की शक्ति है, जिसमें अपने शील की रक्षा करने की शक्ति है, उसे पराधीन कहना भाषा का संहार करना जैसा है, अधर्म है।"

× × ×

एंड्रूज ने लिखा था कि परिणाम के भय से जो नीति कायम रखी जाय, वह नीति कैसी? इसके उत्तर में गांधीजी ने लिखा:

"मैं असत्य बोलूँगा तो मेरी मृत्यु के बाद मुझे सजा होगी, इस भय से कोई मनुष्य असत्य से दूर रहे, तो क्या आप अच्छी बात मानेंगे? लोकमत के बल से नैतिक बंधन टिके रहें, इससे तो ये बंधन टूट जायँ, यह हम सब स्वागत-योग्य मानेंगे ? कृत्रिम ढंग से गर्भ-निरोध की सिफारिश करनेवाले खुले दिल से कहते हैं कि मैं नैतिक बंधन को नहीं मानता और अनियंत्रित संयोग ही आदर्श स्थिति है। मुझे तो आश्चर्य ही होता है।"

शाम को आम सभा हुई। उसमें सेशन जज और सब जज उपस्थित थे। इस सभा में कुल सात मानपत्र दिये गये। सबका इक्ट्ठा जवाब देते हुए गांधीजी बोले:

"यहाँ सत्येन मित्र नहीं हैं। वे कारागार में हैं, यह जानकर दुःखी हुआ हूँ। आशा रखता हूँ कि थोड़े दिनों में वे हमारे बीच में आ जायँगे। तमाम मानपत्रों का अलग उत्तर नहीं दिया जा सकता। परन्तु कुछ बातें मैंने चुन ली हैं। उनका संक्षिप्त उत्तर दे दूँगा।

"पहले तो हिन्दू-मुसलमानों के बारे में दो बातें कहूँगा। आज मेरी दुगुनी जिम्मेदारी है, क्योंकि आज मेरे साथ अलीभाइयों में से एक भी नहीं है। शौकतअली मेरे साथ आने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु बम्बई में उन्हें बहुत काम रहने के कारण वे नहीं आ सकते थे। और मुहम्मदअली अखबार में गिरफ्तार हैं। श्वेब कांग्रेस के तीन मंत्रियों में से एक हैं। वे आनेवाले थे, परन्तु तुर्की शिष्टमंडल के कारण उन्हें रुक जाना पड़ा।

"पहले हिन्दू-मुसलमानों में मलिनता नहीं थी, परन्तु सुना है कि आजकल है। उसे दूर करने का मेरा इलाज स्वीकार करने से दोनों ने इनकार कर दिया है। इसलिए हम दोनों ने शान्ति ग्रहण की है। फसाद में हम भाग लेना नहीं चाहते। दो भाई आपस में न लड़ें, तब तक लड़ाई नहीं होती, यह रिवाज है। इसलिए कोई भी झगड़ा हुआ हो, तो दोनों का कुछ-न-कुछ दोष होता ही है। अगर एक भी साफ दिल से लड़ना न चाहे, तो दुनिया की कोई ताकत उन्हें लड़ा नहीं सकती। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि यदि दिल साफ न हो, तो दोनों गुनहगार होंगे। ऐसी एक भी बात नहीं है कि जो दोनों आज तक साथ रहते आये हैं, उन्हें आज लड़ना पड़े।

दूसरी बात अछूतों के विषय में। इनसे पानी लेते हैं, इसके लिए आपको बधाई देता हूँ। सुना है कि गृहस्थ और ब्राह्मण बाधा देते हैं। परन्तु जिसने इस पाप को मिटाने का निश्चय किया है, वह तो अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहेगा, ऐसी आशा रखता हूँ। अछूतों की सेवा में थोड़ों का बहिष्कार हो और कुछ को जमीन-जायदाद गँवानी पड़े तो भी सिर पर लिये हुए काम पर कायम रहने में ही उनका हिन्दुत्व है।

"तीसरी बात चरखा देवी की। चरखा अन्नपूर्णा है। खेती अन्न देती है, परन्तु घी नहीं मिलता, घी तो चरखा ही देगा। आप अधिकारी हों या शिक्षक या कुछ भी हों, परन्तु आधा घंटा चरखा कातिए। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो गरीब लोग बहुत दुःखी हो जायँगे।"

नोआखाली से वापस उत्तर में टिपेरा जिले में आये। टिपेरा जिले का चाँदपुर देखा हुआ था। इस बार कुमिल्ला आये। टिपेरा जिले का पूर्वी भाग पहाड़ी है। इसलिए यहाँ अभी तक सूत के बाजार लगते हैं।

१५-५-१९२५

सबेरे आम सभा हुई। उसमें हकीमजी के पत्र का उल्लेख करके कहा: "कोई पूछे, तब जवाब देते शर्म आती है कि हिन्दू-मुसलिम-झगड़े के कारण हमारा देश पराजित हालत में है।"

कुमिल्ला में विद्यार्थियों ने गांधीजी को चकित कर दिया। उन्होंने जो मानपत्र दिया, उसमें खादी की प्रगति विद्यार्थी-मंडल में कितनी हुई है, इसके आँकड़े दिये गये थे। ये हैं वे आँकड़े: "दो प्रतिशत विद्यार्थी शुद्ध खादी पहनते हैं; छह फीसदी ताना मिल का और बाना हाथ का, ऐसे सूत की खादी पहनते हैं; बीस प्रतिशत मिल के और खादी के मिले-जुले कपड़े पहनते हैं। दो प्रतिशत को नियमित्त कातना आता है; बीस फीसदी कातना जानते हैं। सूत का अंक १०-१२ तक है। एक करघा एक विद्यार्थी चलाता है।"

कहीं-कहीं अटकल से आँकड़े दिये गये होंगे, ऐसी शंका करके मैंने ये आँकड़े इकट्ठे करनवाले विद्यार्थियों की बुलवाया, उनसे खूब पूछताछ की और जान लिया कि उन्होंने १५-२० दिन सहयोगी, असहयोगी, सरकारी, गैरसरकारी शिक्षालयों के तमाम विद्यार्थियों में घूम-फिरकर कुल २,६०० विद्यार्थियों से उपर्युक्त कोष्ठक के अनुसार जानकारी प्राप्त की थी और उसे बाद में दो-तीन जनों ने दुबारा जाँच करके देव लिया था! विद्यार्थी-विद्यार्थी के बीच इतना संबंध और तथ्य इकट्ठे करने में की गयी सावधानी का दूसरे विद्यार्थी जितना अनुकरण करें, उतना कम है। इन विद्यार्थियों में से कातनेवालों ने प्रयोग करके दिखाया था। और अपने सूत का बना हुआ कपड़ा भेट किया था। इन विद्यार्थियों के सामने किये गये प्रवचन में से थोड़े-से उद्गार यहाँ देता हूँ:

"तुमने अपनी हालत सच्चाई से, नम्रता से पूरी तरह बतायी है, इसके लिए कृतार्थ हुआ हूँ! जैसे मैं स्त्रियों को स्वराज्य अर्थात् धर्मराज्य, रामराज्य कहता हूँ, वैसे तुम्हें भी । विद्यार्थी को दूसरे राज्य का विचार ही नहीं आना चाहिए। यदि हम भारत का अधर्म राज्य चाहते हों, तो वह तो है ही। अधर्म के लिए किसी मनुष्य को प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जैसे पानी को नीचे जाने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता, वैसे मनुष्य को नीचे उतरने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। स्वराज्य का अर्थ यही हो सकता है कि भारत की अधोगति मिटाकर ऊध्वगति चाहते हैं। यदि यह बात सच है, तो भारत के नवयुवकों के लिए लाजिमी है कि वे अपनी उन्नति अच्छी तरह करें। विद्यार्थी-जीवन का अर्थ है, ब्रह्मचर्य का जीवन, सत्यमय जीवन, निर्दोष जीवन। और यदि विद्यार्थी-जीवन में मैल घुस जाय, स्वच्छंदता, पाखंड और दंभ को स्थान मिले, तो भारत का नाश है। इस कारण मैं विद्यार्थियों से सारे भारत में खूब मिलता हूँ और उनसे कहता हूँ कि तुम अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझो और अपना

कर्तव्य अच्छी तरह समझ लो। तुम अपनी पढ़ाई अच्छी तरह करो, पुस्तक अच्छी तरह पढ़ो, इससे मुझे कुछ भी द्वेष नहीं है। परंतु विद्यार्थी-जीवन में इस चीज को मैं गौण स्थान देता हूँ। प्रथम स्थान विद्यार्थी के चरित्र को देता हूँ। जिसका चरित्र दुष्ट हो, उसकी बुद्धि कितनी ही तीव्र हो और उसका विद्याध्ययन कितना ही गहरा हो, तो भी वह निकम्मा होगा। इस कारण मैंने चरखा विद्यार्थी के सामने रखा है।

"तुम्हारे समय-पत्रक में चरखे को स्थान क्यों नहीं दिया जाता, इसका कारण बताओ। तुमको इसमें विश्वास नहीं है। तुम्हें लगता है कि इसमें आमदनी थोड़ी है। और तुम्हारे पास कोई योजना भी नहीं है। परन्तु इन सबमें सही बात यह है कि इसमें तुम्हें विश्वास नहीं है। और कुछ नहीं। और विश्वास न होने का कारण यह है कि तुम भारत की कंगाली अच्छी तरह नहीं जानते। और यदि जानते हो, तो सार्वजनिक भावना इतनी जाग्रत नहीं हुई कि कंगाल को तुम अपने सगे भाई जैसा मानो। इसमें सार्वजनिक भावना है, यह तभी कहा जायगा कि जब प्रत्येक भारतीय के लिए, कंगाल से कंगाल के लिए, हमारे भीतर भ्रातृभाव पैदा हो; फिर वह भारत के किसी भी कोने में हो। अर्थात् समदुःखत्व की भावना होनी चाहिए।

"विद्यार्थी के मन में यह न होना चाहिए कि इससे कितनी आमदनी होती है। जो विद्यार्थी अपनी पढ़ाई में ध्यान खो देता है, वह अपनी पढ़ाई भलीभाँति नहीं कर सकता। चरखा कातें तो कम-से-कम १०० गज सूत आधे घंटे में निकलता है। इस उत्पत्ति की तुलना औरों के साथ नहीं की जा सकती। फिर भी तुम्हें तुलना करनी ही हो, तो कहता हूँ कि विचार करो कि करोड़ों मनुष्य सौ-सौ गज निकालें तो क्या हिसाब बैठे? इसका हिसाब लगाओ तो तुम्हें पता चलेगा कि भारत में प्रत्येक आधा घंटा कातें तो कितनी उत्पत्ति होगी!

"एक और दृष्टि से भी सोचना है। व्यक्तिगत लाभ का विचार छोड़कर समग्र जनता के लाभ का विचार होना चाहिए। मुझे खुद को सूत कातने से कितना लाभ होगा, इसका विचार तुम न करो; परन्तु जनता को कितना लाभ होगा, इसका विचार करो। तभी तुम्हें विश्वास होगा कि भले ही तुम्हें खुद को कोई फायदा न हो, परन्तु लोगों का तो खूब उपकार होगा; क्योंकि व्यापक प्रवृत्ति ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति उसमें भाग ले सके। ऐसी प्रवृत्ति चरखा चलाने की ही है। इसलिए मैं विद्यार्थियों से कहता हूँ कि तुम चरखे पर श्रद्धा रखो और व्यक्तिगत फायदा न ढूँढकर जनता का लाभ देखो।

"अब रही बात संगठन की। तुम कताई-कलब खोलो तो अच्छा, परन्तु चरखा तो संगठन के बिना भी चलेगा। जिस विद्यार्थी के मन में इतनी लगन पैदा हुई हो कि भारत की कंगाली दूर करनी ही है और जिसने विचार किया है कि इसके लिए कातना है, उसे और कुछ करना नहीं है। केवल एक चरखा खरीदकर सूत

कातना सीखने की जरूरत है। परन्तु आज तो विद्यार्थियों को जितनी सहायता चाहिए, उतनी मिल सकती है। कुमिल्ला में आज एक ऐसी संस्था मौजूद है, जहाँ चरखा कातना सीखा जा सकता है। काते हुए सूत का क्या उपयोग करना, इसकी चिन्ता भी करने की जरूरत नहीं। मैं प्रार्थना करता हूँ और सलाह देता हूँ कि जो छोटी-सी चीज मैं माँग रहा हूँ, वह दो प्रतिशत नहीं, परन्तु सौ फीसदी दे दो। इसलिए मैंने शुरू में बताया कि विद्यार्थी-जीवन धार्मिक, सत्यमय, शान्तिमय और ब्रह्मचर्यमय होना चाहिए, इसलिए चरखा इसका साधन है, यह मैंने पहले बताया।

"अब दूसरी बातें। तुम सब—हिन्दू-मुसलमान जो भी हों—द्वेष छोड़ो। कौंसिलवालों को लड़ने दो। तुम नामशूद्रों से मिलो। धर्म-भावना से इतना करोगे तो यह कहा जा सकता है कि भारत की सेवा में और स्वराज्य लाने में तुमने पूरा हिस्सा अदा कर दिया। यह बात प्रत्येक विद्यार्थी, सरकारी मदरसे में हो या राष्ट्रीय मदरसे में हो, निर्भयता से कर सकता है। ईश्वर प्रत्येक विद्यार्थी को यह धर्म-कार्य करने की शक्ति दे।"

महेशचंद्र भट्टाचार्य नाम के एक दानवीर सज्जन यहाँ रहते हैं। ये रसायनों के व्यापारी हैं। दान में प्रतिवर्ष कोई लाख रुपया खर्च करते हैं। ये रहते हैं ईश्वर पाठशाला में। राममाला छात्रावास और ईश्वर पाठशाला इनकी अपनी संस्थाएँ हैं। ईश्वर पाठशाला का मकान भव्य है। जमीन भी विशाल है। वार्षिक खर्च १८,००० रु. का है। छात्रावास का खर्च ८०० रु. है। ५६० रु. मासिक की छात्रवृत्तियाँ विद्यार्थियों को मिलती हैं। ये सब विद्यार्थी अपने हाथ की बनायी हुई खादी पहनते हैं। अर्थात् सवको कातना आता है।

स्त्रियों की सभा में सौ-डेढ़ सौ स्त्रियाँ कातने बैठी होंगी। इसमें सात-आठ तो सारे कुटुम्ब थे। प्रसन्नकुमार मजुमदार की चार लड़कियाँ और उनकी पत्नी थीं। एक वकील की स्त्री और उनकी लड़कियाँ थीं। इस प्रकार आठ परिवारों की ही ४०-५० महिलाएँ थीं।

शाम को आम सभा हुई, उसमें पागल की मृत्यु की बात का उल्लेख करके कहा:

"पागल के लिए भी हमें शोक होना चाहिए। मैं स्वयं अपने-आपको पागल मानता हूँ। जो निश्चय किया हो, उसके लिए मर जानेवाला भी पागल ही कहलाता है। मुझे विश्वास है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा के लिए मरने को तैयार हूँ। आप अपनी प्रतिज्ञा पर, मजहब पर कायम रहना सीखें। 'प्राण जाय पर वचन न जाये', यह रामायण का मर्म है। कोई पूछेगा कि इसलाम में सत्य की ऐसी माहिमा है? मैं कहता हूँ, हाँ, है। मौलाना शिवली का लिखा हुआ मुहम्मद पैगम्बर का जीवन-चरित्र देखो। हजरत उमर भी कहते थे कि ईमानदार आदमी की ही कीमत है।

१६-५-१९२५

सन् १९२० में कलकत्ते में असहयोग की नींव डालकर गांधीजी दो-चार दिन शान्ति-निकेतन आये थे। उस समय तीन-चार युवक गांधीजी के पास एक आश्रम अथवा एक मंडली की योजना लेकर आये थे। उनमें से एक कलकत्ता के मेडिकल कॉलेज के पदवीधारी और लड़ाई में सेवा करके आये हुए और असहयोग के सिलसिले में अपना ओहदा छोड़े हुए डॉक्टर थे। उनके साथ दो-तीन युवक थे, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम. ए. और एम. एस सी थे। गांधीजी ने इनसे खूब जिरह की थी। पहले तो आश्रम जैसी चीज खोलने की कठिनाइयों की बातें की थीं, ब्रह्मचर्य पर आधारित आश्रम खोलने की आवश्यकता और कठिनाइयों की बातें की थीं। और खूब चेता देने के बाद ही उन्हें आश्रम खोलने की अनुमति दी थी। "आश्रम का नाम क्या रखोगे?" इस सवाल के जवाब में उन्होंने कई नाम सुझाये थे। एक नाम अब भी मुझे याद है। "सविताश्रम रखें तो कैसा?" ऐसा एक भाई ने पूछा था। गांधीजी को जरा आश्चर्य हुआ था। हेतु पूछने पर उस भाई ने बताया था: "सविता ही सारी सृष्टि को टिका रहा है। सविता सब प्रकार के अंधकार का नाश करता है। हमारा आश्रम सवितारूप हो।" इसके भीतर का गगनगामी मनोरथ गांधी को पसंद आया था, परन्तु यह मनोरथ नाम में ही प्रकट करने की अपेक्षा काम में प्रकट करने की उन्होंने सलाह दी थी। बाद में १९२१ में जब कलकत्ते में मिले, तब एक भाई 'अभय आश्रम' नाम लेकर आये और गांधीजी ने उसे मंजूर किया।

यह आश्रम आरम्भ में ढाका में था। आजकल कुमिल्ला में है। आश्रम के सदस्यों में पहले तीन डॉक्टर थे, एक डी. एस सी. थे और तीन एम. एस सी. थे। इन डॉक्टरों में से डॉक्टर सुरेश बैनर्जी और डॉक्टर नूपेन बैनर्जी अब भी हैं, दूसरे चले गये। डी. एस सी. तो प्रफुल्ल घोष थे, जिनके बारे में मैं पहले लिख चुका हूँ। वे मलिकांडा में स्वतंत्र काम करते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पहले एम. एस सी. हुए हरिपाद बाबू बंगाल की एक बड़ी-से-बड़ी राष्ट्रीय पाठशाला नवाबगंज में चलाते हैं, जहाँ अभी तक हम गये नहीं, परन्तु जाने का इरादा है। गुजरात में हमारे महाविद्यालय में पहले-पहल बंगला के अध्यापक होकर आनेवाले प्रामाणिकबाबू भी इस आश्रम के सदस्यों में थे। वे अब सदस्य नहीं रहे। इस प्रकार पहलेवाले बहुत-से सदस्य आजकल इस आश्रम में नहीं हैं। इसका कारण शायद यह होगा कि निर्भयता जितनी अभय आश्रम ने विकसित की, उतना विनय और प्रेम विकसित न किया होगा। नहीं तो दीक्षाबद्ध ब्रह्मचारी अपनी दीक्षा छोड़कर कैसे चले जायें?

फिर भी आज जितने हैं—और लगभग अठारह लोग तो हैं ही—उतने अपना काम बढ़िया कर रहे हैं। और बंगाल के त्याग का एक अनुपम नमूना यह आश्रम अब भी है ही। जो बाहर चले गये हैं, वे भी स्वतंत्र रूप

में देश-कार्य ही कर रहे हैं। आश्रम में जो डॉक्टर हैं, वे कुमिल्ला शहर में अपना धंधा करते हैं और सारी कमाई आश्रम को देते हैं। इस कमाई से आश्रम के दूसरे विभागों का खर्च चलता है। आश्रम के साथ भी अब एक दवाखाना खोलने का विचार है। आश्रम का हेतु खादी की उत्पत्ति है, इसलिए खादी-विभाग मुख्य विभाग है। और उसके सिवा एक शिक्षा मंदिर है, जिसमें आसपास के गाँवों के बालक पढ़ते हैं। थोड़ी खेती भी होती है। आश्रम की जमीन पर एक सुन्दर बारहों महीने भरा रहनेवाला तालाब है। इसलिए जमीन के छोटे-से टुकड़ों में गन्ने जैसी फसल पैदा करना भी इन्हें कठिन नहीं होता। कातना इन्होंने प्रार्थना के एक भाग के रूप में ही रखा हुआ है। प्रभात में प्रार्थना करने के बाद तुरंत ही प्रार्थना-मंदिर में सब घंटाभर कातते हैं। कुमिल्ला जिले में लगनेवाले सूत के बाजारों में सूत खरीदते हैं और आसपास के जुलाहों से बुनाते हैं। बंगाल में खादी के पुनरुद्धार का आरंभ करनेवाले अभय आश्रमवाले भाई प्रफुल्ल घोष हैं। हर साल आश्रम २० हजार की खादी उत्पन्न करता है।

गांधीजी का सत्कार करते हुए आश्रमवासियों ने एक सुन्दर मानपत्र दिया था। उसके साथ आश्रम के सदस्यों के सूत का अद्भुत बुनाईवाला धोतीजोड़ा तो था ही, यह कहने की जरूरत नहीं है। इस मानपत्र के उत्तर में गांधीजी का दिया हुआ भाषण देना उपयोगी होगा:

"इस मानपत्र के लिए आभार मानना केवल शिष्टाचार ही होगा, क्योंकि आश्रम की हस्ती में मेरा भी हिस्सा है, यह आपने भी स्वीकार किया है। जब बंगाल में आने की मैं तैयारी कर रहा था, तब आप जैसे युवकों से मिलने की और आपका काम देखने की बहुत इच्छा थी। ऐसे नवयुवकों के स्वार्थ-त्याग का मुझे पूरा पता है। मैं जानता हूँ कि ऐसे स्वार्थत्यागी जब तक भारत में बहुत नहीं होंगे, तब तक स्वतंत्रता की आशा नहीं है। प्रत्येक नवयुवक के लिए त्याग ही भोग होना चाहिए। त्याग को मैंने कभी दुःख की अवस्था नहीं माना, और जो मनुष्य त्याग को दुःख मानता है, उसका त्याग हमेशा के लिए स्थायी नहीं रह सकता। इसलिए जब-जब अपने भ्रमण में मुझे बड़े त्याग के दृष्टान्त देखने को मिलते हैं, ५००-१००० मासिक रूपया छोड़कर मुट्ठीभर पैसे लेकर अपनी आजीविका चलानेवाले युवकों को मैं देखता हूँ, तब मुझे दुःख नहीं होता। उल्टे मुझे लगता है कि ऐसे नौजवानों ने कुछ नहीं खोया, क्योंकि बहुत रुपया जुटाने के बंधन में से ये छूट गये हैं।

"परन्तु एक चीज़ पर मैं पूरा जोर देना चाहता हूँ, क्योंकि जब हम सेवा के लिए किसी वस्तु का त्याग करते हैं, तब कोई न कोई दूसरी वस्तु ग्रहण करते हैं। मैं जानता हूँ कि कुछ नवयुवक ऐसा मानते हैं कि अमुक वस्तु का त्याग किया तो सब कुछ मिल गया। परन्तु इस खयाल में भारी भूल है, त्याग के साथ करने के काम

का भी भान होना चाहिए। तभी जीवन संतोषपूर्ण होता है। इसलिए हमारी प्रवृत्ति विवेक-दृष्टि से होनी चाहिए। मेरे खयाल से आज भारत की सेवा करने के लिए जितने नवयुवक तैयार हों, उनकी दृष्टि के सामने एक ही आदर्श उपस्थित होना चाहिए—करोड़ों निरूद्यमियों को उद्यमी कैसे बनाया जाय। इसके लिए चरखा ही एकमात्र साधन स्वीकार किये बिना काम नहीं चलता। और इसलिए यहाँ की वैद्यकीय और विद्यालय की प्रवृत्ति को मैं गौण मानता हूँ। (दवाखाना ही नहीं, परन्तु दवाखाने के साथ वैद्यकीय विद्यालय भी खोलने का डॉ. सुरेश बैनर्जी ने जो विचार किया है, उसे ध्यान में रखकर यह वचन था।) इन दोनों चीज़ों को इतनी ही हद तक स्थान दिया जा सकता है, जिस हद तक वे चरखे की प्रवृत्ति के लिए पूरक हों। इसलिए मुझे यह जानकर आनंद हुआ कि आपकी पाठशाला में भी चरखे और खादी की प्रवृत्तियाँ हो रही हैं। मेरी मलाह है कि इस पाठशाला के संचालक प्रतिज्ञा कर लें कि अमुक तारीख के बाद खादी पहने बिना आनेवाले एक भी बालक या बालिका को वहाँ भरती नहीं किया जायगा। प्रत्येक माता-पिता को यह खबर दे देनी चाहिए कि उनके बालकों को अनिवार्य रूप में कातना पड़ेगा और खादी पहननी पड़ेगी। दवाखाने के संबंध में भी यही बात है। मैं जिसकी चिकित्सा करूँ, उसे भी खादी पहनाने की ही बात मुझे तो सूझेगी। यों तो अनेक दवाखाने मौजूद हैं, इनकी प्रवृत्ति नयी चीज़ नहीं है। इसलिए जो नवयुवक काम करने की शक्ति रखते हैं, सेवा और स्वार्थ-त्याग की जिन्होंने दीक्षा ली है, वे देश में जो कठिन-से-कठिन, व्यापक-से-व्यापक और फलदायक प्रवृत्ति हो, उसमें लगेंगे, ऐसी मैं आशा रखता हूँ।

"इतना कहकर आप जो यहाँ आये हैं, उनसे और आपके द्वारा दूसरों से— जो नहीं आये—कहूँगा कि इस संस्था का अध्ययन कीजिए। और यदि आपको लगे कि यह संस्था जनसाधारण के लिए उपकारक है, तो उसकी मदद कीजिए। फिर से अपनी आनन्द प्रकट करके आशीर्वाद देकर मैं अपनी वक्तव्य समाप्त करता हूँ।"

कुमिल्ला से आगे चलकर उत्तर-पश्चिम में ढाका आता है। ढाका के बारे में एक-दो बातें कुमिल्ला में सुनी थीं:

रामपाल दिघि का इतिहास—बल्लाब सेन—उसकी माँ के साथ की शर्त—पैरों में लगाया हुआ लाल रंग—रामपाल का सपना—अपने घोड़े पर बैठकर बीच में उतर पड़ा और सौ जगह से झरने फूट निकले—रामपाल डूब गया और उसके नाम से तालाब का नाम रखा गया—बल्लाब सेन—पोडो राजा—बाबा आदम के साथ लड़ाई—अग्निकुंड में वह और उसका कुटुम्ब कैसे जल गया—कुलीन प्रथा का पिता—शाइस्ता खाँ—

पश्चिमी दरवाजा ६४० सेर के चावल न बिकें, तब तक बन्द रखने को लिख गया था—वह ४७ वर्ष में खुला था—सरफराज खाँ के समय में।*

---

* महादेवभाई की यह टिप्पणी जैसी उन्होंने लिखी है, वैसी यहाँ उतारी है। इसका स्पष्टीकरण प्राप्त करने का प्रयत्न मैंने किया है। जो स्पष्टीकरण मिला, उसका भावार्थ इस प्रकार है:

इस स्थान के राजाओं में रामपाल नाम का एक राजा हो गया। उसके त्याग के परिणामस्वरूप जहाँ पानी नहीं था, वहाँ पानी फूट निकला और उस जगह जो तालाब बना, उसका नाम रामपाल दिघि पड़ा।

बल्लाब सेन राजा उसके बाद हुआ। एक बार उसकी एक बड़े राजा के साथ लड़ाई हुई। वह संग्राम के स्थान पर गया, तब एक पाला हुआ कबूतर अपने साथ ले गया था। जाते समय कह गया था कि यह कबूतर वापस आये तो जान लेना कि मैं लड़ाई में मर गया हूँ। लड़ाई में वह जीत तो गया, परन्तु किसी कारण से कबूतर छूट गया और घर लौट आया। उसे देखकर रानी ने—या रानियों ने मान लिया कि राजा युद्ध में मर गया, इसलिए उन्होंने अग्निकुंड में कूदकर आत्महत्या कर ली। राजा जीतकर वापस आया, तब उसे इस बात का पता चला। इस पर उसने भी इस कुण्ड में कूदकर प्राण-त्याग कर दिया।

यह राजा बंगाल की कुलीन प्रथा का पिता कहलाता है। उसने जिन ब्राह्मणों में नौ गुण (आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, निष्ठा, सद्वृत्ति तप और दान के गुण) देखे, उन्हें कुलीन माना। (घोष, बोस, वगैरह अटकोंवाले इस पंक्ति में माने जाते हैं।) जो पंक्ति में नहीं माने जाते, वे वैध पंक्ति में माने जाते हैं।

शाइस्ता खाँ महारानी नूरजहाँ का भतीजा था। वह बांग्ला में मुगल शाहानशाह का प्रतिनिधि—वाइसरय था। उन दिनों अनाज—चावल—बहुत सस्ता था। एक रुपये का आठ पक्के—बांगाली—मन (६४० पाँड) मिलता था। उसने फरमाया कि पश्चिमी द्वार तभी खुले, जब मुझसे भी सस्ते भाव से चावल देनेवाला कोई पैदा हो। ४० वर्ष बाद सरफराज खाँ नाम का सुबेदार आया। वह मुगल बादशाह से स्वतंत्र था। उसके समय में चावल इससे भी सस्ते हो गये, इसलिए उस समय दरवाजा खोला गया।

ये दोनों व्यक्ति ऐतिहासिक थे।

१७-५-१९२५

ढाका पहुँचने के बाद पहला काम स्त्रियों की सभा में जाने का था। वहाँ बंगला काव्य में मानपत्र दिया गया। दीपाली स्त्री-सभा की तरफ से हाथ का तौलिया, साड़ी वगैरह वस्त्र भेट किये गये।

मानपत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी बोले:

"मैं सीताजी देखने को भटक रहा हूँ। शरीर की पवित्रता का अर्थ आपसे में अधिक अच्छी तरह जानता हूँ। सीता के हृदय में गरीबों के लिए स्थान था। आपने समिति स्थापित की है। आपमें से कुछ शिक्षित भी हैं। परंतु सीताजी के हृदय में कंगालों के लिए जो प्रेम था, वह आपके दिल में है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। पुराने जमाने में रनिवास में भी चरखे के लिए स्थान था। और खाली पहनना गरीब और गरीर के बीच अनुसंधान का चिह्न था। मैं जानता हूँ कि आप हमेशा खादी नहीं पहनती। मैं चाहता हूँ कि आप रोज आधा घंटा चरखा चलायें। जैसे सीता के हृदय में किसीके लिए घृणा नहीं थी, वैसे आप भी किसीके प्रति—अछूतों के प्रति—घृणा न रखें।"

एक सभा में तीन मानपत्र दिये गये। उनका जवाब देते हुए गांधीजी बोले:

"आम तौर पर मैं अग्रेजी में नहीं बोलता। परंतु जिला बोर्ड का मानपत्र पढ़नेवाले भाई ने जिस सावधानी से उसे पढ़ा, उसके लिए उन्हें मुबारकबाद देने की खातिर आज अपवाद करता हूँ और अंग्रेजी में बोलता हूँ। इस समय मुझे सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी याद आते हैं। जिस समय की मैं बात कर रहा हूँ, उस समय उन्हें 'सर' का खिताब नहीं मिला था और मैं तो उनके सामने जवान ही था। उन्होंने ८० पन्नों का लम्बा भाषण पढ़ा था,[१] ऐसा मुझे कहा गया था। ए. सी. मजुमदार[२] भी मुझे याद आते हैं। उन्होंने अपने भाषण का एक-डेढ़ पन्ना पढ़ा और बाद में लखनऊ के मित्रों के आग्रहवश बाकी भाषण के कुछ भाग ही पढ़े।

---

१. सन् १८९५ में पूना में हुई कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से उनके भाषण का उल्लेख है।

२. सन् १९१६ में लखनऊ-कांग्रेस के वे अध्यक्ष थे। उनका भाषण भी बहुत लम्बा था।

"बंगाल में ये सारे विक्रम आश्चर्य पैदा नहीं करते। परंतु सुंदर अंग्रेजी बोलने के लिए मैं बहुत बधाई नहीं दे सकता। मुझे तो आपका मधुर बंगला संगीत सुनना है। अपने वाणी-विलास और वक्तृत्व से मुझे बचाइए। मैं आशा रखता हूँ कि प्रत्येक बंगाली यह स्वीकार करेगा कि यदि सारे भारत के साथ उसे एकराग होना हो, तो उसे आंतरदेशीय भाषा के रूप में हिन्दी को आपनाना पड़ेगा। समय आयेगा, जब जनता का सम्पर्क साधने के लिए हम समझेंगे कि हिन्दी की ही जरूरत है।

"आपके मानपत्रों में प्रकट की गयी भावनाओं के लिए आपका आभार मानता हूँ। परन्तु आपके दिये हुए सुन्दर कास्केटों के लिए आभार मानूँ, ऐसी आशा न रखें! ऐसी चीजें मेरे लिए भारस्वरूप हैं। उनके भीतर के कागज की मेरे लिए कीमत है; परन्तु उससे भी अधिक मूल्य तो हृदय में अंकित अलिखित भाषा का है। मैं चाहता हूँ कि आपके हृदय के एक कोने में मेरे संदेश को स्थान दें। आप ढाका की नष्ट हुई जाहोजलाली का दुःख गाते हैं, परन्तु उसके लिए सचमुच यदि किसीको आँसू बहाना हो तो वह आपको ही बहाना है। मैं तो चाहता हूँ कि बंगाल फिर से निर्यात करने लगे—उसके कच्चे माल का नहीं, परन्तु उसकी प्राचीन कलाकृतियों का। परन्तु आप जब तक हाथ-कताई के प्रश्न को हल नहीं कर लेंगे, तब तक आप अपनी कला को पुनर्जीवित नहीं कर सकेंगे। सोचिए कि भारत का कला-सौन्दर्य किसमें है? यह सौन्दर्य आज नष्ट हो गया है। इसलिए मेरा अन्तर रो रहा है। और मुझे लगता है कि जब तक हम हाथ-कताई को सजीवन नहीं करेंगे, तब तक अपनी कला को सजीवन नहीं कर सकेंगे। यह आपके कपड़े के बारे में कह रहा हूँ।

"परन्तु आप केवल कला का क्या करेंगे? परदे के पीछे घुटनेवाली अपनी बहनों के लिए आप क्या करेंगे, यह सोचिए। मैं कुमिल्ला से बारह मील दूर एक स्थान पर गया था। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि वहाँ की स्त्रियों ने अपने पुरुष-वर्ग को केवल दो-तीन रुपये नीति से कमाने के लिए दूर भेजा था। उन्होंने अपनी कातने की कला खोयी, इसलिए ऐसा करना पड़ा है। इनके लिए और ईश्वर का नाम लेकर जब तक आप अपना चरखा नहीं चलाइएगा, तब तक आप उनकी तरफ से क्या बोल सकते हैं?

"दूसरी बात भंगियों के विषय में। जो काम आप नहीं करते, वह काम ये लोग करते हैं। इसलिए उत्तम सेवक तो ये लोग हैं। उनकी आबादी में ८० बालक हैं। मैंने उनसे पूछा: 'यहाँ पाठशाला स्थापित करने का बंदोबस्त कर दूँ तो तुम अपने बच्चे उसमें भेजोगे?' उनमें से एक भाई ने पलटकर कहा: 'हमने पाठशाला की माँग नहीं की?' दूसरे खादी सस्ती हो, इतना ही उन्हें चाहिए। उनके लिए आप रोज आधा घंटा चरखा न चलायें, तो खादी सस्ती किस तरह बने? उन्हें खादी पहननी तो है, मैंने सुना है कि खादी की दूकानें भी हैं।

"यह मत समझना कि आपका अधिक समय लेना चाहता हूँ। यह जो मैं अपने हृदय से बोल रहा हूँ, उसे सुनने के लिए मेरे दोनों भाइयों में से एक भी आज यहाँ नहीं, इसका मुझे दुःख है। मैं चाहता हूँ कि हम अपने हृदय पर हाथ रखकर हृदय की एकता साधें। ढाका यदि बंगाल का नेतृत्व न करे, तो और कौन करेगा?"

आम सभा में विद्यार्थियों ने हिन्दी में मानपत्र दिया। उसमें बताया कि हमारे यहाँ अस्पृश्यता और हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं है। चरखे का अच्छी तरह प्रचार नहीं है, परन्तु खादी का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। श्री चटर्जी ने लोगों की ओर से मानपत्र पढ़ा। उसमें गांधीजी को 'राष्ट्रगुरु महात्मा गांधी' के तौर पर सम्बोधन किया गया। उसमें बताया कि "यहाँ ५०० लोगों ने कॉलेज छोड़ा था, परन्तु राष्ट्रीय महाविद्यालय में अब केवल ६० विद्यार्थी रहे हैं।" बेलगाँव-कांग्रेस के प्रस्ताव पर यहाँ अमल नहीं हुआ। यहाँ दो हजार चरखे चलते हैं। जिला कांग्रेस कमेटी के स्थापित 'जयनगर बुनाई-घर' में शुद्ध खादी है, परन्तु उस संस्था पर सरकार की कोष-दृष्टि पड़ी है। उसमें काम करनेवाले आदमियों को आर्डिनंस की रू से पकड़ा है।"

मानपत्रों का उत्तर देते हुए गांधीजी बोले:

"मुझे दुःख हो रहा है कि आज मेरे साथ शौकत-मुहम्मदअली में से कोई नहीं। मुहम्मदअली का तार आया है। उसमें इन पर आ पड़े बोझ का बयान किया है। एक लम्हा (क्षण) नहीं मिलता अखबारों में से।

"बंगाल में आकर चिल्लाकर कहता हूँ कि क्यों दोनों भाइयों में से एक भी नहीं है। दास का शरीर कमजोर हो रहा है। वे तबीब की बात नहीं सुनते। खुदा इन्हें चिरायु करे।

"विद्यार्थियों से क्षमा माँगता हूँ कि अभी तुम्हें समय नहीं दे सकता।

"ढाका शहर की जाहोजलाली के बारे में क्या कहूँ? एक जमाना था, जब यहाँ से इंग्लैंड तक शबनम भेजा जाता था। आज यहीं दूसरी जगह से मलमल आती है और मुझे रंज होता है।"

विद्यार्थियों के लिए समय नहीं था, इसलिए गांधीजी ने इनसे कहा था: "शाम को सारा कार्यक्रम पूरा होने के बाद आओ। बातें करेंगे।" परन्तु इन 'बातों' में तो उनकी बन आयी। "कातते हो?" यह पूछते ही बहुत विद्यार्थियों ने हाथ उठाये। "नियमित आधा घंटा कातते हो?" ये कहकर गांधीजी ने अपना प्रश्न अधिक स्पष्ट किया, तो एक के सिवा सारे हाथ नीचे आ गये! प्रामाणिकता का यह तीसरा सुन्दर नमूना था। (चटगाँव का उल्लेख तो पहले किया ही गया है।) गांधीजी ने पूछा: "अच्छा, कातना चाहिए, ऐसा माननेवाले हाथ उठायें।"

लगभग सबने हाथ उठाये। "तो कातना नहीं चाहिए, कातने में हानि है, ऐसा माननेवाले हाथ उठायें।" दो जनों ने हाथ उठाये। इनमें से एक तो विद्यार्थी नहीं था। इनसे कारण पूछा गया। एक ने कहा कि "श्रम-विभाजन के सिद्धांत का इसमें भंग होता है।" दूसरे ने कहा: "यह केवल समय और शक्ति का दुरुपयोग है।" इस प्रकार गांधीजी को सतेज करनेवाला कारण मिल गया। और जैसे बेलगाँव में श्री केलकर के प्रश्न से वे भड़क उठे थे, वैसे ढाका में भी भड़क उठे। उन मर्मस्पर्शी उद्गारों में से थोड़े यहाँ देता हूँ:

"मैं कहाँ तुमसे दिनभर कातने को कहता हूँ? मैं क्या तुम्हें चरखे को अपने मुख्य धंधे के तौर पर अपनाने को कहता हूँ? तो फिर श्रम-विभाजन के सिद्धांत का भंग कहाँ हुआ? तुम खाते-पीते हो, उसमें श्रम-विभाजन का सिद्धांत लागू करते हो क्या? मतलब यह कि जैसे खाना-पीना और पहनना प्रत्येक के लिए है, वैसे ही कातना भी व्यक्तिमात्र का धर्म है। और तुम इसे व्यर्थ का कालक्षेप कहते हो? तुम कहते हो कि देश के करोड़ों के लिए तुम्हारे दिल में काफी भावना है। परंतु उस भावना के परिणामस्वरूप यदि तुम्हारे अंत:करण उन करोड़ों के लिए प्रत्यक्ष दयाभाव से द्रवित न हों तो ऐसी बाँझ-भावना का मूल्य क्या? गाय बछड़े के लिए या माँ अपने बच्चे के लिए जिस प्रेम से उमड़ती है, वैसा कुछ तुम्हें होता है? गाय बछड़े को दूर से देखती है या माता बालक को देखती है, तो उसकी छाती से दूध छलकता है। अपने अकालपीड़ित भूखे देशवासियों को देखकर तुममें कभी प्रेम का ऐसा उद्रेक होता है क्या? चरखा चलाकर इनके प्रति अपना प्रेम तुम व्यक्त करोगे। तुम स्वयं कातकर इनकी अकर्मण्यता दूर करोगे। एक मित्र लोगों की भीड़ के सामने गाता है और उनके दिल हिला देता है। यह क्या व्यर्थ का शक्ति-क्षय हुआ? बेशक अगर वह उनके आगे व्यर्थ 'बन्दे मातरम्' चिल्लाये तो जरूर ऐसा हो, परंतु कातने में तो कितना अर्थ समाया हुआ है? इसमें हेतु है और इसमें देश की समृद्धि की बरकत है। हेतु यह है कि इसके द्वारा देश के आम लोगों के साथ अनुसंधान (एकरूपता) होता है और इसके सिवा यह क्रिया कितनी ही यंत्रवत् की जाय, तो भी इसमें से फल पैदा होता है। और अधिक प्रयास अथवा कौशल के बिना सारा देश, छोटा-बड़ा, श्रद्धालु-अश्रद्धालु, एक-एक व्यक्ति कर सके, ऐसी और कोई क्रिया नहीं है। विद्यार्थियों को तो यह खास तौर पर करना है, क्योंकि तुम प्रजा की नाक कहलाते हो। तुम्हें अभी जिंदगी शुरू करनी है। तुम नये विचार को जैसे अपना सकते हो, वैसे और कोई नहीं अपना सकता। तुम्हें तो अभी वर्षों की देश-सेवावाली कारगुजारी बनानी है। कोमल पेड़ ही जैसा मोड़ें, वैसे मुड़ता है; पक्के घड़े को सुधारना नहीं जा सकता। देश के लिए सच्ची लगन से भरे हुए और काम की तालीम पाये हुए शक्तिमान, बुद्धिमान् विद्यार्थियों की टोली कितना अधिक कर सकती है, इसकी कल्पना करो। ढाका के ११,०००

विद्यार्थियों में से प्रत्येक आधा घंटा चरखे को दे तो? इसके परिणाम का विचार करो। तुम सब खादी पहनो तो तुम्हारे रुपये का बड़ा भाग कातनेवालों की ही जेब में जायगा, यह तुम जानते हो? तुम शायद इंग्लैंड का और वहाँ की मिलों का विचार करते होंगे। परन्तु इंग्लैंड तो हमारे देशों को चूसने के लिए जीता है। उसने हमारे मजदूर-वर्ग को अधीन कर लिया है; यह आर्थिक स्त्राव दादाभाई ने हमें बताया था। शासन के खर्च-संबंधी स्त्राव से भी यह अधिक प्राण-घातक है। यह गूढ़ वस्तु दादाभाई के ध्यान में भी उस समय नहीं आया। परन्तु मैं उनके पद-चिह्नों पर चलनेवाला उनका चेला ठहरा, इसलिए यह सूक्ष्म वस्तु मुझे मिल गयी। और मैं कहता हूँ कि ऐसी अकर्मण्य ताबेदार प्रजा बनकर रहना स्वीकार करने में हमारा भयंकर-से-भयंकर और विनाशकारी अर्थस्त्राव निहित है।"

अन्त में जगन्नाथपुरी में देखे गये हाड़पिंजर, उड़ीसा और बिहार के भूखों इत्यादि का चित्र देखर समझाया कि रोज की एक आना मजदूरी भी इन भूखों के लिए कैसा प्रत्यक्ष आशीर्वाद बन जाती है।

ढाका में एक रोज शाम को एक ७५ वर्ष का बूढ़ा गांधीजी के आगे पेश किया गया। वह ३०-४० मील से आया था और दर्शन के लिए रो रहा था। गांधीजी के सामने आते ही उसने तुरंत ही अपने माथे पर हाथ रखने की माँग की। उसके साथ कुछ भी चर्चा किये बिना गांधीजी ने हाथ रख दिया—इस इच्छा से कि जल्दी चला जाय। परन्तु हाथ रखते ही वह आवेश में गांधीजी के पैरों के आगे खूब लोट-पोट हुआ और रोने लगा। कुछ समझ में नहीं आता था। उसके गले में गांधीजी की और बा की एक तस्वीर थी। जब आवेश का ज्वार ठंडा हो गया, तब उसने कहा: "मैं नामशुद्र हूँ। मुझ पर इतनी अधिक कृपा! दस वर्ष पहले मेरे पैरों को लकवा मार गया। अनेक दवाएँ कीं, बिस्तर से उठा नहीं जाता था, भगवान् से मौत माँगता था। तब आपका नाम लिया और आज अब चलने लगा हूँ, कुछ भी दवा-दारू के बिना चलने लगा हूँ।" यों कहकर फिर लोट-पोट होने लगा। गांधीजी ने उसे रोका और कहा: "भाई, भगवान् का भजन कर। भगवान् ने तुझे अच्छा किया है। गांधी में किसीको अच्छा करने की ताकत नहीं है।" परन्तु वह माननेवाला नहीं, किसीकी सुननेवाला नहीं था। अन्त में गांधीजी ने कहा: "भाई, अब जाओ। यहाँ से। और मेरा कहना मानो तो गले से वह चित्र उतार दो।" उसने तुरंत चित्र निकाला और हाथ में लेकर चला गया। जिन गांधी महाराज ने उसका लकवा ठीक किया वही गांधी ये होंगे, जिस तस्वीर की भक्ति करके वह लकवे से छूटा, वह तस्वीर इसी गांधी की नहीं हो सकती, मेरे खयाल से वह यही निश्चय करके गया होगा। परंतु जिस मनुष्य को समझाया न जा सके, उसके सिर पर तो गांधीजी हाथ भी फेरते हैं। परंतु समझदार के साथ क्या किया जाय?

१८-५-१९२५

मौलाना मुहम्मदअली का एक हृदयद्रावक पत्र आया था, जिसके उत्तर में लिखा:

"मेरे प्रिय मित्र और भाई,

"आपने मुझे लिखा, उससे पहले ही मैं आपकी स्थिति जान चुका था। सच्चे सेवक के भाग्य में ऐसा ही लिखा होता है। बहाव के साथ-साथ तैरने में हमें कुछ भी करना नहीं होता। जब उसके सामने जाना होता है, तभी हमें पुरुषार्थ करना होता है। इसलिए अभी हमें पता चलेगा कि हममें कुछ भी ताकत है या नहीं। जब दुश्मन सामने आकर खड़ा हो, तब वह कितना समर्थ हो तो भी उसके विरुद्ध लड़ना खेल की बात है। परंतु नैतिक अधःपतन, अश्रद्धा, अशिस्त और साथियों के प्रति अविश्वास के विरुद्ध टक्कर लेना सबके लिए संभव नहीं है। आपको और मुझे इस स्थिति का सामना करना है।

"मैं तो हमेशा आपके साथ और आपके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ। आप दोनों भाइयों की जोड़ी में मेरा अटल विश्वास है, परंतु काम करने की आपकी पद्धति में नहीं है। प्रत्येक काम के लिए आप अलग समय बाँटकर रखेंगे तो आपको पता चलेगा कि फालतू समय रहता ही है। बहुत ही उद्यमी मनुष्य के पास अधिक काम करने के लिए समय हमेशा होता है। ईश्वर से डरकर चलनेवाले के लिए, प्रार्थना का समय तो सारा दिन है। प्रार्थना के लिए जो समय निश्चित किया गया है, वह तो केवल दिशा-सूचन के लिए है। वह बताता है कि हमारे हरएक काम के लिए नियमित समय होना चाहिए। हमारा सारा ही समय हमने ईश्वर के चरणों में नहीं धर दिया? खाना, पीना भी ईश्वर के लिए हो सकता है और उपवास तो उसके लिए धन्यता हो सकता है, परंतु नसीहत देना बन्द करता हूँ।

"आपकी और गुलनार* की गैरहाजिरी मुझे खटकती है। मुझे दिये जानेवाले फूल और छोटी-छोटी चीजें सब बेकार जाती हैं। उसे कहिए कि मेरे लिए वह बहुत बड़ी न हो जाय।

"सबको प्यार।"

---

* मौलाना मुहम्मदअली की पुत्री।

ढाका से दो सौ-ढाई सौ मील उत्तर में मेमनसिंह जिला आता है। मेमनसिंह जिले में कपास नहीं होती, परन्तु 'गारो' पहाड़ पर, जो उसके उत्तर में है, बहुत कपास होती है। और पहाड़ में कुछ आबादी तो ऐसी मौजूद है, जिसने जन्म-भर में यह जाना ही नहीं कि विदेशी या मिल का कपड़ा कैसा होता है। यहाँ ब्रह्मपुत्रा नदी का पूर्वावतार है। सन् १७८७ में जल और स्थल में ऐसा फेरबदल हुआ था कि ब्रह्मपुत्रा नदी का बड़ा बहाव, जो मेमनसिंह जाता था, वहाँ से हटकर पश्चिम में बोगरा जिले तक पहुँच गया और अब वहाँ से पबना और ढाका जिले में होकर नारायणगंज के आगे अपने पूर्ववतार से मिल जाता है।

मेमनसिंह* में खूब बरसात के कारण गांधीजी को जरा सरदी लग गयी और थकान हो गयी, परन्तु सारा कार्यक्रम सांगोपांग पूरा हुआ।

---

* ता० १८-५-१९२५ को रात को आये।

मेमनसिंह में बहुत-से जमींदार मिले। खुद मेमनसिंह के बड़े जमींदार महाराजा कहलाते हैं। मेमनसिंह में हम उनके मेहमान थे। इनकी काठियावाड़ के दूसरे दर्जे के राजाओं से बड़ी जमींदारी है। इनके पिता बड़े प्रतापी थे और लॉर्ड कर्जन जैसे से भी दबे नहीं थे। बंगाल में बहुत बातों में जो रस, सुरुचि और औचित्य मालूम होता है, वह यहाँ भी देखने में आया। गुजरात जैसे प्रांत के गाँवों में और अमरेली जैसे कसबे में जलसों में खादी का गीत गानेवाले लड़के विदेशी कपड़े पहने हुए देखे जाते हैं, परन्तु बंगाल में ऐसा भद्दा दृश्य कहीं भी देखने को नहीं मिलता। यही बात इस जमींदार यजमान की है। इनकी संस्कारिता के कारण इन्हें लगा कि गांधीजी का सत्कार तो खादी से ही हो सकता है। स्वयं खादी में सुसज्जित होकर गांधीजी से मिले। इतना ही नहीं, परन्तु जब तक हम वहाँ रहे, तब तक खादी ही शरीर पर रखी। ढाई हजार की खादी लेकर अपने तमाम नौकरों के लिए खादी के कपड़े बनवाये, इतना ही नहीं, परन्तु राजमहल से भी बढ़िया अपने अतिथिगृह में पलंग, कुरसी वगैरह प्रत्येक वस्तु पर खादी के सिवा कुछ भी दिखाई न दे, ऐसी व्यवस्था की। आसपास के बहुत जमींदार मिलने आये थे। वे भी खादी पहनकर आये थे और गारो पहाड़ के आगेवाले सुसांग के महाराजा ने ऐसे समाचार भी दिये कि महारानी नियमित कातती हैं। सबसे गांधीजी ने खादी की खूब बातें की; "मुझे अच्छा लगे, इसलिए नहीं, परन्तु अपने कर्तव्य के रूप में खादी पहनिए। जैसे आप अपने स्वतंत्र धोबी, नाई, भंगी

रखते हैं, वैसे अपने जुलाहे क्यों न रखें? बंगाल के अच्छे-से-अच्छे कातनेवाले आप क्यों न रखें? और उनसे बारीक कतवाकर यहाँ की गौरवमयी कलाओं का पुनर्जीवन क्यों न करें ?"

महलों में ठहरने से गांधीजी को कष्ट होता है। त्रावणकोर के राजा के अतिथिगृह में प्रवेश करते समय उनका पैर फिसला। वहाँ भी उन्होंने कारण बताया था और मेमनसिंह में भी बताया। "मुझे ऐसे मकान में रखने से मुझे भी परेशानी होती है और लोगों को भी। मेरे पास मेरे जैसे भुले-भटके रास्ते चलते सभी का आने को जी होता है और महल के गलीचे खराब होते हैं। इससे तो मैं किसी साधारण घर में बैठा होऊँ तो अच्छा है। और दूसरा भय यह है कि गरीब लोग आपके महल से डरकर शायद आते हुए ही रुक जायँ।" महाराजा ने कहा था: "इस महल के सब दरवाजे सुबह-शाम खुले रहेंगे और किसीसे रोक-टोक नहीं की जायगी।"

१९-५-१९२५

गांधीजी की तबीयत अच्छी नहीं थी और बरसात की तो झड़ी लगी हुई थी। आम सभा क्या होती ? इसलिए जिला बोर्ड का मानपत्र तो बँगले में ही देना तय हुआ। परन्तु लोगों से कैसे मिला जाय? महाराजा ने ही सुझाव दिया: "आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आपको तकलीफ होगी। परन्तु एक सुझाव मंजूर किया जाय तो सब कुछ हो सकता है। आप बरामदे में एक सोफे पर लेटे रहें और लोग एक दरवाजे से घुसकर दूसरे दरवाजे से चले जायँ।" गांधीजी कहते हैं: "इतनी बरसात में लोग होंगे भी?" परन्तु लोगों की तो हजारों की भीड़—छतरी सहित और छतरी के बिना—खड़ी थी। गांधीजी ने सुझाव मान लिया। सोफा बरामदे में ले जाया गया। गांधीजी ने अपने सामने चरखा रखवाया और दोपहर में तीन बजे से शामके छह बजे तक महाराजा के बँगले में से हजारों आदमी गांधीजी के दर्शन करते हुए गुजरे। कुछ चबूतरे की सीढ़ियाँ चढ़कर चरखे का स्पर्श करके जाते थे तो कुछ सोफे को छूकर,-क्योंकि सब जानते थे कि गांधीजी की तबीयत ठीक नहीं। कुछ समय तक तो गांधीजी ने काता, परन्तु बाद में लेट गये। हजारों लोगों की भीड़ और बरसात की झड़ी की हालत में आराम तो कैसे लिया जाता? परन्तु उसी स्थिति में वे शाम तक लेटे रहे। शाम को शरीर टूट रहा था। महाराजा और दूसरे मित्रों ने कहा: "आपको बड़ी तकलीफ हुई।" गांधीजी कहते हैं: "तकलीफ तो आज सचमुच थी। परन्तु मैं तो चरखे के लिए जितने नाच नचायें उतने नाचने को तैयार हूँ। इतना करने से भी लोग चरखे और खादी की मेरी बात मानते हों, तो भले ही वह हो।"

मेमनसिंह में दो-तीन हजार स्त्रियाँ घड़ीभर पहले जहाँ मूसलाधार बारिश हुई थी, ऐसे स्थान में गांधीजी की राह देखते हुए उकडूँ बैठी रही थीं; और बरामदे में सैकड़ों चरखे चल रहे थे! गांधीजी सब बहनों के बीच में होकर फिरे और बहनों ने सूत के साथ अपने-आप गहने भी उतारे, रुपये भी दिये। चरखे तो ज्यादातर ऐसे थे कि हमें आश्चर्य होता था कि ऐसे चरखे पर कातने को कैसे जी चाहता होगा? और धीरज कैसे रहता होगा? परन्तु ऐसे ही चरखे पर आँखों में बस जानेवाला सुन्दर सूत कातनेवाली बहनों को देखा और भक्ति उत्पन्न हुई।

इन्हें सम्बोधन करके गांधीजी बोले। उसमें सीता और रामावतार की कथा याद दिलाकर कहा कि हार्दिक पवित्रता के बारे में तो कहने की बात ही नहीं, परन्तु शारीरिक पवित्रता की बात करता हूँ। और बाद में खादी का उपदेश दिया।

गांधीजी बोले:*

अलीभाइयों के बिना मैं निराधार बन गया हूँ। वे होते तो मैं मुसलमान भाइयों से मिल सका होता। परन्तु मैं निराश नहीं होता। सम्पूर्ण अधीनता में ही शुद्ध स्वार्थ होता है। पर यह वही कर सकता है कि जो भीतरी रहस्य भलीभाँति समझता है। इसमें अधीनता केवल नाम को ही होती है। हिन्दू मुसलमानों का धर्म गिरा देना नहीं चाहते। इसी प्रकार मुसलमानों के लिए कहा जा सकता है। हम लड़ते हैं तो रोटी और मछली के लिए—नहीं, नहीं, पत्थर के लिए। जरा-सा गहरा उतरकर सोचें तो मालूम होगा कि किसीके पास भी रोटी और मछली नहीं है। जैसे कुत्ता परछाई को हड्डी समझकर उसके पीछे जाता है, वैसे ही हमने पत्थर को रोटी और मछली समझ लिया है। ऐसा करने में कोई सार नहीं है, यह तो जब हिन्दू और मुसलमान इसका स्वाद लेंगे, तभी समझेंगे। मैं तो आशावादी हूँ। इसलिए कहता हूँ कि यदि इन दोनों को कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ना हो तो लड़ने दीजिए। हथियारबंदी के कारण हम एक-दूसरे के गले नहीं काट सकते, यह एक शाप है। किसको कितना हानि-लाभ होगा, यह सोचकर नहीं, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम-एकता स्थापित करनी चाहिए, यह भावना होगी, तभी एकता स्थापित होगी। दोनों को एक सामान्य नीति अपनानी चाहिए—हम एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकेंगे। जिस ईश्वर ने सात करोड़ और बाईस करोड़ को साथ रखा है, उसमें हमारे लिए दया ही होगी। और हम कुछ भी करें, तो भी हम भाई-भाई के रूप में साथ तो रहेंगे ही।

"इसी प्रकार यदि हम आम जनता को अपने साथ रखना चाहते हों, तो खादी और चरखा अनिवार्य है। जनता तो हमारा पृष्ठबल है। दुनियाभर में मध्यम-वर्ग जनता को कुछ-न-कुछ वापस देता है। अंग्रेज और अमरीकी जो वर्तमान जीवन जी रहे हैं, उसका कारण यह है कि ये लोग हम पर जीते हैं। आप विलायत के खेत देखेंगे, तो जान पड़ेगा कि वे समृद्ध हैं—कंगाल नहीं हैं। हम तो स्वयं अपने पर जीते हैं। दूसरे देशों की तरफ से हमें जितना मिलता है, उससे अधिक हम उन्हें देते हैं। दूसरे देशों ने हमारे हाथों से काम करने की हमारी शक्ति भी छीन ली है। हम अब तक जनता का खून चूसकर जी रहे हैं। हमारा फर्ज है कि हम इसका थोड़ा-सा भी बदला खादी पहनकर उन्हें दे दें। खादी महँगी है, परन्तु हमें तो इससे भी महँगी चीज—स्वराज्य अर्थत् सब का सुख—चाहिए। जब मैं जानता हूँ कि मैं खादी पहनूँ तो नौ आने में पाँच आने मेरी बहनों को मिलेंगे, तब यदि ये पाँच आने बम्बई और अहमदाबाद चले जायँ, ऐसा कोई काम करूँ, तो मैं शाप के ही पात्र ठहरूँगा। खादी खरीदना महँगा पड़ता हो, तो भी हमें समझना चाहिए कि यह रकम हमारी बहनों को मिलती है।

"बहनों को कातते मैंने देखा। आप और मैं कातने लगें तो खादी सस्ती बनेगी। आप सब जमींदार भाई भी रोज़ आधा घंटा कातें। मान लीजिए कि चरखा-शास्त्र का मैं निष्णात हूँ। सिंगर की सीने की मशीन के

विज्ञापन के चित्र में श्रीमती सिंगर को सीती हुई दिखाया गया है। मुझे यह मशीन पसंद है, क्योंकि वह व्यक्ति की मेहनत बचाती है। चरखा भी ऐसी ही दूसरी चीज है। मनुष्य खोजबीन करने को ही पैदा हुआ है।

"मेरे हृदय से निकलनेवाले शब्द आपके हृदय में गहरे उतरेंगे, ऐसी आशा रखता हूँ।"

---

* यह भाषण आम सभा में दिया गया होगा।

गांधीजी वाले:*

"बनावटी खादी भद्दी चीज है। हाथ-कते सूत से ताना बनाना ही बनावटी खादी को निकाल बाहर करने का उत्तम उपाय है। अर्ध खादी तो हरामजादी मानी जायगी। इसे तो देशनिकाला ही देना चाहिए। मैं तो कहता हूँ कि इसे जला ही डालिए। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपमें ऐसी इच्छा पैदा हो और उस इच्छा को पूरी करने की शक्ति वह आपको दे।"

---

* खादी-प्रदर्शनी में गये, तब ये शब्द बोले होंगे।

ढाका जिले की आबादी का अनुपात सबसे घना है, लोकसंख्या में मेमनसिंह जैसी आबादीवाला जिला सारे भारत में दूसरा कोई नहीं होगा। मेमनसिंह की आबादी ४५ लाख है। सारे जिले में मुसलमानों का अनुपात ६५ से ७५ फीसदी तक है।

२१-५-१९२५

मेमनसिंह से वायव्य कोण में चले और उत्तर में रंगपुर जिला पार करके दिनाजपुर पहुँचे। यहाँ दिये गये मानपत्रों में एक व्यापारियों की तरफ से था। उसमें गांधीजी को कपास की उपमा दी गयी थी। फिर लिखा: "ईश्वर की कैसी लीला है कि आपके लिए जितनी भक्ति है, उतने आपके उपदेश के लिए नहीं है।"

शांत सभा के बीच में एक और अध्यक्ष जोगेनबाबू (विधानसभा के सदस्य) अपना चरखा चलाते बैठे थे, और उनके सामने आबालवृद्धों की एक सुंदर मंडली जमी हुई थी—जिसमें वकील थे, डॉक्टर थे, विधानसभा के सदस्य थे, जमींदार थे, और गारो की पहाड़ियों से आये हुए संथाल लोग भी थे। कातते-कातते भाषण देते हुए अत्यंत हर्ष से गांधीजी बोले:

"यहाँ कातना देखकर मुझे खास तौर पर अधिक आनंद होता है। यहाँ ज्यादा चरखे खादी-प्रतिष्ठान के हैं। इसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। बंगाल में सबसे बड़िया चरखे खादी-प्रतिष्ठान का है, इसमें शंका नहीं। और कातने वालों में बड़े प्रतिष्ठित लोग हैं, यह अच्छा है। इसे मैं शुभ चिह्न मानता हूँ। इसके साथ-साथ स्वागत-समिति ने संथाल लोगों को भी चरखा चलाने को बैठाया है, यह देखने को तो देवता भी उतर आयें। जब सचमुच हमारा जीवन ऐसा हो जाय कि संथाल, जमींदार, गरीब, अमीर, अपढ़, पढ़े-लिखे, हिंदू, मुसलमान सब एक यज्ञ में आहुति देने को कटिबद्ध हों, तब उस दिन मैं भारत का भाग्योदय हुआ मानूँगा। मैं आशा रखता हूँ कि आप आज के लिए ही नहीं, परंतु प्रतिदिन चरखा चलायेंगे और ईश्वर का नाम लेंगे और हर रोज ऐसा करते हुए मानेंगे कि गरीब के साथ एक हो रहे हैं और दरिद्रता दूर करने के लिए आधा घंटा देते हैं। मैंने मंत्री से प्रार्थना की है कि संथाल के जो चरखे खराब हैं, वे लेकर उन्हें अच्छे चरखे दिये जायँ। आज मुझे एक बात का दुःख है, वह यह कि यह भव्य दृश्य देखने के लिए अलीभाइयों में से एक भी उपस्थित नहीं है। गरीबी मिटाने के लिए मुझे चरखा जितना जरूरी लगता है, उतना ही स्वराज्य के लिए हिंदू-मुसलमान-एकता प्रिय है।"

बाद में गांधीजी ने संथालों के साथ बातें कीं:

"मंदिर कहाँ है?"

"हृदय में। बाहर मंदिर कहाँ बनाने जायें?"

"राम-नाम लो।"

भंगीवाड़ में म्युनिसिपैलिटी के मेहतर लोगों की तरफ से गांधीजी को मानपत्र दिया गया। उसे पढ़नेवाले अलाहाबाद के एक डोम थे। मानपत्र में बताया गया कि हमारी संख्या २५० है। सारे डोम लोग हैं। घोबी, नाई कोई हमारा काम नहीं करते, फिर भी हम इनके पाखाने साफ करते हैं।

जवाब देते हुए गांधीजी बोले:

"कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को बधाई देता हूँ कि आपसे मिलने की उन्होंने व्यवस्था की। आपने मुझे अभिनंदन-पत्र दिया, इससे मुझे आनंद होता है। मैं आपका दुःख जान सकता हूँ। परंतु खामखाह मेरी तारीफ करने से कोई फायदा नहीं होता। मुझे आपकी स्थिति और दिल का पता लगता है कि आपको बुरे मकान मिले हैं, वहाँ पानी भर जाता है और आपका वेतन थोड़ा है। इन सबका उपाय क्या है? मैं आपसे कहता हूँ कि करोड़ों लोगों की हालत आपसे खराब है। आपको साढ़े आठ रुपये मिलते हैं, परंतु कुछ लोगों को इतने भी नहीं मिलते। उनकी हालत का विचार करके हम खामोश रहें। मेरा यह कहना नहीं कि आपकी हालत सुधारने का उपाय न किया जाय। इलाज जरूर करना चाहिए, स्थिति सुधारने की कोशिश करनी चाहिए। परंतु साथ-साथ संतोष मानना चाहिए कि हमें ईश्वर ने इतना ही दिया है। आपको वर्ष में आठ महीने सूखे में रहने को मिलता है। ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें हमेशा नाव में रहना पड़ता है। आप म्युनिसिपैलिटी को अर्जी देते रहिए। आप उसे नोटिस भी दीजिए कि ईश्वर आपके पाखाने साफ करेगा और हम तो अलाहाबाद जायँगे। आपने कोई गुलामी के पट्टे थोड़े ही लिख दिये हैं? परंतु आप यह भी सोचें कि आप अपने-आप यहाँ आये हैं। आपको म्युनिसिपैलिटी ने थोड़े ही यहाँ निमंत्रित किया था? उसे आपके प्रति सहानुभूति है, इसीलिए तो उसने आपके लिए रात्रि-पाठशाला खोली है। परंतु आपको अपना कर्तव्य समझना चाहिए। मैं स्वयं अंत्यज हो जाऊँ, तो इससे क्या होगा? आप स्वयं अच्छे बनें। आपके दुःख की कहानी मुझे सुनाने से क्या होगा? रामजी से आपको अपनी कहानी कहनी चाहिए।"

विद्यार्थियों की सभा में कातते-कातते चरखे के महत्त्व के बारे में बोलते हुए कहा:

"मुझे एक मित्र ने कहा था कि जब मुझे काम उत्पन्न होता है, तब उसे शांत करने को मैं चरखा लेता हूँ। एक और मित्र ने कहा था कि जब-जब मैं क्रोध से घिरता हूँ, तब चरखा लेने से मेरा क्रोध शांत हो जाता है। मतलब यह कि ब्रह्मचर्य के लिए जो शांति चाहिए, वह चरखे से मिल जाती है। मुझे दो-तीन दिन पहले एक-दो लड़कों ने कहा: 'हमसे चरखा नहीं काता जाता। हम तो फाँसी पर चढ़ेंगे। जिससे नशा आये, ऐसी कोई चीज हमें दीजिए।' मुझे लगा कि ये विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पालनेवाले नहीं हैं, क्योंकि यह शांतिपोषक चीज—चरखा उन्हें

पसंद नहीं आता। मुझे तो लगता है कि जीवन को सत्य, निर्मल, शांतिमय और सेवाभाव से पूर्ण कर देनेवाली सामग्री चरखे में मौजूद है। इसलिए तुम सबसे मैं आधा घंटा कातने की मंजूरी माँगता हूँ।"

दिनाजपुर में चरखा-प्रदर्शनी सुन्दर थी। स्त्रियों की सभा भी बढ़िया थी। परन्तु समय की कुछ अव्यवस्था थी। रात को रेल में बैठे हुए स्वागतध्यक्ष ने कहा: "थोड़ी अव्यवस्था हुई, उसके लिए माफी चाहता हूँ।" गांधीजी कहते हैं: "चरखे का काम सम्पूर्णता को पहुँचा दें, तो जो करेंगे उसे माफ कर दूँगा।" यह चरखे और कातनेवालों के प्रति पक्षपात की हद बताता है।

दिनाजपुर से बोगरा आये। सबसे छोटे जिले का मुख्य स्थान केवल ग्यारह हजार की आबादीवाला है। परन्तु वहाँ कोई पंद्रह हजार मनुष्य उपस्थित होंगे। इस गाँव में तो लोगों ने १५०० रुपये की थैली भी तैयार रखी थी; परन्तु इसके सिवा सूत भी बहुत था। और सबके अलावा कातनेवालों का प्रदर्शन था—जिसमें दो-तीन कुटुम्ब अपना कातकर पहननेवाले थे। एक लड़की तो कातने में इतनी तल्लीन थी कि उसने न तो देखा गांधीजी की ओर और न किसी और की तरफ। और सभा समाप्त हुई, तब तक सुन्दर कातती रही। एक कन्या पाठशाला की बालिकाओं ने अपने काते हुए सूत के कपड़े भेट किये तथा बाबू जगतमोहन सरकार नामक सज्जन ने अपने ७०-८० अंक तक के सूत का स्वयं ही बुना हुआ कपड़ा भेट किया। इस प्रदर्शन में भी वकील, म्युनिसिपल कमिश्नर और दूसरे हिन्दू-मुसलमान सज्जन बालकों के साथ शामिल हुए थे।

मानपत्रों का जवाब देते हुए गांधीजी बोले:

"आपके अभिनन्दन-पत्र के लिए आभार मानता हूँ। खूबसूरत खादी के लिए भी आभार मानता हूँ। पंद्रह सौ रुपये देने के लिए आप बधाई के पात्र हैं। यह रकम इस्तेमाल करने के लिए आपने मुझे स्वतंत्रता दी है। मैंने निश्चय भी कर लिया है कि मैं इसका क्या उपयोग करूँगा। मैं यह रकम खादी-प्रतिष्ठान को देना चाहता हूँ, वह इस शर्त पर कि इसका उपयोग खादी सस्ती करने में अथवा चरखे मुफ्त या सस्ते भाव पर देने में किया जाय। आपने बहुत सादगी से अभिनन्दन-पत्र दिया है। ऐसे अभिनन्दन-पत्र अपने साथ रखने में मुझे अड़चन नहीं है। और यह मधुर मातृभाषा में लिखा हुआ है।

"यहाँ आना मेरे लिए एक यात्रारूप है। राय आचार्य और मेरे बीच गाढ़ सम्बन्ध है। सन् १९०१ में यह सम्बन्ध बना था—एक पवित्र व्यक्ति के द्वारा—गोखलेजी के द्वारा। तब से सम्बन्ध बढ़ता गया है। इनके त्याग से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ और इस प्रदेश में प्रलय से पीड़ित लोगों के लिए जो कार्य इन्होंने किया था, उसका

भी मुझे कुछ पता है। यहाँ आकर मैं धन्य हुआ हूँ। आप लोगों ने अपने काम का जो विवरण दिया है, उससे मुझे आनंद हुआ है। चरखे की शक्ति आपने जानी है, यह एक बड़ी बात है। जब प्रलय अथवा अकाल से लोग पीड़ित होते हैं, तब उनकी राहत के लिए चरखे जैसी व्यापक वस्तु और कोई नहीं है। धनिकों के लिए पीड़ितों में बाँटने को रूपया भेजना आसान बात है और फिर वे अपने मन को बहला सकते हैं कि हमने गरीबों के लिए कुछ किया है। परन्तु इस प्रकार रूपये की सहायता देना पीड़ितों के लिए हानिकारक है और उनके लिए सहायक नहीं है। जिन्हें कष्ट होता है, उनकी कार्य-शक्ति कम नहीं होती। यदि उन्हें काम दिया जाय तो वे ज़रूर करेंगे। इसलिए जो करना है, वह यह है कि उन्हें काम दिया जाय। जिसमें शारीरिक शक्ति है, उसे यों ही खाने को देना पाप है। भारत में जब मैं लोगों को आवारा भटकते देखता हूँ, तब मुझे विचार आता है कि गरीब लोगों में ऐसी दरिद्रता घुस गयी है कि उन्हें कोई काम ही नहीं सूझता। परन्तु यदि हम यह आलस्य न निकालें, तो हमारे देखते-देखते देश का नाश हो जायगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि सब चरखा कातें। इससे और कुछ न हो तो भी दूसरे पर आधा घंटा चरखा चलाने का असर तो होगा ही।

"कल और आज जो दृश्य देखे, उनसे मुझे बहुत बल मिला है। छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ, गरीब-अमीर, अफसर और नौकर साथ बैठकर कातें, ऐसा बहुत जगह देखने को नहीं मिलता। इसमें मैं बड़ी शक्ति देखता हूँ। इसमें हमारा गर्व हटाने की शक्ति है। मेरे जैसे आयें तभी नहीं, परन्तु ऐसे दृश्य हमारे जीवन के स्वाभाविक अंगस्वरूप बन जायें, ऐसी मैं आशा रखता हूँ। पिता अपने बालक के साथ चरखा चलाये और ब्राह्मण अछूत के साथ बैठकर चलाये, इसे मैं आदर्श तालीम मानता हूँ।

"इसका परिणाम बहुत बड़ा है। इसमें मैं अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र दोनों देखता हूँ। परन्तु इसमें थोड़ी-सी शर्त है। यदि हम सारे भारत में चरखा व्यापक बनाना चाहें, तो सबको खादी पहननी चाहिए। खादी का पूरा उपयोग ही चरखे की शक्ति है। इसलिए आज तो सब प्रतिज्ञा करके जायँ कि कंगालों के लिए हम खादी पहनेंगे।

"जैसे खादी और चरखे की बात प्राणरूप है, वैसे ही सब जातियों की—हिन्दुस्तानी मात्र की—एकता आवश्यक है। हिन्दू-समाज का परम धर्म है कि जिन्हें वह अछूत मानता है, उनके प्रति अस्पृश्यता का नाश करें।"

बोगरा में जतीनबाबू नामक एक ब्रह्मचारी कार्यकर्ता एक पाठशाला चलाते हैं। उस पाठशाला में राष्ट्र-कार्य करने के लिए ही शिक्षा दी जाती है—कार्यकर्ताओं का 'नॉर्मल स्कूल' समझ लीजिए। उसका नाम 'गणमंगल संस्था' रखा हुआ है। ब्रह्मचारी और सत्यानिष्ठ कार्यकर्ता के उत्पन्न किए हुए वातावरण को लेकर गांधीजी ने यहाँ अहिंसा और चरखे पर छोटा-सा प्रवचन कातते-कातते किया:

"कुछ युवक कहते हैं कि हम फाँसी पर चढ़ सकते हैं, मगर कात नहीं सकते। हमें तो कोई नशा चाहिए। अब चरखा है तो शांतिप्रद भी है और शांतिसूचक भी है। मैं यही सब जगह प्रस्तुत करता हूँ, क्योंकि मेरे लिए तो अहिंसा धर्म है। मेरे लिए यह नीति के रूप में नहीं, परन्तु मेरा तो जीवन-मंत्र है। मेरे लिए सिक्के का एक पहलू अहिंसा है, दूसरा सत्य है। अहिंसा धर्म कैसे है, यह देखें। सृष्टि की ओर देखेंगे तो मालूम होगा कि सृष्टि में नाशक प्रवृत्ति ही प्रधान होती, तो आज कोई प्राणी जीवित न होता। परन्तु सृष्टि की प्रवृत्ति पोषक है और पोषक प्रवृत्ति का मूल शांति है, अहिंसा है। सृष्टि सदा ही रहनेवाली है—प्रलय के अन्त में भी फिर खड़ी हो जायगी। नाशक प्रवृत्ति भी सृष्टि में है। परन्तु वह क्षणिक है, पोषक प्रवृत्ति ही शाश्वत है। यदि नाशक प्रवृत्ति प्रधान होती तो स्त्री-पुरुष, भाई-भाई, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा के बीच जो पुण्य-सम्बन्ध कायम रहा है, वह न रहता। हरद्वार में गंगा का निर्मल जल देखकर मुझे विचार हुआ था कि ऋषियों को गायत्री मंत्र कहाँ सूझा होगा? वहाँ के सूर्योदय का अद्भुत दृश्य देखने से मुझे उत्तर मिला। उस दिन मुझे पता चला कि गायत्री में सूर्य की स्तुति क्यों हुई है। सूर्य की स्तुति अर्थात् ईश्वर की ही स्तुति है। सूर्य की की जाती है, उसका कारण यह है कि सूर्य ईश्वर की शक्ति प्रकट करनेवाली महान्-से-महान् शक्ति है। सूर्यनारायण के लिए कभी विराम ही नहीं है। सदा ही उसका पर्यटन जारी रहता है, जहाँ-जहाँ अंधकार, अप्रकाश, पाप हो, वहाँ-वहाँ वह अपना प्रकाश डालता ही जाता है। सूर्य की यह पोषक शक्ति, रक्षक शक्ति ही सृष्टि की परम शक्ति है।

"नशा किसे चाहिए? नशा तो उस मनुष्य को चाहिए, जिसे काम न करना हो। जिसमें प्रेम का नशा है, उसे और नशे की जरूरत नहीं पड़ती। मेरा जीवन ज्यों-ज्यों बहता जाता है, त्यो-त्यो चरखे में मेरा विश्वास बढ़ता जाता है। आपके सामने भाषण देते-देते चरखा चलाने में मैं अविनय कर रहा हूँ, ऐसा भय मुझे आज नहीं लगता। मुझे तो प्रतिक्षण ऐसा लगता रहता है कि 'अरे जीव! पृथ्वी पर इतने मनुष्य भूखे मरते हैं, फिर भी मुझे कैसे खाने को मिलता है? या तो ईश्वर मेरे पास से खाने को ले ले या भूखे मरनेवालों के लिए मुझसे कुछ भी सेवा करा ले।' क्या मैं इन भूखों से रसायन की प्रयोगशालाएँ खुलवाऊँ? इनसे कुनैन बनवाऊँ? मुझे तो वही चीज करनी होगी, जो लाखों-करोड़ों से करायी जा सकती है। प्रेम के मार्ग में से यह वस्तु मुझे मिल रही है। प्रेम

के जैसा और कोई नशा नहीं है। जिसमें प्रेम है, वह किसीकी हिंसा नहीं कर सकता। प्रेम तो मरना चाहेगा, किसीको मारना नहीं चाहेगा। अहिंसा मेरा धर्म है, मेरा ईश्वर है; सत्य मेरा धर्म है, मेरा ईश्वर है। सत्य को ढूँढता हूँ, तब अहिंसा कहती है कि मेरे द्वारा ढूँढो; अहिंसा को ढूँढता हूँ, तब सत्य कहता है कि मेरे द्वारा ढूँढो।"

गांधीजी बोले:[१]

"हमारा ६० फीसदी आयात ब्रिटेन से होता है। जब तक ब्रिटेन को आर्थिक लाभ होता रहेगा, तब तक ब्रिटेन हमारे साथ सम्बन्ध रखेगा। जिस दिन वह लाभ मिलना बन्द हो जायेगा, उसी दिन वह भारत छोड़ देगा—जैसे सोमालीलैण्ड छोड़ा। जिनके दिल में देश की आग है, उनसे कहता हूँ कि और कुछ नहीं तो अन्त में इतना वे करें कि देश में पैदा हुई खादी पहनें। जरूरतें बढ़ाने में संस्कृति नहीं है। इसलिए गाँव के निवासियों को यह तो नहीं कहूँगा कि तुम अभी पहनते हो, उससे अधिक कपड़ा पहनो। परन्तु उनके गाँवों में से नमीवाले प्रदेश नष्ट हों और उन्हें अधिक सुविधाएँ मिलें, इसके लिए प्रयत्न जरूर करूँगा।"

---

१. गांधीजी ये शब्द कहाँ और कब बोले होंगे, यह डायरी में दर्ज नहीं है। परन्तु बोगरा में एक अमरीकी पादरी अपनी पत्नी के साथ गांधीजी से मिलने आये थे। उनके साथ की बातचीत में गांधीजी ये शब्द बोले होंगे, ऐसा अनुमान है।

डॉ. राय के प्रलय-निवारण क्षेत्र के बारे में गांधीजी ने खुद अलहदा लेख लिखा है।[१] इसलिए उस लेख के अलावा जितना हालचाल देना चाहिए, उतना ही देकर मैं संतोष मानूँगा। मेरे पास साधन होते, तो लगभग चार हजार वर्गमील के क्षेत्र में जल-प्रलय ने जो तबाही की थी, उससे निपटने के लिए डॉ. राय और उनके दाहिने हाथ सतीशबाबू ने कितना काम किया, उसकी कल्पना कराने के लिए मैं इस क्षेत्र का नकशा देता। सारे क्षेत्र से वे निपट नहीं सके थे। कई स्थानों से सहायता तो आती ही थी, अनेक कष्ट-निवारण संस्थाएँ वहाँ पहुँच चुकी थीं, परन्तु अपनी कार्यदक्षता से उन्होंने तमाम संस्थाओं को 'बंगाल प्रलय-निवारण संस्था' में एकत्र किया, सैकड़ों कार्यकर्ता खड़े किये, अनेक डॉक्टरों की मदद प्राप्त की, अनेक डॉक्टरी और दूसरे साधनों द्वारा सब जगह पहुँच गये। इस क्षेत्र का बड़ा भाग अर्थात् उत्तर बंगाल का बोगरा जिला और उसके दक्षिण में स्थित पबना जिला था। डॉक्टरी सहायता, खुराक और कपड़ों की मदद के अलावा लोगों की खेती की रक्षा करने की मदद भी करनी थी। इसके लिए बड़े-बड़े बाँध बनाने थे। इसे भी वे कुशलता से कर पाये। यह उत्तर-दक्षिण पूर्व-

पश्चिम का एक लंब-चतुष्कोण आकार का रेलवे-क्षेत्र है। पानी के निकास में यह रेलवे भारी बाधक है। दक्षिण में इस रेलवे के कारण पानी जा ही नहीं सकता। जहाँ-जहाँ पानी जाने का मार्ग है, वहाँ रेलवे ने चौकियाँ और पहरे रखे थे। लोग प्रलय-मग्न होकर मरें, इससे रेलवे को कोई सरोकार नहीं था, उसे तो अपना रेल-मार्ग बचाना था। इस विघ्न के साथ भी निवारण-सेना ने यथाशक्ति टक्कर ली।

परन्तु यह तो उनके कार्य का साधारण भाग था। असाधारण भाग तो जो बातें गांधीजी ने एक बार विचाररूप में ही रखी थीं, उनका सम्पूर्ण और सफल अमल कर दिखाना था। बोरसद-सत्याग्रह की विजय सुनकर गांधीजी को जितना आनन्द हुआ, उतना ही आनन्द इस क्षेत्र में चरखा चालू करके अकाल के कदम रुक जाने की बात सुनकर हुआ। इसके अतिरिक्त जो कार्य कोई भी कार्यसाधक हलचल पूरी होने के बाद करने को रह जाता है, वह यहाँ हो रहा है, यह देखकर भी उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। सतीशबाबू ने जब देखा कि लोगों के रहने की कोठरियाँ तैयार हो गयी हैं, तो तुरंत उन्होंने चावल वगैरह देना धीरे-धीरे बंद कर दिया। चरखे का प्रचार करने में थोड़ा समय तो लगा, परन्तु प्रचार हुआ, तो तेजी से काम चला। मई १९२४ से क्षेत्र में चलनेवाले ३००० चरखों ने प्रतिमास ५००० रुपये की कमाई लोगों को करके दी है। जहाँ अकाल का नाम नहीं है, वहाँ लोग स्वाभाविक रूप में शिथिल हुए हैं। परन्तु बहुत बड़े हिस्से में तो चरखे ने घर कर लिया है।

---

१. देखिए परिशिष्ट—३

२३-५-१९२५

हम निवारण-समिति के नौ केंद्रों में से तलोड़ा केंद्र में गये थे। इन नौ केंद्रों में वासठ कार्यकर्ता हैं। गाँवों में रुई देना और सूत ले आना और उसका हिसाब रखना इनका काम है। धीरे-धीरे पाठशालाएँ खोलने का भी सतीशबाबू का विचार है। इन कार्यकर्ताओं पर अधिक-से-अधिक पचीस रुपये मासिक खर्च है। इनमें से अधिक नौजवान बोगरा की 'गणमंगल संस्था' से आये हुए हैं। इन युवकों का उत्साह देखकर मैं चकित हो गया। यह उत्साह उनमें उड़ेलनेवाले नहीं, तो जागृत रखनेवाले डॉ. राय ही हैं। वे सबमें बालकों की तरह घुल-मिल जाते हैं और सबके साथ बच्चों की तरह खेलते हैं। एक लड़के को कान पकड़कर गांधीजी के आगे ले आये और बोले: "महात्माजी, यह मेरा मियाँजान है। इसे मुसलमान लड़का कौन जानेगा? परन्तु यह मुसलमान है। आप तो जेल में थे, परन्तु आपके लिए जो गांधी-पुण्य-दिवस पालन करते, उनमें मियाँजान भी एक था। हर महीने जब मैं इन लोगों की खबर लेने आता हूँ, तब इन लोगों के लिए सन्देश (मिठाई) लाने का मेरा रिवाज है। और सन्देश मियाँजान को बहुत भाते हैं। मगर एक दिन गांधीपुण्याह के दिन में अनजाने उसे सन्देश देने लगा तो उसने साफ इन्कार कर दिया। कहता है: 'आज तो मेरा पुण्याह का उपवास है, तो सन्देश कैसे खाऊँ!' और यह मियाँजान हमारे लड़कों में सबसे अधिक कातनेवाला है ।' थोड़ी देर बाद हमने मियाँजान की कला देखी। ३२ लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे। बत्तीस के बत्तीस ने घंटेभर में ४०० से ५०० गज काता, परन्तु मियाँजान ने तो ७२० गज कातकर गांधीजी के आगे घर दिया। सारा एक-सा बटदार २० नम्बर का सूत था! इन सबके चरखे एक तंबू में चल रहे थे। दूर से ऐसी मधुर आवाज आ रही थी, जैसे भँवरा गूँज रहा हो। अंदर गये तो भी वही आवाज। एक भी चरखे में से बेसुरी आवाज तो निकल ही नहीं रही थी! और सबकी पूनी देखकर तो मुग्ध ही हो सकते थे। मेरा खयाल है कि सारे बंगाल के बढ़िया सूत की कुंजी ज्यादातर सुन्दर पूनी में है और सुन्दर का अर्थ है, पींजने से पहले अत्यंत सावधानी से हाथ से साफ की हुई रूई। पबना के जमींदार की पूनी भी रेशम के लच्छे जैसी थी और मियाँजान की पूनी भी वैसी ही—इतना ही नहीं, परन्तु मियाँजान के भाई-बन्धुओं की भी वैसी ही। सतीशबाबू ने बताया: "हम सब यहाँ एक साथ उठते-बैठते हैं, खाते-पीते हैं। किसीको विचार तक नहीं होता कि अमुक मुसलमान है या फलाँ हिन्दू है।"

परन्तु हिन्दू-मुसलमान-एकता का अद्भुत नमूना तो अभी देखना था। यह काम करनेवालों में केवल एक-तिहाई मुसलमान होंगे, बाकी और सब हिन्दू हैं। परन्तु इन लोगों ने इकट्ठे मिलकर जिन लोगों की सेवा की, वे लोग ८५ प्रतिशत से ज्यादा मुसलमान हैं! शाम को जब स्त्रियों की कताई देखने गये, तब वहाँ तो

अधिकंश बालिकाएँ और स्त्री-पुरुष भी मुसलमान ही थे! इन सबके पास भी पूनियाँ सुन्दर थीं। एक-दो लड़कियाँ इतनी तेजी से चरखा चलाने में व्यस्त थीं कि वहाँ कौन आया, यह जानने की उन्हें कोई परवाह नहीं थी। एक के सामने गांधीजी बड़ी देर तक खड़े रहे, अन्त में थककर कहा: "जरा तो मेरी तरफ देख। तेरे सामने यह महात्मा गांधी आकर खड़ा है। तू पहचानती है?" परन्तु कोई जवाब नहीं! एक और से पूछा, उसने उत्तर दिया: "नहीं पहचानती।" सच बात तो यह थी कि उस दिन भी कातने की रोजी तो इन्हें मिलने ही वाली थी, व्यर्थ बात करने में समय खोकर रोजी किसलिए कम की जाय, यह उस बालिका के मन में होगा। दो बुढ़िया अस्सी वर्ष की थीं, एक को शायद ही दिखाई देता था, परन्तु तार एक-सा निकल रहा था ! चरखा भी उसकी सास के जमाने का था! एक बहन ने अभिमान-पूर्वक बताया: "मैं और मेरी लड़की आठ रुपये महीने इस चरखे से पैदा कर लेते हैं, फिर हमें क्या दुःख!"

यहाँ के दृश्य देखकर हुए आनंद को गांधीजी ने आम सभा में इस प्रकार व्यक्त किया:

"यहाँ आना मेरे लिए तीर्थयात्रा है, ऐसा बोगरा की सभा में कह चुका हूँ और यह फिर कहता हूँ। डॉ. रॉय के स्वार्थ-त्याग को जितना मैं जानता हूँ, उतना आप भी न जानते हों, और जब से मैंने सुना कि इनके अनेक कामों में से एक यह भी है, तब से मैंने एक बार यहाँ की यात्रा करने का निश्चय कर लिया था। फिर जब यहाँ आकर मैंने देखा कि जिन्हें मदद मिली है, उनका बड़ा भाग मुसलमान है, तब मेरे आनंद का और इनके प्रति भक्ति का पार नहीं रहा, क्योंकि हिंदू मुसलमान की ऐसी सेवा करेंगे और मुसलमान हिंदू की ऐसी सेवा करेंगे, तभी हिंदू-मुसलमानों के बीच आपने-आप एकदिली होगी। मुझे अत्यंत दुःख होता है कि यह विरल दृश्य देखने को मेरे भाई मौलाना शौकतअली या मुहम्मदअली यहाँ नहीं हैं। आजकल हमारे कार्यकर्ताओं को अपना-अपना काम छोड़कर निकलना कठिन हो गया है, ऐसी देश की स्थिति है। परन्तु जब दोनों भाइयों को मैं यहाँ की बात सुनाऊँगा, तब वे बहुत ही खुश होंगे, इसमें मुझे शक नहीं। और यहाँ जो मुसलमान भाई आये हैं, उन्हें यह भी खुशखबरी देना चाहता हूँ कि मेरे सामने जब चरखा चलानेवाले खड़े किये गये, तब सबमें से बढ़ा-चड़ा एक मुसलमान लड़का था। और मैं तो आशा रखता हूँ कि वही मुसलमान सबसे आगे रहेगा। आप यहाँ जो मुसलमान भाई आये हैं, वे इस सेवा को स्वीकार करेंगे, ऐसी मुझे उम्मीद है, क्योंकि बंगाल में अधिकांश किसान मुसलमान हैं। मैंने सुना है कि साल में कम-से-कम छह महीने उनके पास काम नहीं रहता। सभापति महाशय कहते हैं कि छह नहीं, परन्तु नौ महीने बैठे रहना पड़ता है। मैं अनुभव से जानता हूँ कि जिस प्रजा को छह महीने बैठे रहना पड़ता है, उसका नाश हो जाता है। ईश्वर ने हमें इस उद्देश्य से पैदा किया है कि हम हमेशा

मजदूरी करके खायें। जो इस नियम के अनुसार नहीं चलते, उन्हें भूखों मरना पड़ता है अथवा दूसरों के बदले स्वयं भूखों मरना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति कम-से-कम आधा घंटा कातेगा और किसान बचा हुआ सारा समय कातने में लगायेगा, ऐसी आशा रखता हूँ। यहाँ मकान बने हैं। जिनके द्वारा यह मदद दी जा रही है, वे आपको चरखा कसना भी सिखायेंगे। परन्तु इसके साथ-साथ दूसरा काम भी करना पड़ेगा। यह सूत कातने की बड़ी जरूरत है और गरीबों को चार-पाँच रुपये हर महीने मिल सकते हैं, क्योंकि हम खादी पहनते हैं। इसलिए हम सबका धर्म है कि हमेशा खादी का उपयोग करें। खादी महँगी है—मिल के कपड़े से महँगी है—यह कोई न समझे। और जब हम सब कातने लगेंगे, तब खादी भी बहुत सस्ती हो जायगी। हाथ से कातनेवाले के लिए तो आज भी खादी सस्ती ही है।"

फिर थोड़ी अस्पृश्यता-निवारण की बात की।

पबना, २४-५-१९२५

मुसलमानों ने अपने दुःख गिनाये:[१] (१) अस्पृश्यता (२) गाय (३) नौकरियाँ (४) जातीय प्रतिनिधित्व (५) मुसलमान-विरोधी साहित्य (६) अपहरणों के बारे में अखबारों के विवरण (७) कालीमाता की पूजा मुसलमान धर्म के विरुद्ध है (८) जमींदारों की तरफ से उत्पीड़न और (९) महाजन के दस्तूर।

कावसजी एडनवाले और आदमजी पीरभाई उपस्थित थे।

उत्तर में अस्पृश्यता जितनी कड़ाई से रखी जाती है, उतनी कड़ाई से यहाँ नहीं रखी जाती।

इनमें से कुछ दुःख हिंदू-मुसलमानों के बीच चल रहे वैमनस्य के परिणामस्वरूप नहीं, कुछ तो स्थानीय ही हैं।

हिंदुओं को सम्बोधन करके गांधीजी बोले:

"हिंदू-धर्म अपने-आपको बचाने के लिए धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन को रोकने में लंबे-चौड़े कानून की माँग करता हो, तो बेहतर है कि इस धर्म का नाश हो जाय। आप भारत को जजीरतुल-अरब[२] नहीं बना सकते। हिंदू-धर्म ने (?) तो स्पेनिश, इटालियन और हूण वगैरह लोगों को अपनाया है। इसलिए धर्म-परिवर्तन-सम्बन्धी हमारे विचारों में परिवर्तन लाने की जरूरत है। हिंदू-धर्म के आसपास निरुपयोगी बाड़ें खड़ी करने से वह मजबूत नहीं बनेगा, बल्कि कमजोर हो जायगा। हिंदू-धर्म तो बल्कि धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन से पवित्र बना है। हिंदू-धर्म तो बाद में पैदा हुआ धर्म है। शुद्ध आर्य लोगों का निवास भारत में नहीं था। हम निषेधक नहीं थे, परन्तु अभिव्यापक थे। हिंदू-धर्म की यह खूबी है कि वह इस्लाम या ईसाई-धर्म की तरह दूसरों से अपना धर्म छुड़वाकर केवल संख्या बढ़ाने में विश्वास नहीं रखता। उसकी सतत नीति अपनाने की है। एक प्रकार की नैसर्गिक वृद्धि से ही वह विकसित हुआ है। हिंदू लोग हिंदू हलवाई को मुसलमानों के हाथ मिठाई बेचने से क्यों रोकें? आप अंग्रेज हलवाई से चाकलेट खरीदते हैं तो इसी प्रकार हिंदू हलवाई को क्यों नहीं बेचने देते?"

---

१. यह सभा कहाँ हुई और क्या चर्चा हुई, यह जानकारी लिखी नहीं गयी है। ऐसा लगता है कि यह सभा पबना में हुई होगी और उसमें हिंदू भी उपस्थित होंगे।

२. अरबस्तान का द्वीपकल्प।

पबना में 'नारी शिल्प मन्दिर' नाम की स्त्रियों की एक छोटी-सी संस्था है। वहाँ की बहनें अपना सूत लेकर आयी थीं और एक सुन्दर धोती गांधीजी के लिए और एक सुन्दर साड़ी पू. कस्तूरबा के लिए अपने ही सूत की बनाकर लायी थीं।

पबना के जमींदार श्री जोगेंद्रचन्द्र मित्र बड़े धनाढ्य माने जाते हैं। इनकी पत्नी करोड़पति स्वराज्यवादी श्री तुलसी गोस्वामी की बहन होती हैं। पति, पत्नी दोनों नियमित कातते हैं। इतना ही नहीं, परन्तु घर में सारे बच्चे भी कातते हैं, अपनी रुई से और हाथ से पींजकर रेशम के लच्छों जैसी पूनी बनाते हैं और उनसे सुन्दर वटदार ४०-५० नम्बर का बारीक सूत कातते हैं। और सबके २० दिन के सूत का एक बारीक कपड़ा उन्होंने गांधीजी को भेट किया और उसे इस्तेमाल करने का गांधीजी से आग्रहपूर्वक वचन लिया। एक भाई ने गांधीजी से कहा: "ये जोगेनबाबू किसी राजकाज में भाग नहीं लेते। सहयोग में तो इन्होंने कोई हिस्सा नहीं लिया। सरकार की भी इन पर दया-दृष्टि है। परन्तु आपके लिए इनमें भक्ति है और ये धर्मनिष्ठ हैं, इसलिए 'हितसाधन मंडल' नाम की संस्था के द्वारा समाज-सेवा करते हैं। इतने में समाज-सेवा का बड़ा साधन आपका खादी का मंत्र आया। यह उन्हें बहुत पसंद आ गया, इसलिए आनंद से उन्होंने अपना लिया। और किसी दूसरे की अपेक्षा इसका ये अधिक पालन करते हैं।" गांधीजी कहते हैं: "बस, मुझे यह बहुत प्रिय है। धर्मभाव से खादी अपनायें और धर्म-भाव से खादी का प्रचार करें, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिए। इतना तो मेरे लिए बहुत है।"

आम सभा को सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

"बंगाल प्रान्तीयता में फँसा हुआ है, इस आक्षेप को सर आशुतोष ने झूठा साबित कर दिया है। उन्होंने अपना माना हुआ ग्रंथ-संग्रह काशी विद्यापीठ को दे दिया है। इसमें मुझे इनकी उदारता का प्रमाण मिला है।

"एक मानपत्र में आपने हिंदू-मुस्लिम-प्रश्न का इशारा किया है। मैं इस बारे में अधिक कहना नहीं चाहता। बंगाल जैसे प्रांत में मैं आया तो भी अलीभाइयों में से एक भी मेरे साथ नहीं है, इसका मुझे दुःख है। यदि वे आये होते, तो अपने-आपको जितना सुरक्षित आज मानता हूँ, उससे कहीं अधिक सुरक्षित समझता। परन्तु भारत का दुर्भाग्य है कि आज हमारे इन दो नेताओं में एक भी ऐसी स्थिति में नहीं है, जो प्रवास के लिए निकल सके। भारत के प्रत्येक सेवक के साथ ऐसा काम लगा हुआ है, जिसे वह छोड़ नहीं सकता। हिंदू-मुस्लिम-झगड़ा एक ऐसी खतरनाक बात है कि इससे छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। सच्ची स्थिति तो यह होनी चाहिए कि मुसलमान बंदगी करता हो, तो साथ-साथ हिंदू गायत्री जपता हो। यह हमारा धर्म है, ऐसा दोनों को समझ लेना

चाहिए। अपने-आपको हिन्दुस्तानी मानना चाहनेवाले हरएक भारतीय को अपने धर्म की धाराओं में एक धारा जोड़ लेनी चाहिए—कुरान, जेंद अवस्ता, बाइबिल, गायत्री प्रत्येक में—कि भारत में रहनेवाले हम सब साफ दिल होकर अन्यधर्मियों के साथ रहेंगे। जब तक ऐसा नहीं करेंगे, तब तक न हम आजाद रहेंगे, न शान्त रहेंगे।

"परन्तु सिद्धान्त का पालन कठिन बात है। इसका देहाती इलाज यह है कि हम एक-दूसरे के लिए मरें। जो अपना धर्म बचाना चाहे, उसे अपना शरीर भी होम देने की तैयारी रखनी चाहिए, ऐसा कानून है। सनातनियों से कहता हूँ कि आप ऐसी ऐहिक वस्तुओं का त्याग करें, जिनकी लालसा मुसलमान या ईसाई रखते हों। यदि इतना करेंगे तो कुछ भी करने को नहीं रहेगा। एक समय ऐसा आयेगा, जब यही बर्ताव कामयाब साबित होगा। परन्तु आज मैं बेकार और निकम्मा हो गया हूँ। मेरी दवा आज बेकार हो गयी है। परन्तु मैं कहता हूँ कि एक बार हिन्दू-मुसलमानों को खूब लड़ लेने दें। इनके खून से पद्मा के पानी को लाल होने दें। ऐसा हो तो भी क्या? मुसलमान क्या हिजरत करेंगे? हिन्दू क्या भाग जायँगे? कुदरत अपना काम कर लेगी। परन्तु ऐसा करने में मनुष्यत्व नहीं दिखाई देगा।

"मैंने सुना है कि यहाँ स्थानीय झगड़ा भी मौजूद है। आप हिन्दू-मुसलमान दोनों से कहता हूँ कि खुदा को साक्षी रखकर किसीको पंच बना लीजिए।

"आपने मुझे चरखे बहुत बताये। आपने मुझे आपना इल्म बताया, इसके लिए आपको बधाई देता हूँ। मैं जिनके यहाँ ठहरा हूँ और जिनका आतिथ्य भोग रहा हूँ वे, उनकी पत्नी और उनके बाल-बच्चे सब कातते हैं। आपने हाथ से काते हुए सूत की बनी हुई पवित्र खादी भी इन्होंने मुझे दी। यह देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। परन्तु यहाँ का चरखा देखकर दुःख होता है। यहाँ पबना में कोई चरखा-शास्त्री नहीं है। आशुतोष बड़े कानून-पंडित न होते तो उनके घर कौन मुकदमा लेकर जाते? हमारी गरीबों की चीज—चरखे—के लिए भी कानून होता है। मेरी सलाह है कि खादी-प्रतिष्ठान का बनाया हुआ चरखा आप बसायें। आप कहेंगे कि यह तो मैं उसका विज्ञापन करने बैठा हूँ। परन्तु कावसजी जैसे विज्ञापन की एजेंसी का धंधा करते हैं, वैसे ही मैंने ऐसी वस्तु की एजेंसी का ठीका लिया है, जो देश की उन्नति करे। बंगाल में सबसे बढ़िया चरखा चाहिए तो सतीशबाबू के पास चले जाइए। उन्हें रुपया नहीं चाहिए। उन्होंने तो अपना सर्वस्व होम दिया है। वे मानते हैं कि सारे भारत में उनका चरखा उत्तम है। अलबत्ता मुझे इस बारे में शंका है।

"चालीस वर्ष की तपस्या के बाद, सब धर्मों का निरीक्षण करने के पश्चात् और हिन्दू-धर्म की तमाम स्मृतियों के कानूनों में से जितनों को बुद्धि स्वीकार करे, उतनों का पालन करने के बाद मैं कहता हूँ कि आज जैसी अस्पृश्यता हम मानते हैं, वैसी के लिए स्थान नहीं है। जिस दिन यह सिद्ध हो जायगा कि वर्तमान अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का अविभाज्य अंग है, उस दिन मैं इस धर्म को छोड़कर नास्तिक बन जाऊँगा। मुसलमानों और ईसाइयों के संपर्क में आने के बाद ही मैंने अपने को हिन्दू कहलाने का निश्चय किया है। लेकिन सबके लिए इसमें समता का स्थान न हो, तो मैं नास्तिक बन जाऊँगा। परन्तु मेरा निश्चय है कि शंकराचार्य और बड़े-बड़े शास्त्री आ जायँ, तो भी मैं कहूँगा कि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता नहीं है। सब मेरा बहिष्कार करें, तो भी मैं यही कहूँगा। हिन्दू-धर्म, गीताजी, महाभारत, ये सारे ग्रंथ समदर्शिता सिखाते हैं। चाण्डाल और ब्राह्मण के प्रति एक वृत्ति रखना सिखाते हैं। ब्राह्मण यदि ज्ञानी हो, तो उसकी पूजा करूँ और शुद्र से सेवा भी कराऊँ। परन्तु यदि दोनों को साँप काटे तो? मैं जानता हूँ कि ज्ञानी ब्राह्मण जीना नहीं चाहता। मैं उसके पास जाऊँगा और कहूँगा कि मेरे पास एक जीभ है। मैं सर्पदंश को चूसना चाहता हूँ। किसे चूसूँ? तो ज्ञानी ब्राह्मण कहेगा कि तू चाण्डाल के दंश को चूस ले। यही सच्चा धर्म है। इसलिए कहता हूँ कि परोपकारी बनें। स्वेच्छाचारी न बनें और संयम-धर्म का पालन करें।

"तुलसीदास कहते हैं: 'दया धर्म का मूल है।' यह दयाभाव भारत में फिर से स्थापित करने की जरूरत है। मैं उसका पुनःस्थापन चाहता हूँ। आपने अस्पताल की शिलारोपण-विधि की है, वह हिन्दुत्व को पृथ्वी पर वापस कायम करने के लिए है। इम्तिहान पास करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करके, गायत्री का पाठ करके आप अस्पृश्यता का सर्वथा नाश कीजिए। और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह इस काम में आपकी मदद करे और मिल-जुलकर रहने की हिन्दू-मुसलमानों को सद्बुद्धि दे।"

वर्धमान (बर्दवान), **२५-५-१९२५**

यहाँ का मानपत्र बड़ा अलंकारपूर्ण था; और सभा तो जैसे मुशायरा बन गयी।

गांधीजी ने जवाब में कहा:

"आप जब मानपत्र पढ़ रहे थे, तब मैं कात रहा था। मैं मानता हूँ कि यह आपको बुरा तो नहीं लगा होगा। उल्टे, कातकर मैंने तो आपको प्रति आदर, विनय प्रकट किया है। जो चीज आजकल मुझे सबसे प्यारी है, वही जब आप मेरे प्रति प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं, तब करता रहूँ तो इसमें अविनय नहीं है, परन्तु विनय है। और साथ-साथ मैं आपको यह भी बता सकता हूँ कि चरखा इस युग का महायज्ञ है। मैं खाना छोड़ूँ तो चरखा छोड़ सकता हूँ। मेरे हृदय ने मुझे यह बताया। खुदा ने मुझे यह भी बताया कि तु खाना छोड़ सकता है, लेकिन चरखा नहीं छोड़ सकता। और मैंने जब खाना छोड़ा था और डॉक्टरों ने भूखे पेट चरखा चलाना असंभव माना था, तब ऐसा करना ईश्वर ने मेरे लिए संभव बनाया था। इसलिए जब आप मानपत्र पढ़ रहे थे, तब चरखा काटकर मैंने आपके प्रति प्रेम प्रकट किया है, यह समझिए। और आपका मानपत्र सुनने में कातने से कोई बाधा नहीं पड़ी थी। यदि चरखा चलाते हुए मैं ईश्वर के साथ एकरूप हो सकता हूँ, गरीबों का खयाल कर सकता हूँ और उनके साथ सम्बन्ध बढ़ाता हूँ, तो इसे चलाते हुए आपके साथ का प्रेम-सम्बन्ध अधिक दृढ़ कर सकता हूँ, इसमें शक नहीं है।

"आपने मलेरिया के उपद्रव की बात की और यह कहा कि आबादी दिन-दिन घटती जा रही है। कारण में आपने बताया कि हमारे देश में रेलवे आयी और मलेरिया बढ़ा। परन्तु रेलवे के आने से मलेरिया बढ़ा है, यह बात नहीं है। सही बात यह है कि रेलवे के रास्ते बनाने में जो दीर्घदृष्टि रखनी चाहिए थी, वह नहीं रखी गयी। गरीबों की क्या स्थिति होगी, यह सोचना चाहिए था, परन्तु इसका विचार नहीं किया गया। इस दीर्घदृष्टि के अभाव में इस प्रकार रेलवे बनायी गयी कि जहाँ से पानी बह जाता था, वहाँ से वह बह नहीं जाता और पानी इकट्ठा हो जाती है। परिणामस्वरूप मच्छर बढ़ते हैं और मलेरिया बढ़ता है।

"परन्तु यह एक ही कारण नहीं है। आरोग्यशास्त्र का ज्ञान भी कारण है और हमारे लोगों की कंगाली भी कारण है। इस कंगाली के कारण जितनी और जैसी खुराक चाहिए, वह नहीं मिलती। पौष्टिक खुराक के बिना जिनका दिल मजबूत न हो, उनका शरीर शीण होता जाता है। और स्थान-परिवर्तन करना भी असंभव है, क्योंकि हमारे पास इसके लिए रुपया नहीं है। जिसको वर्ष में चार मास तक आलस्य में दिन गँवाना पड़ता है,

वह भले ही खाये और जलवायु बदले, परन्तु शास्त्र हमें सिखाता है कि आलस्य मनुष्य को रोगी बनाता है। रेलवे का बेहूदापन से बनना, हमारी कंगाली और हमारा आलस्य—इस त्रिविध ताप को मिटाना चाहिए।

"इन तीनों व्याधियों का इलाज चरखा है। बंगाल में या भारत में सौ में से ८५ मनुष्य किसान हैं; और हमारी भारतीय और अंग्रेजी दोनों अधिकारी बताते हैं कि वर्ष में चार मास तो हमारे बेकार ही जाते हैं। तो हम किसान के हाथ में चरखा दें और चरखे के प्रति पहलेवाली मुहब्बत बढ़ायें तो आमदनी बढ़ेगी। दादाभाई कहते थे कि हमारी औसत आमदनी २६ रुपये वार्षिक है। चरखा चलाने से और कुछ नहीं तो एक रुपया माहवार आमदनी तो बढ़ेगी ही। सतीशबाबू मुझसे कहते हैं कि प्रलय-निवारण क्षेत्रों में बहनों को हर महीने ढाई रुपये मिलते हैं। इनके लिए यह बड़ी चीज है। मैं एक लड़की के साथ खेल रहा था। इनके गहने ले लेने का तो मेरा धंधा हो गया है। उस लड़की ने मुझे छह चूड़ियाँ दीं। अब तो उसका दादा भी उन्हें वापस लेने से इनकार करता है। इस प्रकार आप जैसे तो खेल में चूड़ियाँ दे सकते हैं। परन्तु गरीब क्या ऐसे दे सकता है?

"मैं अपने साथ चरखा ले जा सकता हूँ, परन्तु खेत उठाकर नहीं ले जा सकता। अमरीका में किसान गरीब हो जाय तो उसे और कहीं ले जाते हैं। बीमार पड़े तो आबोहवा बदलते हैं। परन्तु हमारे यहाँ जलवायु-परिवर्तन कैसे करें? चरखा भारत के लिए व्यापक धर्म है। जो मनुष्य भारत में पैदा हुआ है और भारत में ही मरनेवाला है, उसके लिए चरखा चलाना यज्ञ है, धर्म है, फर्ज है। इसलिए कहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति चरखा चलाये। परन्तु मध्यम-वर्ग की स्त्रियाँ उसे न चलायें, तब तक चरखे का सन्देश मैं किसान के पास नहीं ले जा सकता।

"आज किसानों के साथ का हमारा सम्बन्ध टूट गया है। प्रत्येक गाँव में बैठकर इन लोगों से कतवायेंगे तो वे जहाँ जायँगे, वहीं चरखा ले जा सकेंगे और जहाँ होंगे, वहाँ तीन-चार रुपया कमा लेंगे। हमारे चरखे से जो खादी उत्पन्न होती है, उसे हम न पहनें तो कौन पहने? हमें ही पहनना चाहिए और विदेशी कपड़े का मोह छोड़ना चाहिए।

"हिन्दू मुसलमान-सम्बन्धों की आबोहवा बिगड़ रही है, परन्तु यह जानकर आनन्द होता है कि आपमें झगड़ा नहीं है।

"अस्पृश्यता के उन्मूलन के मामले में विद्यार्थियों ने निराशा प्रकट की और दोषों को स्वीकार किया, इससे मैं खुश हुआ हूँ। विद्यार्थी पर भारत की आजादी का आधार है। मैं चाहता हूँ कि दोष स्वीकार करने के बाद उन्हें मिटाकर वे भारत के सच्चे सेवक बन जायँ।"

पश्चिम बंगाल के हुगली और बर्दवानवाले भाग में कताई या खादी बहुत नहीं है। मुहम्मद यासीन साहब जैसे कोई-कोई कातनेवाले मिल जायँ, यह दूसरी बात है। वे पचासेक वर्ष की उम्र के हैं, अमीर हैं, स्वराज्यवादी हैं, परन्तु कातने में एक ही हैं। ५०० गज से ऊपर की गति से उन्हें सुन्दर कातते देखकर आश्चर्य हुआ। गांधीजी ने विनोद में कहा: "आप यों कातते ही रहेंगे तो मुझे विधानसभा में जाने को उम्मीदवार होना पड़ेगा।"

हुगली में हालैण्डवालों के समय की कोठियाँ और मकान अभी तक मौजूद हैं। वहाँ आरामबाग का काम करनेवाले हमें मिले। अपने सादा दो आने कीमतवाले धनुष और अपनी बनायी हुई खादी लेकर आये थे और गांधीजी के पास अनेक शंकाओं का समाधान करना था, इसलिए एक रात हुगली में बिताने की उन्होंने माँग की थी। आरामबाग का स्थान हुगली से २२ मील और कलकत्ते से ४५ मील दूर है। रेलवे स्टेशन से २२ मील पैदल जंगल में जाते हैं, नाव के रास्ते जाते हैं और बहुत समय बर्बाद करते हैं, तो पाँच-छह मील पैदल चलकर पहुँचा जा सकता है। वे भाई २२ मील चलकर यह सारा सरंजाम लेकर आये थे। उस भाग में भी प्रलय था और प्रलय के बाद संकट-निवारण के लिए ये भाई वहाँ पहुँच गये थे। उन्होंने ४५ जनों को कातनेवाले सदस्य बनाया है और सूत खरीदकर भेजनेवाले ३० सदस्य बनाये हैं। जिस प्रदेश में ये काम कर रहे हैं, वह मलेरिया का घर है। दूसरी बीमारियाँ भी हैं। मगर यह वर्णन तो मैं आरामबाग देखे बिना कर रहा हूँ। कैसे कठिन संयोगों में ये लोग खादी-प्रचार कर रहे हैं, यह तो उस स्थान के दर्शन करने पर ही पता चलेगा।

इस सारे सफर में रात के समय भी लोगों ने इस बार अत्यंत दया की। बड़ी विराट् सभाओं में भी शांति का पार नहीं था। कुमिल्ला छोटी-सी जगह है, परन्तु वहाँ १०-१५ हजार मनुष्य इकट्ठे हुए थे, ढाका में २० हजार से कम आदमी नहीं होंगे, फिर भी दोनों जगह अद्भुत शांति थी और कहीं भी लोग भीड़ नहीं होने देते थे। स्त्रियों की इतनी शांत सभा तो दूसरे किसी स्थान में देखी ही नहीं। इन सब बातों के लिए जैसे दौरे के प्रबंधक सतीशबाबू बधाई के पात्र हैं, वैसे ही लोग भी हैं। यह सब बढ़िया तालीम के सूचक हैं और भविष्य के लिए बहुत आशाजनक है। यह जरूर कहा जायगा कि मानपत्रों का ढेर देने में अतिशयता थी, और इन सबके लिए की गयी छपाई का अधिक सदुपयोग हो सकता था। परन्तु मानपत्रों के करंडक सादे, सुन्दर और कलापूर्ण थे। अधिकांश सुन्दर देशी कारीगरीवाले बाँस के भोगले थे। मानपत्रों के बारे में भी कहा जा सकता है कि बहुतों में गांधीजी की माँगी हुई हकीकतें थीं, एक-दो मानपत्र तो विशेषण-रहित केवल सत्कार-सूचक और ब्योरों से भरे थे, अधिकांश बंगला में, तीन-चार हिन्दी में और चार संस्कृत में थे।

कांग्रेस का काम कितना हुआ है, इसका ब्योरा अधिकांश मानपत्रों में आ जाता था। केवल एक ढाका का मानपत्र ब्योरे के बिना था, यद्यपि वहाँ के एक कार्यकर्ता ने तो ५००० सदस्य बनाने का गांधीजी को बेलगाँव में वचन दिया था। सदस्यों के आँकड़े बहुत आशाजनक नहीं हैं। केवल दिनाजपुर और पबना जिलों के सिवा सभी जगह कातनेवाले सदस्यों की संख्या न कातनेवाले सदस्यों से अत्यन्त कम है। यह कहा जा सकता है कि जितना काम हुआ है, वह संतोष होने लायक है, परंतु आगे होनेवाले काम की बड़ी आशा दिलानेवाले दृश्य स्थान-स्थान पर देखे, इसलिए गांधीजी बंगाल के दौरे से प्रसन्न होकर लौटे हैं। ऊपर तालीम की बात तो मैंने बता दी। इसके सिवा कहीं भी विरोध का वातावरण नहीं दीखता, यह बात उल्लेखनीय है। फरीदपुर में सारा कताई-प्रदर्शन संगठित करनेवाले बाबू सुरेशचंद्र विश्वास स्वराज्यवादी और विधानसभा के सदस्य थे। कुमिल्ला में सुंदर कताई-समारोह और प्रदर्शन आयोजित करनेवाले स्वराज्यवादी बाबू मजुमदार और उनकी पत्नी थे। दिनाजपुर में अपूर्व कताई-समारोह करने वाले स्वराज्यवादी और विधानसभा के सदस्य बाबू जोगेंद्रचंद्र चक्रवर्ती थे। ऐसा और किसी प्रान्त में देखने में नहीं आना। अन्य आशाप्रद चिह्न जरा ब्योरेवार वर्णन करूँगा।

स्त्रियों के जलसे तो बंगाल के ही। ओझल परदा बंगाल में नहीं भी और है भी। गांधीजी के लिए तो किसीको परदा होगा ही नहीं, यह स्पष्ट है, परंतु इनके संघ में जानेवाले सभी इन जलसों में जा सकते थे। केवल चटगाँव, दिनाजपुर और पबना—इन तीन स्थानों में हम कोई न जा सके। पबना में आम जलसे में हम नहीं जा सके, परंतु गांधीजी से जो सैकड़ों बहनें मिलने आयी थीं, उनको किसीसे परदा नहीं था। इनमें एक मुसलमान बहन थी। मुँह पर बुरका था। गांधीजी ने मिठास से कहा: "मेरे साथ किसी बहन को परदा हो सकता है क्या?" तुरंत ही उस बहन ने बुरका हटा लिया! कुछ भागों में परदा यहाँ तक पहुँचा है कि नहाने के तालाबों पर ठेठ पानी के बीच तक बाँस की चीपों की दीवारों से बंद किये हुए छप्पर देखने में आते हैं! फिर भी ऐसे भागों में भी स्त्रियाँ गांधीजी से मिलने के लिए झुंड की झुंड आती थीं। उनमें से शायद ही कोई खादी के बिना होगी। गुजरात या मद्रास में भी स्त्रियों को इतनी खादी से विभूषित नहीं देखा गया। ढाका और कुमिल्ला में शायद कुछ बहनें ताना मिल का और बाना हाथ का—ऐसे सूत की बनी खादीवाली होंगी, और बहुत-सी बहनें सामने अवसर देखकर ही खादी पहन आयी होंगी। परंतु ऐसे उदाहरण छोड़ दें, तो भी केवल प्रेम और श्रद्धा से पहननेवालियों की मात्रा भी मेरे खयाल से अन्य प्रान्तों से यहाँ बढ़ जायगी। और जिन बहनों ने अपने हाथ के सूत की और

हाथ की बुनाई की खादी गांधीजी को दी, उनकी संख्या तो सहज ही दूसरे प्रान्तों से बढ़ जायगी। प्रत्येक स्थान पर ऐसी बहनें तो बहुत मिल जाती थीं।

खास तौर पर जहाँ स्त्रियों की सभा कड़े परदेवाली थी, वहाँ पुरुषों के कताई-प्रदर्शन रखे गये थे। इनमें सबसे आकर्षक दिनाजपुर, बोगरा और तलोड़ा में थे। अब तक तो अच्छे चरखों का अभाव बहुत जगह होने पर भी कातने की कला का परिचय मिला था। परन्तु इन तीन स्थानों में तो चरखे भी अच्छे और कातने की कला भी पराकाष्ठा को पहुँची हुई देखी गयी।

हुगली से छोटे-से आगबोट में कलकत्ते आये। यह चार घंटे का सफर सारी थकान दूर करके ताजा कर देता है। रास्ते के दोनों ओर ऐसे बड़े-बड़े महल दिखाई देते थे, जिनके आँगन की सीढ़ियाँ ठेठ नदी के पानी तक पहुँची हैं। ये किनके थे, यह पूछने की जरूरत नहीं पड़ी थी, क्योंकि घास के बड़े-बड़े गलिचों में मालिकों ने अपनी-अपनी सन की मिलों के नाम सफेद पत्थर में जड़ दिये थे। पीछे मिलों के भोगले दिखाई देते थे। जिन सन उगानेवाले देहाती किसानों की मेहनत पर ये महल बने हैं, उन बेचारे को तो अन्न और दाँत का वैर है। उन विदेशी व्यापारियों और इन देहाती किसानों का मेल कैसे बैठेगा? यों सहज विचार हुआ और बाद में जिस आगबोट में हम बैठे हुए थे, वह ऐसे एक मिलवाले ने ही अपने प्रेमवश गांधीजी के उपयोग के लिए अपने मित्र को दिया था, इस बात से कुछ आश्वासन प्राप्त किया। गांधीजी के लिए बोट देने में संकोच नहीं होता तो कभी गांधीजी के दो बोल भी सुनेंगे।

शान्तिनिकेतन के विषय में कुछ तो गांधीजी लिख चुके हैं। जब से गांधीजी कलकत्ता आये, तब से 'बड़ो दा'[१] से मिलने जाने को उनका जी चाहता ही करता था। इतने में सुनने में आया कि उनका स्वास्थ्य जैसा चाहिए, वैसा नहीं है। इसलिए गांधीजी ने निश्चय किया। कवि का भी आग्रह था।

---

१. द्विजेन्द्रनाथ टैगोर।

३०-५-१९२५

कल रात को शान्तिनिकेतन आये। कवि के 'उत्तरायण' में गांधीजी का स्वागत किया गया। वहाँ अनेक प्रकार की पतली रजाइयाँ बिछी हुई थीं और सामने गद्दी और तकिये थे। उस पर गांधीजी बैठे और सामने कवि बैठे। उस समय तो मामूली बातचीत हुई।

दूसरे दिन सबेरे ही 'बड़ो दा' के दर्शन किये। अति प्राचीन बड़ो दा जब देखो, तब नित्य नवीन लगते हैं। फूलों का एक हार लेकर वे एक बड़ी कुरसी पर बैठे थे। गांधीजी ने झुककर प्रणाम किया और बड़ो दा ने हार उनके गले में डाला। उस समय उनके आनंद और उल्लास का पार नहीं था। गांधीजी जेल में गये, तब शायद उन्होंने इनसे मिलने की आशा नहीं रखी होगी! फिर भी गांधीजी तो आये ।

"यहाँ आने की बहुत समय से इच्छा थी। परन्तु आज तक आ न सका। आप जब कहेंगे, तब आ जाऊँगा।" गांधीजी बोले।

बड़ो दा का जी इतना भरा हुआ था कि उनके बोल भी अस्पष्ट थे। जैसे-तैसे उन्होंने कहा:

"मेरा जी भरा हुआ है। मुझसे बोला नहीं जाता।"

"परन्तु मैं जानता हूँ, आप क्या कहना चाहते हैं।" गांधीजी ने जवाब दिया।

थोड़ी देर बाद बड़ो दा बोले:

"आपकी विजय के बारे में मुझे शंका नहीं है। मैं जानता हूँ, आपका वज्र जैसा हृदय किसी बात से डिगेगा नहीं। मैं तो इतना कमजोर हूँ..."

"शरीर से, आत्मा से नहीं। अरे, शरीर से भी नहीं।" गांधीजी बोले। बड़ो दा हँसे।

"आज ऐसा लगता है, जैसे मेरा नया जन्म हुआ है।"

"हाँ! मुझे बहुतों ने कहा है कि आप ऐसा बार-बार कहते हैं।"

गांधीजी अब तक कुरसी पर बैठे थे। परन्तु ऐसे बैठना उन्हें अटपटा लगा। इसलिए उठकर बड़ो दा के पैरों में बैठ गये—३५ वर्ष पहले स्वर्गीय दादाभाई के कदमों में बैठे थे। आशीर्वाद की वृष्टि होती रही। आशीर्वाद

देने का बड़ो दा का अधिकार था, परन्तु वे यह मनवाने की कोशिश कर रहे थे कि अधिकार नहीं और इच्छा रोकने पर भी रुकती न थी।

"हिन्दू-मुसलमानों के लिए आप जो कर रहे हैं, वह बड़ी चीज है।" वे बोले।

फिर शूद्रों और ब्राह्मणों के बारे में कुछ बोले, परन्तु वह समझ में नहीं आया।

"परन्तु आप कुरसी पर बैठिए न?" वे बोले।

"मैं ठीक ही बैठा हूँ। औरों की दृष्टि में कुछ भी हूँगा, परन्तु यहाँ तो अपने महान् पद से मुझे नीचे उतरना ही चाहिए और अपना महात्मापन छोड़ना चाहिए।"

फिर 'यंग इंडिया' की बातें हुई।

"आपसे लोग चाहें जैसे सवाल पूछते हैं, तो भी आप उनके भी जवाब देते हैं! एक भाई तो पूछता है: 'आप सन्यासी जैसे हैं। आपसे ऐसा काम कैसे होता है? यह सब अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम है। आप तो सबको उत्तर देते हैं।' " बड़ो दा बोले।

परन्तु मैं तो बेवकूफी से भरे प्रश्नों से भी लाभ उठाता हूँ। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, जिन पर मैं कभी न लिखता, इसलिए लिखने का मुझे मौका मिल जाता है।

"परन्तु हमेशा जवाब देना मुश्किल हो जाता है।"

"मैं इसकी शिकायत नहीं करता। यह काम तो मैंने अपने-आप सिर पर ले लिया है।"

थोड़ी देर में एण्ड्रूज आये और कहने लगे: "गांधीजी शाम को आयेंगे—आपका भोजन-कार्य निपट जाने के बाद।"

"और मेरा भी भोजन-कार्य निपट जाने के बाद। अपने भोजन के समय भी हम एक-से हैं।" गांधीजी बोले।

बड़ो दा के बोलने में थकान स्पष्ट दिखाई दे रही थी। इसलिए उस दिन तो उनसे आज्ञा ली। विदा देते-देते भी बोले:

विपत्संपदिवाभाति मृत्युश्चाप्यमृतायते ।
शून्यता पूर्णतामेति भगवज्जनसङ्गमात् ॥*

गांधीजी के जाने के बाद मैं पास में बैठा। मुझे देखकर बहुत आनंद प्रकट किया।

“आपको हमेशा याद करता हूँ। बंगला जारी रखा है?”

फिर अनिल से कहा:

“मेरे तमाम लेख वगैरह इन्हें दो।”

“मेरी आँखों से अब दिखाई नहीं देता।” थोड़ी देर बाद बोले।

“क्या जरूरत है? नहीं दीखता, यह तो एक लाभ ही समझिए। आप बूते से ज्यादा काम न कीजिए। दीखता होता तो करते।”

“परन्तु मैं सबको देख नहीं सकता। आप पिछली बार आये, तब आपको देख सकता था। आज तो धुँधला-धुँधला लगते हैं। मैं गांधीजी को अच्छी तरह न देख सका।”

“आपको देखने की क्या जरूरत है? अंदर देखते रहिए, इतना काफी है। **तस्मिन् दृष्टे परावरे** क्या कमी हो सकती है?”

“परन्तु यह दर्शन नहीं हुआ। इसीकी लालसा है।” अत्यंत नम्रता से बड़ो दा बोले।

---

* भगवज्जनों के संग से विपत्ति सम्पत्ति बन जाती है, मृत्यु अमृतरूप बनती है, शून्यता पूर्णता को प्राप्त कर लेती है।

इन थोड़े दिनों में तीन वयोवृद्ध सत्पुरुषों के दर्शन हुए—डॉ. रॉय, सर सुरेन्द्र और बड़ो दा। परन्तु तीनों में ही सागर जितने भेद हैं। ‘बूढ़ा होकर भी बालक बन’ यह पद मैंने एक बार डॉ. रॉय को देखकर याद किया था। परन्तु यह असल में तो बड़ो दा पर ही लागू होता है। डॉ. रॉय बूढ़े होने पर भी अभी तक बालक नहीं बने हैं, बूढ़े होने पर भी अभी बालक रहे हैं। इनके तो कंधे पर चढ़कर बैठने का मन होता है। बड़ो दा बूढ़े होकर भी ज्ञान से बालक बने हुए हैं। इनके चरणों में लेटने की इच्छा होती है। सर सुरेन्द्र तो बालक रहे भी नहीं और बने भी नहीं। उनके सामने जरा दूर खड़े रहकर ही प्रणाम किया जा सकता है।

"यह श्लोक बिलकुल सही है।" मैंने कहा। श्लोक के बारे में मेरी राय सुनकर बड़ो दा ने अपना बालस्वरूप प्रकट किया।

" **'भगवज्जनसङ्गमात्'** यह पाठ मेरा बदला हुआ है। मूल तो **'विद्वज्जनसमागमात्'** है।" बड़ो दा बोले और खूब हँसे!

"विद्वज्जन अर्थात् ब्रह्मवित् नहीं?" मैंने कहा।

"हाँ। ब्रह्मवित् ही। परन्तु आजकल विद्वान् का अर्थ कौन समझता है? विद्वान् अर्थात् पोथी-पण्डित। उसे देखकर कोई थोड़े ही मृत्युमय जीवन अमृतमय बनता है?" बोलकर खिलखिला उठे।

शाम को फिर बड़ो दा के सामने मेदिनी जमी। आँखों से दीखता नहीं, इसलिए उनके सामने एक आदमी हो या अनेक हों, इसकी उन्हें क्या परवाह? शाम को बड़ो दा लम्बी बात के लिए तैयार थे। उनकी आवाज भी अधिक स्पष्ट थी। निरवधि प्रेम की निरर्गल धारा बहती थी। उन्हें कौन रोके?

"हमारे शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान की पहली सीढ़ी श्रद्धा है। फिर वीर्य, फिर स्मृति और बाद में बुद्धि और फिर प्रज्ञा। परन्तु श्रद्धा के बिना तो प्रज्ञा की सीढ़ी पर चढ़ा ही नहीं जा सकता। गीताजी में भी श्रद्धावान् को ज्ञान मिलता है, ऐसा कहा है। और प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा—कहकर श्रद्धा की तफसील बता दी है। यह ज्ञान हुआ कि फिर जगत् के साथ निपटा जा सकता है। **'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन्'** आनन्द और ब्रह्म को जानने की दशा में आप हैं, इसलिए आप भय जैसी वस्तु जानते नहीं।"

यह वचन तो वे अनेक बार बोले।

फिर कहने लगे: "मेरी आपमें अचल श्रद्धा है। आपकी एक भी वस्तु के बारे में मुझे शंका नहीं है। ईश्वर-सम्बन्धी श्रद्धा के बाद दूसरे नंबर पर आपके ही बारे में मेरी श्रद्धा है।"

अब गांधीजी घबराये। उन्हें रोकने को जैसे हँसते-हँसते बोले: "बस, यहीं रुक जायँगे? इससे भी ज्यादा होनी चाहिए।"

फिर धारा चली: "यह दिन आयेगा, ऐसी आशा मैंने नहीं रखी थी। देश की दशा देखकर कितने ही वर्षों से मैं लालसा रख रहा था कि कोई कर्णधार नहीं निकलेगा? मुझे भय होता था कि ऐसे कर्णधार को देखे बिना ही मुझे चला जाना पड़ेगा। परन्तु ईश्वर परम कृपालु है। आप आये और आपका समागम भी हुआ। इस काल में

मैं जीवित रहा हूँ, यही मुझे बड़ा सौभाग्य लगता है। आपकी जीत ही है। ज्ञान के आगे समस्त अविद्या का नाश है। अविद्या अर्थात् आज का साम्राज्यवाद, आधुनिक सभी वाद कहिए न! इन सब वादों के बीच में सत्य का बम पड़ते ही सब चूर-चूर हो जायँगे, यह निश्चित मानिए। आपकी कितनी ही आलोचना हो, लोग श्रद्धा न करें, कोलाहल और हत्याकांड हों तो भी आप अटल रहेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। सत्य और अहिंसा उस चमत्कारी पक्षी 'फिनिक्स' की भाँति हजारों बार आग में पड़ने पर भी नित्य नवीन सजीव ही होते रहेंगे। वह पक्षी कभी हारकर बैठनेवाला नहीं है। और आपका किया हुआ क्या कभी वृथा जायगा? बुद्ध भगवान् का किया हुआ वृथा गया क्या? भारत में भले ही बहुत बौद्ध न हों, परन्तु बुद्ध भगवान् के मंत्र तो हमारे जीवन के साथ गुँथे हुए हैं।"

इसके बाद महाराष्ट्र के राजनीतिज्ञों की बात लाये, हिंसावादियों की बात लाये, और खूब जोश से बोलने लगे: "इन लोगों को अंग्रेजों के तरीके से अंग्रेजों को हराना है। अंग्रेजों के ढंग से अंग्रेज कोई हारनेवाले हैं? आपने आकर नये हथियार तैयार किये। सत्य आपका शस्त्र है, उनका नहीं; अहिंसा आपका हथियार है, उनका नहीं; चरखा भी आपका ही शस्त्र है। इन शस्त्रों के आगे इनकी कुछ नहीं चलेगी। आज दिनभर मैं विचार कर रहा था कि शाम को आप आयेंगे, तब आपके सामने क्या कहूँगा? आपका ही लिखा और कहा हुआ आपको सुनाऊँ! शस्त्र के वचन कहने का मेरा क्या अधिकार? वह भी आप ही उद्धृत कर सकते हैं। फिर भी मन रोके नहीं रुकता। मैंने ईश्वर की खूब प्रार्थना की और सोचा कि मैं क्या कहूँ। इसलिए ईश्वर ने जो प्रकाश दिया, वही आपके आगे धर रहा हूँ। आपकी श्रद्धा अटल है, मेरे कहने से उसमें क्या वृद्धि होगी? परन्तु फिर एक बार कहे बिना रहा नहीं जाता कि "**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कदाचन।** "

यह धारा कब तक चलती रहेगी, यह पता नहीं लगता था। गांधीजी घबराये। एण्ड्रूज को इशारा किया। उन्होंने भी कहा कि "अब रोक दें तो ठीक है।"

गांधीजी ने पूछा: "आपको थकान नहीं लगती?"

बड़ो दा कहते हैं: "नहीं... । और बातों से जितनी थकान लगती है, उतनी तो हरगिज नहीं लग रही है।" इस पर सब खिलखिलाकर हँसे। फिर बोले: "मेरे आनंद की आज हद नहीं है, इसलिए इतना बोल रहा हूँ। आपने मेरा अंधकार दूर कर दिया है। आप चले जायेंगे, फिर बाद में क्या होगा? इन दो-तीन दिनों का स्मरण

मुझे संसार-वन के उस विकट पंथ में बल और धैर्य प्रदान करे, जो अभी तय करना वाकी है। यह मैं चाहता हूँ।"

"मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा, जिससे मेरे प्रति आपका विश्वास हिले।"

"मैं भी आपका शरीर कायम रखने की कोशिश करूँगा।"

"हाँ। आप जो प्राप्त करने की लालसा रखते हैं, उसके मिलने तक इसे टिकाये रखिए। और फिर हम दोनों इस दुनिया का साथ-साथ त्याग करेंगे। शान्तिनिकेतन छोड़ते हुए मुझे अपार दुःख हो रहा है।"

बड़ो दा को भी दुःख हो रहा होगा। परंतु जी कड़ा करके वे बोले:

"आपके लिए जगत् शांतिनिकेतनरूप है। यह तो छोटा-सा शान्तिनिकेतन है।"

"समय तो पानी के बुदबुदे की तरह है। हार उसके भाग्य में लिखी ही है।"

३१-५-१९२५

काण्ट और पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियों और ईसाई-धर्मशास्त्रों की बात में उतरे। "हम पॉल के वचन मानें या ईसा के? ईसा के ही वचन हों तो फिर पॉल की टीका पढ़ने की क्या जरूरत? काण्ट तो बुद्धि का भी मन्थन करता था ; शंकराचार्य ने कहा है न कि ईंधन से आग को बुझाने का प्रयत्न करने गया, और आस्तिक बनने के लिए उसे नीति के मूल ढूँढने पड़े। किसलिए यह सारी झंझट? बाइबिल में कहा: 'दाहिने गाल पर तमाचा मारे तो तुम बायाँ सामने कर दो।' क्या इसका शब्दार्थ ईसा ने चाहा होगा? उस समय के यहूदी इतने जड़ थे कि उन्हें इसी तरह समझाया जा सकता था। जब कि हमारे शास्त्रों ने कहा: **'न पापे प्रतिपापः स्यात्'** और इतने में सारी नीति और व्यवहार का सार दे दिया।"

वझे को पत्र लिखा:

"आपका वक्तव्य मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ लिया। वह बड़ा कीमती और ठीक-ठीक तर्कपूर्ण है। परंतु यदि आपको चुनाव करना हो, तो आप कानून से सब कुछ तय करा लेना चाहते हैं, इस प्रकार की गलतफहमी आपके लिए पैदा होने का डर है। मैं स्वयं तो देख सकता हूँ कि आप ऐसा हरगिज न चाहेंगे। कानून में तबदीली करना मुश्किल है। नियम अथवा उपनियम में या रिवाज में फेरबदल करना ज्यादा आसान है। हममें से थोड़े ही न्याय तौलने बैठ सकते हैं। परन्तु एक सारे वर्ग को कानून बनाकर अलिप्त रखने का विचार हमें कैसे पसंद हो सकता है? कानून से जो बंधन लगाने का विचार किया गया है, उससे शायद एक भी एशियावासी को बाधा नहीं होगी। फिर भी हमें तो उसका विरोध करना ही चाहिए। सही उपाय तो यह है कि कोई पाबन्दी कानून से लगवानी नहीं चाहिए और शासन में भेदभाव को तीव्र बनाना नहीं चाहिए—उल्टे, शासन में जो भेदभाव है, उसे मिटा देना चाहिए। इस राजनैतिक तख्ते में जो-जो पक्ष भाग ले रहे हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। सबकी यह राय होते हुए भी कि स्मट्स मुकर सकते हैं, वे हर्टजॉग या बेयर या क्रॉसवेल से अधिक न्यायप्रिय हैं। यह सब आपसे इस हेतु से कह रहा हूँ कि आपको अपनी स्थिति स्पष्ट करने में मदद मिले। फिर भी यदि आपको ही ऐसा लगता हो कि भेदभाव रखना ही हो तो कानून बनाकर रखना चाहिए, तो मुझे कुछ कहना नहीं है। सिर्फ इतनी ही बात है कि हम स्वीकार करते हैं कि हम दोनों के बीच मतभेद है। ऑस्ट्रेलिया जैसे कड़े रवैयेवाले देश में भी स्थिति ऐसी रखी गयी है कि जब वहाँ के राजपुरुष कुछ छूट देना चाहते हों, तब कानून में कुछ फेरबदल किये बिना वे यह छूट दे सकते हैं।"

[इसके बाद जो बातचीत आती है, वह किसके साथ हुई, यह महादेवभाई ने नहीं लिखा। इस बातचीत का मुख्य भाग 'यंग इंडिया' के ता. २-७-१९२५ के अंक में २२९-२३० पन्नों पर उन्होंने दिया है। वहाँ भी यह नहीं बताया कि वह किसके साथ हुई। परन्तु ऐसा लगता है कि वह कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ हुई होगी। सं.]*

---

* नवजीवन के ता. १४-६-१९२५ के अंक के पृष्ठ ३२२ पर महादेवभाई ने लिखा है: "गांधीजी कविवर से मिले। विदेश में बहुत समय बिताकर आये और अगस्त में फिर विलायत जायँगे, इसलिए उन्हें गांधीजी से बहुत बातें समझनी थीं। वर्णाश्रम धर्म की आवश्यकता, असपृश्यता खादी और स्वराज की व्याख्या, इ. के बारे में गांधीजी के साथ उनकी लम्बी बातें हुईं। ये बातें निजी थीं और कोई प्रकाशित करे, ऐसा कविवर ने चाहा नहीं।" यंग इंडिया के ता. ११-६-१९२५ के अंक के पृष्ठ २०२ पर भी इसी आशय की टिप्पणी है।

इस इच्छा को आज चालीस वर्ष हो गये हैं और हुई बातचीत को निजी रखने का कोई कारण अब नहीं है, यह सोचकर उसे यहाँ दिया है। बातचीत अंग्रेजी में हुई थी, यहाँ उसका अनुवाद दिया गया है। टिप्पणी संवाद के रूप में नहीं, परन्तु यहाँ उसे इस रूप में बनाकर दिया गया है।

कविवर: "हम भूतकाल में हुई अपनी भूलों का ही पुनरावर्तन करते हैं। सन् १९०५ से १९०८ तक हमने ताश के महल खड़े किये और वे जैसे बने, वैसे ही गिर पड़े। आज भी हम वही कर रहे हैं।"

गांधीजी: "नहीं। ऐसा नहीं। उस समय स्वदेशी के आन्दोलन के साथ आज के आन्दोलन की तुलना नहीं की जा सकती। आप देखते हैं कि आजा यहाँ बंगाल में कोई धूमधड़ाका नहीं, परन्तु जो काम हो रहा है, वह शान्तिपूर्वक होता है। यहाँ की संस्थाओं का तंत्र बहुत व्यवस्थित है।"

कविवर: "तंत्र अर्थात् क्या?"

गांधीजी: "तंत्र तो आत्मा में है। यदि बीज में जीव न हो तो कुछ उगेगा नहीं। और यदि उसमें जीव होगा तो उगेगा, और उससे बड़ा वृक्ष बनेगा। नेपोलियन के पास कोई तंत्र नहीं था—उसने कोई खड़ा भी नहीं किया था। परन्तु उसे अपने काम में विश्वास था। उसका पतन होने के बाद की बात मैं नहीं करता। आज बंगाल, तमिलनाड और गुजरात में उत्तम संस्थाएँ हैं। यहाँ बंगाल में ही खादी-प्रतिष्ठान और अभय आश्रम जैसी संस्थाएँ हैं। ये सब मर जायँगी?"

कविवर: "ये जियेंगी किस तरह? वहाँ काम करनेवालों को मुश्किल से खाने भर को मिलता है। और अभी तो उसमें कमी करने की बात है। यह कितने समय चलेगा?"

गांधीजी: "कितने समय? हमारे इतिहास में ऐसी संस्थाएँ बनी रहने के बहुत उदाहरण हैं। आप कहेंगे कि इनमें दृढ़ता नहीं है, परन्तु मैं कहता हूँ कि इनमें काफी दृढ़ता है। वे आँखें खुली रखकर इसमें लगे हैं; और वे यों ही अपने काम को छोड़ नहीं देंगे। थोड़े ही दिन पहले मैंने अभय आश्रम देखा। वह बढ़िया स्थान पर बसा हुआ है। वहाँ सुन्दर, साफ छोटे छोटे झोंपड़े हैं। सुन्दर तालाब हैं। और जमीन भी है। वे लोग स्वयं भोजन बनाते हैं, स्वयं सफाई करते हैं और खर्च के लायक ले लेते हैं। सुरेश कोई बच्चे नहीं। जो कुछ घाटा रहता होगा, वह अस्पताल से पूरा कर लेंगे। ये लोग आम तौर पर जो कमाते हैं, उसे ध्यान में लें तो खादी महँगी पड़े, परन्तु वे उतना लेते नहीं हैं, इसलिए खादी बहुत सस्ते भाव से बेच सकते हैं, यह कहा जा सकता है।"

कविवर: "और खादी-प्रतिष्ठान?"

गांधीजी: "इनके हाथ में तो माल नहीं है।"

कविवर: "क्यों? उन्हें ग्राहक नहीं मिलते?"

गांधीजी: "ये लोग मुहैया कर सकें, उससे अधिक माल की माँग उनके पास रखी है। जो आदमी यह काम करते हैं, उन्हें देखिए। सतीशबाबू का किया हुआ काम देखिए। आप कभी प्रलयग्रस्त क्षेत्र में गये हैं? प्रलय-निवारण के काम में से इन लोगों ने स्थायी राहत का काम शुरू कर दिया है। खादी-प्रतिष्ठान काम लिये बिना राहत देने में विश्वास नहीं रखता। ये लोग काम कराकर काम के दाम बाजार-भाव से चुकाते हैं। इसे मैं उत्तम तंत्र कहता हूँ।"

कविवर: "असल बात यह है कि आपके आगमन से खादी की बिक्री में जबरदस्त उछाल आया है।"

गांधीजी: "ऐसा हो तो भी इसमें कोई बुराई नहीं है।"

कविवर: "यह तो फोड़े जैसा है। थोड़े समय में वह अपनी असली हालत में आ जायगा—बैठ जायगा।"

गांधीजी: "तो भी कोई हर्ज नहीं। असली हालत भी संतोषजनक है। इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। संस्थाएँ बहुत विचारपूर्वक काम कर रही हैं। कुछ समय पहले फेनी के बाजार में हाथ-कताई का सूत केवल कुछ मन बिकता था—आज तो वहाँ सैकड़ों मन बिकता है। अपनी रोजी कमाने के लिए आज अनेक

कुटुम्ब चरखा चलाते हैं। कितने ही करघे आज केवल हाथ-कता सूत बुनते हैं। हाट के दिन संस्था के पास रुई माँगनेवाले जो हल्ला करते हैं, वह देखने लायक होता है।"

कविवर : "यह काम करनेवाले इस काम को छोड़ दें या निवृत्त हो जायें तो फिर?"

गांधीजी: "परन्तु ऐसा होना संभव ही नहीं। ये लोग तो अपनी भारी कमाई छोड़कर इसमें लगे हैं। अभय आश्रम की त्रिविध प्रवृत्ति है। उनके पास अस्पताल है। उनके पास डॉक्टरी विद्या जाननेवाले मनुष्य हैं। उनसे इन्हें आय होती है। और सुरेशबाबू तो अब डॉक्टरी विद्यालय स्थापित करना चाहते हैं। इसके सिवा वे एक बढ़िया पाठशाला चलाते हैं। इस प्रकार वे मानते हैं कि विद्यार्थियों पर उनका काबू ठीक-ठीक रहेगा। इसके सिवा प्रवर्तक संघ भी है।"

कविवर: "प्रवर्तक संघ के बारे में क्या स्थिति है?"

गांधीजी: "मुझे उसके काम की जानकारी नहीं है। परन्तु मैं जानता हूँ कि वहाँ २०० लोग काम करते हैं—और वह भी कठिन परिस्थिति में।"

कविवर: "इस प्रकार संस्थाएँ तो तीन ही हैं न?"

गांधीजी: "इससे क्या? खादी-प्रतिष्ठान अप्रतिम है। उसके सदस्य चौबीस घंटे चरखे के काम में बिताते हैं। उसके ३२ सदस्य ६०० गज से अधिक निकालते हैं। इनके मन में कोई शंका नहीं है। इन्हें मदद भी मिलती है। और डॉ. रॉय ने जो रुपया लगाया है, उसका ब्याज होनेवाले काम के रूप में भी बहुत आता है।"

कविवर: "अखिल भारतीय खादी बोर्ड के बारे में क्या स्थिति है?"

गांधीजी: "जमनालाल बजाज एक कामयाब कार्यकर्ता है। शंकरलाल[१] गजब का लगनवाला आदमी है। हार तो वह जानता ही नहीं। सारे देश में घूमता है। इस प्रकार यह बात नहीं कि सारे मामलों का काफी विचार नहीं किया गया। काम की सफलता के लिए जरूरी हो तो सौ वर्ष तक भी इंतजार करने को ये लोग तैयार हैं, और कल सफलता मिलेगी, इस दृष्टि से काम कर रहे हैं। यह तो मैं आपको केवल इने-गिने कार्यकर्ताओं के बारे में ही कह रहा हूँ। आपने १९०५-१९०८ के स्वराज्य-आन्दोलन की बात की। वह एक महान् आन्दोलन था। परन्तु वह एक नयी बात थी, इसलिए उसके बारे में बहुत जानकारी नहीं थी और उसके पीछे

कोई तंत्र नहीं था। वे लोग उस विलायती कपड़े के बहिष्कार की दकियानूसी और निःसत्त्व हो चुकी बात[२] को लेकर बैठे थे। इसके लिए आपने बम्बई और अहमदाबाद की मिलों पर आधार रखा, परन्तु वह एक टूटे हुए बरू पर आधार रखने जैसा सिद्ध हुआ। मगर आज तो इस सबसे काफी सुरक्षित हैं। भारत की तमाम कपड़े की मिलें जलकर खाक हो जायँ, तो भी सारे भारत को आवश्यक कपड़ा दे सकें, इतने कातने और बुननेवाले हैं—ऐसी स्थिति है—यह आज हम बता सकते हैं।"

कविवर: "इस बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। आप तो जानते हैं कि वस्त्र के अभाव में लोगों ने गले में फाँसी लगा ली थी।"

गांधीजी: "आप तो नूह के समय की बात कर रहे हैं। जुलाहों को फुसलाकर उनके मन में यह ठसाया गया था कि जापानी या विदेशी सूत के बिना काम ही नहीं चल सकता। आज मैं ऐसी व्यवस्था कर रहा हूँ कि होशियार आदमी इस प्रश्न को हल करें। यदि ये लोग कहेंगे कि यह काम इनसे नहीं होगा या हो नहीं सकता तो मुझे तो गुस्सा ही आयेगा। यह ऐसी बात है, जैसे गेहूँ के खेत में बैठा हुआ मनुष्य कहे कि मुझे खाना पकाना नहीं आता, इसलिए मैं भूखों मर रहा हूँ। गेहूँ के मालिक की इससे अधिक दुर्दशा मैं सोच नहीं सकता। इसलिए हमारी नीति यह है कि विदेशी संस्था की सहायता के बिना जितना हो सके, उतना करें।"

कविवर: "खादी के भाव नीचे लाये जा सकते हैं क्या?"

गांधीजी: "जरूर। बंगाल के नौजवानों से मुझे रोज आधा घंटा दिलाइए। आप जानते हैं कि खादी की शुरुआत हुई, तब हम एक गज के सात आने लेते थे। उसके बाद भाव घटते गये हैं—बढ़ते नहीं गये। हाथ-कता सूत मिल के सूत जैसा निकले तो सब प्रश्नों का निपटारा हो जाय। खादी-प्रतिष्ठान के बनाये हुए चरखे के विकास का अध्ययन कीजिए।"

कविवर: "अभी जो चरखे चलते हैं, वे खराब तो हरगिज नहीं।"

गांधीजी: "आपने खुद ही कहा है कि आप चरखे के बारे में बहुत नहीं जानते। मैं खादी-प्रतिष्ठान के चरखे के साथ सारे बंगाल के चरखों की तुलना करने को तैयार हूँ।"

कविवर: "यह तो एक व्यापार हो गया है।"

गांधीजी: “खादी-प्रतिष्ठान के चरखे और करघे पर भी घोष और दूसरों को अब भी बहुत ध्यान देना चाहिए। हम सब यह करते ही हैं। सन् १९२१ की अपेक्षा सन् १९२५ का चरखा जरूर बेहतर है। चरखे के सुधार के लिए हमने तो सारे देश से निबन्ध माँगे थे।”

कविवर: “करघे के सुधार में विशेष प्रगति हुई नहीं लगती।”

गांधीजी: “मशीनी करघे के प्रति मेरा विरोध नहीं है। परन्तु मुझे उसमें खास दिलचस्पी नहीं है। हमारे सात लाख गाँवों के लिए सात लाख इंजीनियर हमारे पास हो नहीं सकते। और हो सकें तो सात लाख मिलें क्यों नहीं हो सकतीं?”

कविवर: “मिल खड़ी करना तो एक बड़ा जंजाल है।”

गांधीजी: “अधिक-से-अधिक चार सौ मनुष्यों के लिए हो, वहाँ तक ठीक है। परन्तु इस पद्धति से प्रश्न का अंशतः ही हल हुआ है। मैं मिलों पर आधार नहीं रखना चाहता। मैं तो चाहता हूँ कि मिलें मुझ पर आधार रखें।”

कविवर: “एक राष्ट्रीय मिल लगाइए।”

गांधीजी: “जो मनुष्य सुझाव दे, उसे उसको अमल में लाकर बताना चाहिए। आप मुझे चरखे से विचलित नहीं कर सकते।”

---

१. शंकरलाल घेलाभाई बैंकर ।

२. Shibboleth

[यहाँ से जो संवाद है, वह भी किसके साथ हुआ था, यह हस्तलिखित डायरी में नहीं लिखा गया। परन्तु हाशिये में ‘Benoit’ लिखा था। इस समय फर्नाण्ड बेनोइट नामक एक सज्जन विश्व-भारती में अध्यापक थे। इसलिए और संवाद का भावार्थ देखते हुए ऐसा अनुमान हो सकता है कि आगे का संवाद उनके साथ हुआ होगा। सं.]

प्र.: “पश्चिम का पूरा नहीं तो थोड़ा-बहुत खयाल आपको है?”

गांधीजी: “मैंने अपनी आँखें खुली और होंठ बंद रखकर यूरोप की स्थिति का अध्ययन किया है। दक्षिण अफ्रीका में मैंने बीस वर्ष बिताये हैं। वह देश ब्रिटिश साम्राज्य का रत्न है। अपने यानी यूरोप के वातावरण में नियमित जीवन बितानेवालों को मैंने देखा है। मनुष्य की मनुष्यता का वह मापयंत्र है। परन्तु अपने वातावरण से उखड़कर दक्षिण अफ्रीका में रहा हुआ यूरोपियन इन्सानियत भूल जाता है। वहाँ उसकी संस्कृति स्वार्थ पर निर्मित हुई है। पवित्रता और प्रामाणिकता की उन्हें परवाह नहीं है। प्रामाणिकता तो नाम को भी नहीं। अप्रामाणिक बनना गुण माना जाता है। हाँ, प्रामाणिकता का ढोंग जरूर किया जाता है। छोटी-छोटी बातों में ये लोग जरूर प्रामाणिकता दिखाते हैं। परन्तु नाजुक समय आये, तब यह प्रामाणिकता अदृश्य हो जाती है। वॉलेस की लिखी हुई एक पुस्तक मेरे पढ़ने में आयी थी। उसमें बताया गया था कि प्रगति की बातें कितनी ही की जायँ, परन्तु प्रगति कुछ भी नहीं हुई। दूषण तो अनेक हैं।"

प्र.: "परन्तु ये सब अब मिटते जा रहे हैं, यह तो सही है न?"

गांधीजी: "नहीं। प्रजा का बड़ा भाग तो इसके लिए छटपटाता है। जब भी अहिंसा का मंत्र यूरोप में पहुँचेगा, तब उसकी प्रतिक्रियाएँ मालूम होंगी। मैं आपको एक सादा उदाहरण दूँ। मैंने 'हिन्द स्वराज' पुस्तक लिखी है, यह तो आप जानते होंगे। उसमें जो संवाद दिया गया है, वह सचमुच हुआ है। हाँ, किसी एक मनुष्य के साथ नहीं, परन्तु अनेक मनुष्यों के साथ। मध्यम-वर्ग के अलग-अलग कई आदमियों के साथ हुई चर्चा इसमें है। सरकार ने इस पुस्तक के विरुद्ध आपत्ति की। मैंने उसका उत्तर एक जर्मन मित्र के लिए अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद करके दिया। यह अनुवाद तैयार होते ही तो तार आया कि मूल गुजराती पर ही प्रतिबंध लगाया गया है।"

प्र.: "व्यक्तिगत रूप में मुझे तो लगता है कि यूरोप अहिंसा का संदेश अपना नहीं सकेगा। मामूली आदमी तो प्रतीक अथवा ठोस परिणाम चाहता है।"

गांधीजी: "मुझे लगता है, ये लोग जानने-समझने को तो आतुर हैं, परन्तु उसका अमल करने को तैयार नहीं हैं। ये लोग उल्टा समझें, यह भी डर है। सत्याग्रह हिंसा का ही एक प्रकार है, यही ये लोग समझेंगे। अहिंसा निर्बल का भी हथियार बन सकती है। परन्तु नेता मजबूत होना चाहिए। उसके अप्रतिम बल में विरोधियों के प्रति भी विपुल मात्रा में प्रेम होना चाहिए। कुछ जर्मनों ने इसका प्रयोग करके देखा। परन्तु वे सफल नहीं हुए। ब्रिटेन में स्त्री-मताधिकारवादियों* के सत्याग्रह की बात मैं आपसे कहूँ। मैं उनकी रीति-नीति से सहमत नहीं

था, इसलिए उनकी नेता श्रीमती पॉकहर्स्ट के साथ तो मेरा झगड़ा हुआ था। मैंने कहा: 'आपके नेताओं ने मकान जलाने और डाक के दफ्तर तोड़ने का आदेश दिया है, इसके विरुद्ध मेरी आपत्ति है।' वह तो गुस्से से लाल-पीली हो गयी। मुझसे कहती है: 'जवान, तू इसके बारे में क्या जाने?' उसकी पुत्री भी उसके साथ थी। परन्तु मेरी किसीने नहीं सुनी। इस सबमें केवल एक ही व्यक्ति मेरी बात सुनने को तैयार था—और वह थी मैडम देस्पर्ड**। यूरोप के लोगों ने सारे उपाय आजमाकर देखे हैं, परन्तु वे इसमें निष्फल सिद्ध हुए हैं। उन्होंने खालिस हिंसा को पूरी तरह आजमाकर देखा है और फिर भी कोई अधिक सुखी नहीं हुआ, अधिक नीतिमान् नहीं बना और न अधिक साहसी बना। आर्थिक दृष्टि से भी दुनिया अधिक समृद्ध नहीं बनी। करोड़पति पैदा हुए हैं, परन्तु धन का समान बँटवारा नहीं हुआ। उल्टे, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में गरीबी बढ़ती गयी है। और तो और, डेनमार्क और दूसरे देशों में भी ऐसा ही हुआ है। अलबत्ता, ये छोटे-छोटे मुल्क लड़ाई में नहीं पड़े थे, इसलिए इनके दुःख उतने अधिक तीव्र नहीं हैं।"

---

* Suffragette

* इस आन्दोलन की तोड़फोड़ की रीति-नीति के सिलसिले में मतभेद हो जाने से इस महिला ने अलग संस्था बनायी थी। ये लोग करबन्दी के आन्दोलन के हिमायती थे।

प्र.: "यदि हमें अहिंसक तरीके से स्वराज्य मिलेगा, तो हमारे यहाँ गृह-कलह नहीं होगा। मगर हम हिंसक तरीके से प्राप्त करें, तो हम गृह-कलह नहीं रोक सकेंगे।"

गांधीजी: "यदि स्वराज्य को हम विकास का साधन मानते हों और उसे हम अहिंसक तरीके से प्राप्त करें तो अन्य सारे प्रश्नों का निपटारा अपने-आप हो जायगा। गरीबों में धन समान रूप में बँट जायगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मैं तो सबसे बड़ी सहकारी संस्था स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। चरखे को सफल बनाने से पहले मुझे मुसलमान, अब्राह्मण और ऐसे सबको जीत लेना पड़ेगा। ऐसा होगा, तभी विलायत के प्रधानमंत्री और वहाँ के लोगों को वस्तुस्थिति का सही खयाल होगा। भारत का पूँजीपति तो बेचारा साधारण मनुष्य है। उसमें लड़ाकू वृत्ति ही नहीं है। जमींदार जमीन का मालिक कहलाता है अथवा एक सज्जन मनुष्य कहलाता है। वह इन दो में से एक है या दोनों है। परन्तु लोगों की गर्दन उड़ा देने जितना निर्दय वह नहीं बन सकता। जब खून बहाने की नौबत आयेगी, तब वह काँप जायगा। यूरोप के मजदूर-वर्ग या धनवान्-वर्ग जितना नास्तिक

वह नहीं बन सकेगा। वह तो कहेगा: 'मैंने पुल बनाये हैं; मैंने विमान बनाये हैं। मैंने प्रकृति को जीता है। और मैं ईश्वर का मुकाबला कर सकता हूँ।' परन्तु प्रकृति इस तरह हारने को तैयार नहीं है। पूर्व में तो प्रकृति सर्वोपरि है। वहाँ (पश्चिम में) मानव, प्रकृति के विरुद्ध लड़ाकू वृत्ति का है, जब कि हम प्रकृति के अधीन होने की वृत्तिवाले हैं।"

कवि के साथ भी बातें होती ही रहती थीं। चरखे के बारे में उनका विश्वास मुझे बढ़ा हुआ लगा। खादी के बारे में मुझसे खूब बारीकी से सवाल पूछे। मैंने कहा: "बंगाल में चरखा जड़ जमा चुका है। बंगालियों के लिए तैरना जितना स्वाभाविक है, उतना ही स्वाभाविक कातना है।" सानंदाश्चर्य कहने लगे: "मुझसे गांधीजी ने भी यही बात कही। बंगालियों में मंगोल रूधिर है। इसलिए कला उनके लिए सहजसिद्ध है।" स्वास्थ्य खराब होने पर भी स्वयं शांति-निकेतन के बालकों को दो घंटे पढ़ाते हैं। बंगला के वर्ग में मैं जाकर बैठा। उस दिन मैं बैठा था इसलिए या और किसी कारण जो काव्य पढ़ा गया, उसमें मानो बड़ो दा की भविष्यवाणी झंकृत हो रही थी। बड़ो दा ने अमर पक्षी 'फिनिक्स' के साथ गांधीजी के संदेश की तुलना की थी। कवि ने काव्य में आत्मरूपी पक्षी को किसी भी विघ्न की परवाह किये बिना सागर के पार जाने का आग्रही कल्पित किया है:

जदिओ संध्या आसिछे, मन्द मन्थरे,
सब संगीत गेछे इंगिते थामिया,
जदिओ संगीत नहि अनंत अंबरे,
जदिओ क्लान्ति आसिछे अंगे नामिया।
महा आशंका जपिछे मौन मंतरे,
दिकदिगन्त अवगुंठने ढाका,
तबु विहंग, ओरे विहंग मोर,
एखनि, अंध, बंध करो ना पाखा··· १
ए नहे मुखर वन-मर्मरगुंजित,
ए जे अजगर-गरजे सागर फुलि छे;
ए नहे कुंज कुन्द-कुसुमरंजित,
फेन हिल्लोल कलकल्लोल दुलि छे,
कोथा रे से तीर फुलपल्लव-पुंजित,

कोथा रे से नीड़, कोथा आश्रम शाखा,
तबु विहंग, ओरे विहंग मोर,
एखनि, अंध, बंध कोरो ना पाखा… २
ऊर्ध्व आकाशे तारागुलि मेलि श्रंगुलि
इंगित करी तोमा पाने आच्छे चाहिए;
निम्ने गभीर अधीरर मरण उछ्छलि
शत तरंगे तोमा पाने उठे घाईया;
बहु दूर तीरे कारा डाके बाँधि अंजलि
एसो एसो सूरे करुण मिनति माखा;
आरे विहंग, आरे विहंग मोर,
एखनि अंघ, बंध कोरो ना पाखा… ३

सारे का अनुवाद तो नहीं दूँगा। भयानक दृश्य है। देश-देश में अंधकार छाया हुआ है, भय और निराशा जहाँ-तहाँ दिखाई दे रही है; वन की मधुर मर्मर-ध्वनि नहीं, परन्तु सागर अजगर की तरह गरज रहा है; न मकान है, न कोई वृक्ष की डाली; मृत्यु अधीर होकर गगनव्यापी लहरों में तुम्हें निगल जाने के लिए उछालें मार रहा है; फिर भी "हे मेरे पक्षी, तू निभय रहकर अंध अश्रद्धा के वशीभूत न होते हुए उस पार पहुँचने का निश्चय रखकर कभी पंख बन्द मत करना।" काव्य की चर्चा करते हुए कवि ने कहा: "इसलिए कोई चिन्ता न करना" वाले काव्य का भाव दूसरी तरह रखा है। इस प्रकार कवि का यह संदेश और बड़ो दा का आशीर्षाद लेकर गांधीजी ने शांतिनिकेतन से बिदा ली।

शांतिनिकेतन के और विश्वभारती के शिक्षकों से और छुट्टियाँ होने पर भी जितने बालक रह गये थे, उनसे गांधीजी ने खूब बातें कीं।

"न मैं तुमसे कविता छोड़ने को कहता हूँ, न संगीत या साहित्य छोड़ने को—कुछ भी छोड़ने को नहीं कहता। मैं इतना ही चाहता हूँ कि तुम अपने इन सारे व्यवसायों के अलावा आधा घंटा कातना और जोड़ लो। इतना आधा घंटा भी न मिल सकेगा, ऐसी दलील तो मेरे सामने किसीने नहीं की। चरखा हमारी प्रान्तीयता को मारनेवाला है। आज तो उत्तर भारतीय बंगाल में जाकर अपने को हिन्दुस्तानी कहता है, बंगाली दूसरे प्रांत में जाकर अपने को विदेशी मानता है, दक्षिण के लोग उत्तर जाकर विदेशी बनते हैं। चरखा ही एकमात्र ऐसा

साधन है, जिससे सब एक देश के पुत्र-पुत्री होने का अनुभव करते हैं। हमने अब तक कुछ करके नहीं दिखाया—कुछ-न-कुछ वस्तु तो करके बतायें। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एक ऐसी चीज है, जिसके बारे में सब समान प्रयत्न कर सकते हैं, और सब समान भाग ले सकते हैं। अस्पृश्यता तो हिन्दुओं को ही पीड़ित कर रही है, हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े समय पाकर मिट जायेंगे, परन्तु खादी के बिना सारा देश दरिद्रता में सड़ता रहेगा। मध्य अफ्रीका में निद्रा-रोग है—लोग महीनों तक नशे में पड़े रहते हैं और मर जाते हैं। हमारे देश की इस निद्रामयी बीमारी का चरखे के सिवा कोई निवारण नहीं कर सकता।" इ. इ.

बहुतों के मन पर इन बातों का खूब असर हुआ, यह मैंने सुना और बहुत-से चरखे मँगवाकर नियमित कातेंगे, ऐसी बातें चल रही हैं। इस प्रकार शांतिनिकेतन आने का यह दूसरा परिणाम भी बढ़िया रहा, ऐसा कहा जायेगा।

परिशिष्ट: १*

कन्याकुमारी के दर्शन

कश्मीर से कन्याकुमारी और कराची से आसाम, ऐसी भारत की सीमा है। वहाँ भारत की चारों दिशाएँ पूरी होती हैं। सिर पर हिन्दुकुशरूपी शिखर भारत-माता को सुशोभित और सुरक्षित रखता है। नीचे अरब सागर और बंगाल की खाड़ी का शुद्ध जल भारतमाता का पाद-प्रक्षालन करता है। कन्याकुमारी अर्थात् शंकर जैसे अवधूत, परन्तु साक्षात् देवरूप के साथ विवाह के लिए तपस्या करती हुई पार्वती। यह भारत का अन्तिम सिरा है, इसलिए तीन ओर हम समुद्र ही देखते हैं। दो पानी यहाँ मिलते हैं, इसलिए दो रंगों का भी कुछ-कुछ आभास होता है। हमारा मुँह ठीक दक्षिण की ओर होने से एक ही जगह से हम दायें, बायें तरफ से सूर्य को उगता और डूबता देख सकते हैं। वह दृश्य देखने जितना समय तो हमारे पास नहीं था, परन्तु प्रातः की बेला में तारों को निस्तेज करके बंगाल के 'महोदधि' में स्नान करके उगते हुए और सायंकाल के सुवर्णमय आकाश से उतरकर पश्चिम के 'रत्नाकर' में शयन करने के लिए अदृश्य होते हुए सूर्य की कल्पना कर सकते हैं। वहाँ रहनेवाले दरबारी अतिथिगृह के रक्षक ने तो अन्त में सूर्यास्त का भव्य दृश्य देखने के लिए ठहरने को हमें बहुत ललचाया, परन्तु घोड़े पर—नहीं, मोटर पर—सवार होकर आये हुए हम वह रस लूटने कहाँ ठहर सकते थे? मैंने तो भारत-माता के पाद-प्रक्षालन से पवित्र समुद्र की लहरों में अपने पैरों को पवित्र करके ही सन्तोष मान लिया।

ऋषि की क्या रचना! पुराण का क्या रस! यहाँ भारत की सीमा पर, जहाँ हमारी दुनिया का सिरा है, वहाँ ऋषियों ने कन्याकुमारी के मंदिर की स्थापना की और पुराणियों ने उसमें स्वस्तिक भरकर उसे सजाया। मुझे तो सृष्टि-सौंदर्य का रस लूटने की अभिलाषा नहीं रही—यद्यपि वहाँ तो रस के कलश ही लुटते हैं। मुझे तो वहाँ धर्म के रहस्य का अमृतपान मिला। अभी तो मैं वहाँ के सुन्दर घाट पर अपने पैर समुद्र में भिगो रहा था कि मेरे साथियों में से किसीने मुझसे कहा: "उस पहाड़ी पर जाकर विवेकानंद समाधिस्थ होते थे।" यह बात सच हो या न हो, परन्तु बिलकुल संभव थी। अच्छा तैरनेवाला वहाँ तक तैरकर जा सकता है। उस पहाड़ीरूपी टापू पर शांति का तो पार ही नहीं होगा। समुद्र की लहरों का मन्द और मधुर वीणागान तो समाधि का पोषण ही करेगा। इसलिए मेरी धर्म-जिज्ञासा और भी तीव्र हो गयी। सीढ़ियों की ओर ही एक चबूतरा बनाया है। उस पर कोई सौ आदमी आराम से बैठ सकते हैं। मुझे तो वहाँ बैठकर गीताजी का पाठ गाने की उमंग हो आयी। परन्तु अन्त में इस पवित्र इच्छा को भी दबाकर गीता के गानेवाले की मूर्ति को ही अपने हृदय में भरकर मैं शांत रहा।

इस प्रकार पवित्र होकर हम मंदिर में गये। मैं तो अस्पृश्यता-निवारण का हिमायती और अपने को भंगी के रूप में परिचित करानेवाला ठहरा, इसलिए इस बारे में ही जरा शंका थी कि उसमें मेरा प्रवेश हो सकेगा या नहीं। मैंने मंदिर के अधिकारी से कह दिया कि उसकी दृष्टि से जहाँ जाने का मुझे अधिकार न हो वहाँ मुझे न ले जाय; मैं उस प्रतिबंध का आदर करूँगा। उसने कहा: "माता के दर्शन तो साढ़े पाँच बजे के बाद ही होंगे और आये तो चार बजे आ गये। परन्तु आपको और सब कुछ बताऊँगा। आपके लिए प्रतिबंध तो ठेठ जहाँ देवी विराजती है, वहाँ जाने के मामले में तो है, परन्तु वह तो विलायत जाकर आनेवाले प्रत्येक के लिए है।" मैंने कहा: "तो यह प्रतिबंध मैं खुशी से पालन करूँगा।" इतनी बात के बाद वह अधिकारी मुझे अंदर ले गया और मुझे अन्दर की तरफ होनेवाली प्रदक्षिणा करायी।

मुझे मूर्तिपूजक हिंदू के अज्ञान पर दया नहीं आयी, परन्तु उसके ज्ञान का विशेष भान हुआ। मूर्ति-पूजा का मार्ग बताकर एक ईश्वर के अनेक नहीं बनाये, परन्तु मनुष्य एक ईश्वर को उसके अनेकानेक रूप में पूज सकता है, यह चीज ढूँढकर जगत् को बतायी। भले ही ईसाई या मुसलमान अपने को मूर्तिपूजक न माने, परन्तु अपनी कल्पना को पूजनेवाला भी मूर्तिपूजक ही है। मस्जिद या गिरजा-घर भी एक प्रकार की मूर्ति-पूजा ही है। वहाँ जाकर मैं अधिक पवित्र होऊँ, इस कल्पना में मूर्ति-पूजा है और इसमें कोई दोष नहीं है। कुरान में ही अथवा बाइबिल में ही ईश्वर का साक्षात्कार है, ऐसी कल्पना भी मूर्ति-पूजा है और वह निर्दोष है। हिंदू इससे आगे बढ़कर कहता है कि जिसे जो रूप पसंद हो, वह उस रूप में ईश्वर को पूजे। पत्थर या सोने-चांदी की मूर्ति बनाकर उसमें ईश्वर का आरोपण करके उसका ध्यान धरकर जो मनुष्य चित्त-शुद्धि करेगा, उसे भी मोक्ष का पूरा अधिकार है। यह सब मुझे प्रदक्षिणा करते समय अधिक स्पष्ट हुआ।

परन्तु वहाँ भी मेरे सुख में दुःख तो था ही। मुझे तो प्रदक्षिणा करने दी गयी। ठेठ तक मुझे नहीं जाने दिया गया, यह तो मेरे विलायत हो आने के कारण हुआ। परन्तु अछूतों का प्रतिबंध तो उनके जन्म के कारण है। यह कैसे सहा जाय? क्या कन्याकुमारी भ्रष्ट हो जायगी? क्या पुरातन काल से ऐसा ही होता रहा होगा? यह हरगिज नहीं हो सकता, ऐसा अन्तरनाद सुनाई दिया। और यदि होता रहा हो, तो पुरातन होने पर भी यह पाप ही है। पाप स्वयं पुरातन हो जाने से ही पाप न रहकर पुण्य नहीं बन जाता। इसलिए यह कलंक मिटाने के लिए महायज्ञ करना प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है, मेरा यह विचार अधिक दृढ़ हुआ।

नवजीवन, ता. २९-३-१९२५ **मोहनदास करमचंद गांधी**

परिशिष्ट: २

अंत्यज साधु नंद

(नंद की कथा दक्षिण के साहित्य में से भाई महादेव ने निकाली है। मैं चाहता हूँ कि उसे सब रुचिपूर्वक पढ़ें। कोई यह न समझे कि नंद की कथा कोई गढ़ी हुई कथा है। इसमें अतिशयोक्ति भले ही आ गयी हो; परन्तु नंद नाम का साधुचरित अंत्यज छह सौ वर्ष पहले हो गया, उसने अपने चरित्रबल से मन्दिर में जाने का अधिकार प्राप्त किया और वह आज भी हिन्दुओं में अवतारी पुरुष के रूप में पूजा जाता है, इस बारे में तो शंका की ही नहीं जा सकती। नंद की पवित्र कथा हमें सिखाती है कि जन्म कर्म का फल है; फिर भी पुरुषार्थ जैसी चीज विधाता ने हमारे लिए रखी ही है और नंद जैसा अंत्यज चरित्रबल से इसी जन्म में पवित्र हुआ और पवित्र माना गया; ब्राह्मणों ने उसे प्रेम से स्वीकार किया। यदि नंद इस जन्म में ही पावन हो सका, तो यह मानना पड़ेगा कि यह शक्ति सभी में हो सकती है। इसलिए हर किसी अंत्यज को हमारे मन्दिरों में पूजा के लिए प्रवेश करने का अधिकार होना चाहिए।

मैं आशा रखता हूँ कि कोई ऐसी दलील नहीं देगा कि नंद ने तो अग्नि-प्रवेश किया और ऐसा करके भले ही सारे अंत्यज मन्दिरों में जायँ। अग्नि-प्रवेश की बात काव्य है। अथवा सही समझें तो वह नंद की इच्छा से हुई थी। ब्राह्मणों का बड़ा समुदाय तो नंद को केवल स्नान कराकर मन्दिर में दर्शन करने देने को तैयार था। कथा में से हमें इतना ही सार ग्रहण करना है कि अंत्यज इस जन्म में ही अपने पुरुषार्थ से पवित्र हो सकता है। अर्थात् जिस शर्त पर दूसरे हिन्दू मन्दिर में जा सकते हैं, उसी शर्त पर अंत्यजों को भी मन्दिरों में जाने की छूट होनी चाहिए।

यह तो उच्च कहलानेवाले हिन्दुओं के लिए हुआ।

अंत्यजों के लिए तो नंद की कथा प्रोत्साहन देनेवाली है; उन्हें पावन करनेवाली है। मैं चाहता हूँ कि वह प्रत्येक अंत्यज के घर पढ़ी जाय। परन्तु वे पढ़कर ही सन्तोष न मानें। नंद ने जो किया, वह प्रत्येक अंत्यज करे। नंद की पवित्रता हरएक अंत्यज में आये। उसका धीरज, उसकी क्षमा, उसका सत्य और दृढ़ता भी आये। नंद सत्याग्रह की मूर्ति था। नंद ने नास्तिकों को आस्तिक बनाया। प्रत्येक अंत्यज नंद का आख्यान पढ़कर अपने दोषों का नाश करने के लिए उत्सुक और समर्थ हो।

मो. क. गांधी)

१

चार वर्ष पहले जब दक्षिण का प्रवास किया था, तब अंत्यज साधु नंद की बात किसीके मुँह से सुनने में नहीं आयी थी। परन्तु इस वर्ष का प्रवास अस्पृश्यता-निवारण के हेतु से ही था, इसलिए स्थान-स्थान पर नंद साधु की बातें सुनीं—पहले तो श्री राजगोपालाचारी के मुँह से और बाद में दूसरों के मुँह से। उसके बाद अधिक जानकारी प्राप्त की और उस साधु के पवित्र जीवन की संक्षिप्त कथा 'नवजीवन' में देने का विचार किया। उसके अनुसार यह कथा दे रहा हूँ। स्थान-स्थान पर प्रचलित कथाओं का दोहन करके श्री माधविया ने एक पुस्तक लिखी है, उमीके आधार पर यह वृत्तान्त दे रहा हूँ।

नंद के जन्म का समय तो निश्चित नहीं कह सकता। छह सौ वर्ष पूर्व तंजोर जिले में आधनूर गाँव में अंत्यज माता-पिता के घर उसका जन्म हुआ, ऐसा कहा जाता है। 'अंत्यज' कहने के बजाय उसकी जाति जिस नाम से पहचानी जाती है वह कहूँ, तो उसके माता-पिता 'पराया' जाति के थे। 'पराई' का अर्थ है ढोल और 'पराया' का मतलब है ढोल बजानेवाले। अछूतों की निम्नतम जातियों में से यह एक मानी जाती है।

इनके बाड़ों की, घर की और जीवन की कहानी किसलिए कही जाय? जैसा भंगी और चमार का जीवन, वैसा इनका जीवन। जितना मैल, जितनी गंदगी आम तौर पर यहाँ देखने में आती है, उतनी ही वहाँ भी। भंगी और चमार जैसे मुर्दार मांस खाते हैं, वैसे ही पराया भी खाते हैं और शराब पीकर अपने दुःखी जीवन के दुःख भूलते हैं। पराया तो गोमांस भी खाते हैं। इसलिए वे और भी हीन माने जाते हैं।

नंद पढ़ा-लिखा तो होता ही कहाँ से? दूसरे लड़कों की तरह वह भी ढोर चराने जाता, परन्तु एक-दो बातें उसमें असाधारण थीं। बचपन में देवी-देवताओं की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजने का उसे शौक था, और उसके सगे-संबंधी जब अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बकरे या मुर्गे मारते, तब उनके दयाजनक चीत्कारों से नंद का हृदय विदीर्ण होता और उसकी आँखों से आँसू बरसते, परन्तु पशु को कटते हुए उससे नहीं देखा जाता।

नंद ने एक छोटा-सा बकरी का बच्चा पाला था। जहाँ नंद जाता, वही वह जाता और नंद उसे घास-पात खिलाता, पानी पिलाता और खेलता। एक बार नंद को बासी गोमांस खाने को मिला, तो उसे बहुत बुखार आया। जितने दिन नंद बिस्तर में रहा, उतने दिन वह बच्चा उसके पास बैठकर बे-बे करता रहा। अन्त में नंद अच्छा हो गया। उसकी माँ ने गाँव की कटेरी नाम की देवी की मानता मानी थी कि नंद अच्छा हो जायगा, तो

माता को बकरा चढ़ायेगी। जिस दिन वह मानता मानी गयी, उसी दिन से नंद अच्छा होने लगा। इसलिए मानता के बारे में उसकी माँ की श्रद्धा बढ़ी। नंद अच्छा हो गया, तो बकरा चढ़ाने का सवाल पैदा हुआ। बकरा खरीदने को घर से पैसे मिल नहीं सकते थे, और नंद के बकरे को काता कैसे जाय? परंतु मानता पूरी न की जाय और माता को रोष हो जाय तो? इसलिए नंद के सबेरे उठने से पहले उसके माँ-बाप बकरे को कटेरी माता के सामने ले जाकर चढ़ा आये। यह नंद के जीवन में पहला भयंकर आघात था। दिनों तक नंद अपने प्यारे बकरे के लिए रोया करता। एक दिन उसने अपना शोक हलका करने के लिए अपनी माँ से कुछ खुलासा चाहा। नंद के माँ-बाप एक ब्राह्मण के खेत में मजदूरी के लिए जाते थे। नंद ने पूछा:

"माँ, हमारे ब्राह्मण मालिक का लड़का बीमार होता होगा, तब वे लोग क्या करते होंगे? बकरा काटते होंगे?"

"नहीं, नहीं, वे तो इलाज करते हैं या मंदिर में प्रार्थना करते हैं। वे कहीं बकरे काटेंगे? वे अधिक-से-अधिक नारियल तोड़ेंगे।"

"तब हम किसलिए बकरे और मुर्गे मारते हैं?"

"भाई, उनके देवता अलग, हमारे अलग हैं। हमारे देवता तो भयंकर होते हैं। रक्त के बिना वे तृप्त होते ही नहीं।"

"परंतु हम भी ब्राह्मणों की तरह मंदिर में जाकर प्रार्थना करें तो?"

"अरे, जा, जा, पागल! हम उनके मंदिर में जा सकते हैं? हम उनकी भाँति प्रार्थना कर सकते हैं क्या? हम मांस खाते हैं, मुर्दार खाते हैं, शराब पीते हैं, हम उनके मकान के पास तो जा नहीं सकते, फिर मंदिर में तो जा ही कैसे सकते हैं?"

नंद की शंका का समाधान नहीं हुआ, परंतु उसने अपने मन में इतना निश्चय कर लिया कि अब बीमार हो जाय तो माँ-बाप को पता ही न लगने दिया जाय और यदि ब्राह्मणों के देवता की प्रार्थना हो, तो वह की जाय। परंतु "हमारे जीवन इतने भद्दे; हम पापी, ब्राह्मणों के देवता की प्रार्थना किस तरह करें?" इस आशय के उसकी माँ के बोल उसके मन में से निकलते नहीं थे। नंद जब अपने बाप के साथ खेत में जाता, तब जिस कुएँ से उसका मालिक पानी लेता, उससे पानी नहीं लिया जा सकता, मैले तालाब से पानी लेना पड़ता, इसका नंद

को पता नहीं था। सेठ का लड़का भी कैसा साफ और सुकुमार लगता! नंद को याद आया कि मेरे माँ-बाप तो ताड़ी और मदिरा पीकर घर में झगड़े भी करते हैं। मालिक-मालकिन तो इतने साफ दिखाई देते हैं कि कभी झगड़ा नहीं करते होंगे। "हम इतने मैले हैं तो ब्राह्मणों के देवता हमारी प्रार्थना कैसे सुनें?" यही विचार उसके मन में आता रहता। अन्त में उसने निश्चय किया कि शराब और ताड़ी न पिये और मांस न खाये। परन्तु मांस न खाये, तो कभी-कभी भूखा रहना पड़े और दूसरा कुछ खाने को न हो! इसलिए इतना अपवाद रखा कि जब कुछ भी न मिले, तब मांस खा ले। यह संकल्प कर लेने के बाद भी नंद के विचार तो चलते ही रहते: "ब्राह्मण बाहर से इतने साफ और सुन्दर दिखाई देते हैं; क्या उनके लहू और हड्डियाँ भी हमसे भिन्न प्रकार की और भिन्न रंग की होंगी? ये ब्राह्मण कैसे पैदा हुए और हम पराया क्यों जन्मे ? शराब और ताड़ी छोड़ने पर भी क्या देवताओं की प्रीति प्राप्त करने और ब्राह्मणों जैसे बनने के लिए जैसे माँ कहती है, वैसे हजारों जन्म चाहिए? माँ कहती है कि ब्राह्मणों के कर्म कैसे और हमारे कैसे, तो हमसे ऐसे कर्म कैसे किये जायँ?"

एक दिन नंद ढोर चरा रहा था। वहाँ से दूर कुछ ब्राह्मणों के लड़के गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। उनमें से एक नंद के मालिक का बेटा था। एक बार गुल्ली नंद के पास आ गिरी। परन्तु उसे पता था कि वह गुल्ली नहीं उठा सकता था। मालिक का लड़का दौड़ता हुआ आया। उसे इसने गुल्ली बतायी। उसे लेकर दौड़ते हुए लड़का गिर पड़ा और पत्थरों से उसका घुटना छिल गया; और खून निकलने लगा। नंद दौड़कर पास चला गया। उस लड़के से उठा नहीं जा रहा था। परन्तु नंद कैसे सहायता करे? छोटे मालिक ने नौकर के लड़के से कहा: "भाग यहाँ से, कुत्ते। मेरे पास क्यों आया है? मुझे छूना चाहता है क्या?" यह कहकर एक पत्थर नंद पर फेंका। पत्थर नंद की कनपटी में लगा। उससे खून निकलने लगा और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। दूसरे लड़के आकर मालिक के बेटे को तो उठाकर ले गये, परन्तु नंद की मदद कौन करे? थोड़ी देर में वह उठ बैठा और कनपटी को हाथ से दबाकर तालाब पर गया, मुँह धोया और घर चला गया। नंद ने मनुष्य का रक्त पहली बार देखा। ब्राह्मण और पराया दोनों के खून में फर्क तो था ही नहीं, परन्तु पशु के लहू में भी अन्तर नहीं था। और जैसे पशु चीख मारता है, वैसे ही ब्राह्मण के लड़के ने भी मारी थी! तब ब्राह्मण के कर्म और पराया के फर्म में भेद कहाँ? और वह तो प्रेम और दया से मालिक के लड़के के पास दौड़कर गया था, तो भी उसने निर्दय होकर उसे पत्थर मारा, यह क्या? ब्राह्मणों के लड़के इतने निर्दय होते हैं? और ऐसे ब्राह्मणों की प्रार्थना देवता सुने और पराया की न सुने? इस नयी विचारधारा में नंद उलझ गया।

२

नंद अब बड़ा हुआ और जितनी बात वह समझा, उसका प्रचार करने लगा। बीमार पड़ने पर पशु की बलि हरगिज न चढ़ाई जाय, शराब और ताड़ी छोड़ दी जाय, मांस छोड़ा जाय—इतनी बातें वह अपने बराबर की उम्रवालों से कहने लगा। इस अरसे में आधनूर के पराया काली देवी को भैंसे वगैरह का बलिदान करके खूब मांस खाकर आये और भैंसा रोगी होने के कारण बहुतों को बीमारी हुई और वे मर गये। और रोग फैला और बहुत-से मरने लगे। इस झोंके में नंद का बाप भी आ गया। शोक में पड़ने के बजाय नंद सेवासंघ कायम करके प्रत्येक के यहाँ जाकर सेवा करने और लाशों को श्मशान ले जाने की व्यवस्था करने लगा। परन्तु इस सेवा से प्रसन्न होने के बजाय गाँव के बुढ़े उस पर नाराज हुए। वे कहने लगे कि नंद बकरे, मुर्गे नहीं काटने देता, इसलिए देवी इतनी अप्रसन्न हुई है।

परन्तु इतने में ही नंद भी बीमार पड़ गया। बुढ़े खुश हुए और कहने लगे कि देवी को अच्छीतरह बलिदान देकर प्रसन्न कर। उसकी माँ भी उससे कहने लगी कि "तेरे पिता भी तेरे पाप के कारण गये, अब तू भी जायगा। जिद्दी मत बन, मानता मानने दे।" परन्तु नंद का निश्चय अटल था। "बकरा मारकर जीने की अपेक्षा तो मर जाना क्या बुरा है?" वह यों कहता। नंद के साथी भी घबराये। "नंद मर जायगा, तो फिर काम कैसे चलेगा? और कुछ नहीं तो भविष्य में काम करने के लिए भी नंद को जीना चाहिए।" इस प्रकार वे आपस में कहने लगे। नंद ने उन्हें समझाया कि "देवता हमारी परीक्षा ले रहा है। मरते हुए भी निश्चय न छोड़ें, तभी मनुष्य और तभी निश्चय का मूल्य है। तुम सब मेरे लिए प्रार्थना करो कि मैं जिऊँ। तुम सबकी प्रार्थना से मैं बच जाऊँगा, तो तुम साबित कर सकोगे कि बकरे के वध से नहीं, परन्तु तुम्हारी प्रार्थना से मैं जिया।"

उनमें हिम्मत आयी, वे शिव को पुकारने लगे और प्रार्थना करने लगे। दूसरी ओर बुढ़े भी अपनी कारगुजारी कर रहे थे। वे नंद की माँ को समझाने लगे। स्त्री बेचारी भोली-भाली थी। उसने कहा: "घर में रुपया तो है नहीं, परंतु थोड़े-से बरतन हैं, उन्हें लेकर बकरे खरीद लाओ और बलि चढ़ाओ; नहीं तो मेरा लड़का मर जायगा।"

नंद ने एक रात बिछौने में पड़े-पड़े भजन किया। एक क्षण भी नींद लिये बिना किये गये भजन के अन्त में पास के तिरुपुंकर मंदिर के देवता आकर सिर पर हाथ रखते दिखाई दिये। नंद के आनंद का पार नहीं रहा। सबेरे तो वह अच्छा हो गया और दो दिन में चलने-फिरने लगा। उसके साथियों ने 'हर हर महादेव' के हर्षनाद से गाँव गुँजा दिया।

बूढ़ों में से एक ने तो नंद की मौत की मानता की थी, परंतु नंद तो जी उठा। परंतु उसकी माँ ने तो बरतन बेचकर वकरे बलिदान किये ही।

मगर नंद का संघ भी बढ़ने लगा। जो युवक उसे छोड़कर भाग गये थे, उन्हें फिर श्रद्धा हुई और वे फिर शरीक हो गये।

अब नंद का मनोरथ बढ़ा। जिस तिरुपुंकर मंदिर के महादेव ने इस प्रकार दर्शन दिये, क्या वह प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देगा? उसके मंदिर में नहीं जाया जा सकता? पराया भी मंदिरों की थोड़ी सेवा तो करते थे। मंदिर की जमीन में वे मजदूरी करते, मंदिर में अनेक प्रकार के नगाड़े होते हैं, उनके लिए वे मरे हुए ढोरों के चमड़े उतारकर मंदिर में ले जाते, पशुओं की हड्डियों में से गोरोचन नामक सुगंधित पदार्थ भी वे ही ले जाते। नंद ने विचार किया कि तिरुपुंकर के महादेव के लिए ऐसी बहुत-सी सामग्री लेकर एक दिन जाऊँ। पहले तो वह ये सारी चीजें बेचता था, अब उसने देवता को यह भेट चढ़ाने का विचार किया। नंद और उसके साथियों ने एक शनिवार को खूब शरीर मलकर स्नान किया, स्वच्छ हुए, शरीर और कपाल पर भस्म लगायी और भेट लेकर तिरुपुंकर के लिए निकल पड़े। वहाँ जाकर तीन बार मंदिर की प्रदक्षिणा की और पुजारी को पुकारकर बिनती की। दो नौकरों ने आकर दूर से भेट लेने की कृपा की। साँझ पड़ गयी थी। आरती और दर्शनों का समय हो गया था। नंद और उसके साथी ठीक दरवाजे के सामने जाकर खड़े हुए। परंतु तिरुपुंकर महादेव की मूर्ति के सामने बड़ा नंदी था। सब मन्दिरों में सबसे बड़ा नंदी यहाँ था और मूर्ति को ढँक लेता था। दरवाजे के बाहर की किसी भी जगह से इस नंदी के कारण मूर्ति के दर्शन किये नहीं जा सकते थे। नंद के दुःख का पार नहीं रहा। वह तो केवल घंटा बजानेवाले और दर्शन करनेवाले थोड़े से ब्राह्मणों को देख सकता था, परंतु मूर्ति के दर्शन किसी भी तरह नहीं हो सकते थे। उसकी आँखों से अविरल आँसू बह चले, गोरोचन और धूप की सुगंध से आनंदित होने के बजाय उसका सिर चकराने लगा। "मैं पराया, पापी, मैं कहाँ से महादेव के दर्शन पाऊँ? मेरे पाप यह नंदी बनकर मेरी आँखों के सामने खड़े हैं।" वह बोलते-बोलते चिल्लाकर रो पड़ा। रो-रोकर उसे मूर्च्छा आ गयी, वह गिरकर बेहोश हो गया। वह औंधा पड़ा था और दोनों हाथ प्रणाम करने के लिए जोड़े हुए थे। उसके साथी भी सारा दृश्य देख रहे थे, परन्तु किसीने उसे जगाया नहीं। लम्बे समय के बाद नंद जागा, तो सबने कौतुक देखा। नंदी की मूर्ति एक तरफ झुक गयी थी और महादेव के स्पष्ट दर्शन हो रहे थे! नंद को बेहद आनंद और आश्चर्य हुआ। हर्षोन्मत्त होकर वह नाचने लगा, और राम-भक्ति में पागल नंद को देखकर थोड़ी देर नंदी की मूर्ति को हटी हुई

देखना भूलकर सब नंद के ही दर्शन करने लगे! आज भी नंदी की वह मूर्ति तिरुपुंकर में एक तरफ झुकी हुई दिखायी देती है।

३

ईश्वर की ऐसी कृपा का बदला किस प्रकार दिया जाय? तिरुपुंकर के मन्दिर के पास तालाब नहीं था और लोग पानी के बिना दुःखी थे। नंद और उसके साथियों ने तालाब खोदना शुरू कर दिया। यह भव्य तालाब आज भी है और दंतकथा ऐसी प्रचलित है कि महादेव ने गणेश को नंद की सहायता करने भेजा था; नहीं तो इतना बड़ा तालाब कैसे खुदे?

परन्तु गणेश मदद कर गये, यह मानकर हम भले ही संतोष मान लें। नंद तो अपना कार्य करके अपने गाँव गया और वहाँ महादेव का भजन करते हुए अपने मालिक के यहाँ फिर मजदूरी करने लगा। पुराना मालिक तो मर गया था, परन्तु अब मालिक था वही कनपटी पर पत्थर मारकर सदा के लिए निशान बनानेवाला मालिक का लड़का। नये मालिक ने नंदी के हटने की बात नहीं मानी। "कौन देखने गया है? वह मूर्ति तो पहले से हटी हुई होगी। हम तो इतना जानते हैं कि नंद बड़ा मेहनती है। भले वह मजदूरी करता है, हम उसे अन्न देंगे।"— इतनी ही भावना ब्राह्मण मालिक को थी। नंद की स्थिति भी सुधरी। और मजदूरी भी बहुत मिलती और चमड़ा और गोरोचन की भेट तो जारी ही थी। इस अरसे में वैथीश्वरन कोईल (मंदिर) में एक उत्सव था। उसका इसे पता चला। नंद और उसके साथी चल पड़े। इस उत्सव के समय मूर्ति को एक रथ में घुमाया जाता है और परायों को दर्शन करने दिये जाते हैं। नंद ने दर्शन किये और वहाँ एक ब्राह्मण कथा कर रहा था, उसे सुनने वह खड़ा रहा। कथा सुनते हुए ये शब्द नंद के कानों में पड़े। "चिदंबरम् ही सबसे पवित्र स्थान है— काशी और रामेश्वर से भी अधिक पवित्र। वहाँ नटराज की भव्य मूर्ति है। इस नटराज का नृत्य सृष्टि की लीला चल रहा है। नटराज के हाथ में डमरू है और डमरू के नाद में से अनेक लोक उत्पन्न होते हैं।"

"नटराज के हाथ में डमरू! हमारे जैसा पराया ही तो वह भी है—हम भी ढोल बजाते हैं और वह भी बजाता है।" यह कहकर नंद आनन्दमग्न हो गया।

कथा आगे चली। "नटराज का दूसरा हाथ सब भुवनों को ठीक रखता है। बायें हाथ में अग्नि है। इससे वह सृष्टि को जब चाहे तब भस्म कर सकता है, क्योंकि सृष्टि, स्थिति और लय तीनों वस्तुओं का कर्ता वही है। नटराज के दर्शन जो करे, वह चांडाल हो या पराया हो, क्षणभर में भवसागर पार उतर जाता है।"

नंद एक-एक शब्द पी रहा था। उसके सामने नटराज की मूर्ति खड़ी हो रही थी। उसने आकुल-व्याकुल होकर कथाकार से पूछा: "यह चिदंबरम् कहाँ है, यह तो मुझे कहिए।"

"कोलेरुन नदी के उत्तर में। एक दिन का रास्ता है यहाँ से।" उत्तर मिला।

"नटराज चांडाल का भी उद्धार करता है?" पलटकर नंद ने पूछा।

"जरूर। तू कौन है? इधर आ, तुझे सारी बात बताऊँ।"

एक आदमी ने कहा: "यह तो आधनूर का पराया नंद है। इसे छूना मत। शिव का भक्त है; चमड़ा और गोरोचन हमेशा भेजता है।"

नंद पास तो नहीं गया, परन्तु फिर पूछा: "मेरे जैसे पराया को भी नटराज मोक्ष दिलाता है?"

"हाँ, भाई, स्थलपुराण में ऐसा लिखा हुआ है। वह क्या झूठा हो सकता है?"

नंद ने ब्राह्मण को प्रणाम किया और तेजी से उत्तर की ओर चलने लगा।

उसके साथियों ने कहा: "हमें तो पश्चिम में जाना है। उत्तर में कहाँ चले?"

नंद ने कहा: "चिदंबरम् जा रहा हूँ।"

"अरे भाई, परन्तु रास्ता-वस्ता जाने बिना अंधेरे में कहाँ जाओगे?"

"उत्तर में चलता रहूँगा और सबेरा होने पर किसीसे रास्ता पूछ लूँगा।"

"पर भाई यों जाते हैं? हम रात को यहाँ आये थे, क्योंकि अवकाश था। सुबह होने पर काम में लगना पड़ेगा। हम मालिक नहीं हैं, गुलाम हैं; यह क्यों भूलते हो? अपना काम छोड़ें, तो ईश्वर को भी अच्छा न लगे।"

नंद रुका, ईश्वर का नाम इस प्रकार लिया गया कि वह तुरंत खड़ा रह गया और बोला: "हाँ, चलो, गुलाम तो हैं ही। मालिक की अनुमति लेकर चिदंबरम् जाऊँगा।"

४

घर गये बाद नंद को चैन नहीं पड़ा। यह पराया का जन्म; रोज ऊँचे हिन्दुओं के मर्मवचन सहना; मजदूरी करते हुए भी पराया का पराया; और अनेक जन्म में भी मोक्ष न मिले, यह कैसे सहन हो? परन्तु चिदंबरम् जाने

से तो तुरंत मोक्ष मिलता है—यह कैसे छोड़ा जाय? नंद बेचारे को थोड़े ही ज्ञान था कि '**बोली ते नहि बीजो रे, ओळखी लेने अंतरमां**।'* उस पर तो पराया की छाप लगी हुई थी, इसलिए पराया जो न कर सके, वही उसे खटकता रहता था।

---

* हम जिसका नाम लेते हैं, वह कोई दूसरा नहीं है; उसे अन्तर में पहचानना है।

नंद दूसरे दिन बाड़ी में गया, पेड़ों को पानी दिया और छुट्टी लेने मालिक के यहाँ गया। मालिक नहीं था। राह देखते-देखते दिन डूब गया, तो नंद घर आ गया। दूसरे दिन वह फिर छुट्टी लेने गया। मालिक रास्ते में मिला। "क्यों, रोज कहाँ भटकता है? कल दोपहर को कहाँ था? तुझे तो रोज-रोज उत्सव और कीर्तन चाहिए? पड़ोसी ने अपने खेत में पानी दे दिया, यह मालूम है? और तेरे उस साथी ने पगडंडी इतनी पतली कर दी है कि मेरे खेत से उसके खेत की हद बढ़ गयी है।"

नंद ने जाना कि मालिक नाराज हो गया है, इसलिए छुट्टी माँगते डरा। नंद के साथियों को नंद का विश्वास नहीं था। "यों पापी जन्म में उस नटराज के एक दर्शन से मोक्ष मिलता होगा? नंद तो पागल हो गया है पागल।" वे यों कहते। परन्तु नंद को तो सांसारिक मार्ग किसी भी तरह पसंद नहीं था। वह 'आठों पहर उदास' घूमता था। एक दिन सूर्यास्त की सुवर्ण प्रभा देखकर उसे नटराज का उस ब्राह्मण का किया हुआ वर्णन याद आ गया। और हाथ में दरांती लेकर खेत में ज्यों का त्यों निश्चल, निस्तब्ध खड़ा रह गया। साथियों में एक ने आकर बुलाया, परंतु जवाब नदारद। किसीने कहा: "अरे, फलाँ की गाय मर गयी।" जवाब ही नहीं। बहुत देर में नंद को होश आया, तब उसने कहा: "सूर्य के तेज में नटराज नाच रहे थे। तुमने नहीं देखा ?" "नंद पागल हो गया है" यों कहकर सब उसे घर घसीट ले गये। बूढ़े तो खुश हो गये। वे समझे कि नंद के पाप का देवी बदला दे रही है। बहुत-से कहने लगे: "देवी, नंद को बचाओ; देवता, नंद को बचाओ; कटेरी देवी, नंद को अच्छा करो।" परंतु नंद तो कहता ही रहता: "मुझे तो मेरा नटराज बचायेगा।"

गाँव के लोगों ने तो फिर बकरे बलिदान करने का निश्चय किया। नंद सबके पैरों पड़ा, परंतु कोई मानता नहीं था। एक आदमी ने बकरे का खून लाकर उस पर छिड़का। नंद से यह सहन नहीं हुआ, इसलिए वह चिल्लाकर वहाँ से भागा। लोग नंद के मालिक के यहाँ दौड़े। मालिक ने कहा: "उसे यहाँ पकड़ लाओ, मैं सीधा करूँगा।"

५

वे नंद के पीछे पड़ गये। तो नंद को लगा: "इस पार या उस पार। अब तो छुट्टी लेनी ही है और इन लोगों से बचना है।" इसलिए वह सबके साथ मालिक के यहाँ गया और मालिक की पूछताछ का एक ही उत्तर दिया: "मुझे नटराज के दर्शन करने जाना है। मुझे कुछ दिन की छुट्टी दीजिए।"

"तुझे चिदंबरम् जाना है? पराया किसी दिन वहाँ गये सुने हैं? लाओ वह चाबुक, मैं इसे सीधा करूँ।"

नंद ने कहा: "आपको मारना हो तो मार डालिए। जब तक मुझे छुट्टी नहीं देंगे, मुझे चैन नहीं पड़ेगा।"

उसने चाबुक मँगवाया, मगर लगाने की हिम्मत नहीं हुई। "इतने दिन नंद सबसे बढ़िया काम करता था, मजदूरों को यही इकट्ठा करता था, सब इसकी मानते थे और आज इसे क्या हो गया?" इस प्रकार वह औरों से पूछने लगा।

अब एक वृद्ध ब्राह्मण नंद से प्रश्न पूछने लगा।

"नंद, तू ईश्वर को मानता है या नहीं?"

"हाँ, ईश्वर तो मेरा सर्वस्व है।"

"ईश्वर ही कर्ता-हर्ता है, यह भी तुझे पता है न?"

"जरूर।"

"तब तू यह क्यों भूलता है कि उसने तुझे पराया बनाया है? पराया मजदूरी करें और मालिक की नौकरी करें। उन्हें और नटराज के दर्शन कैसे?"

नंद: "मैं सब जानता हूँ। परन्तु ईश्वर ने मुझे पागल कर दिया, इसका क्या? उसे देखने की मुझे लालसा हुई है, इसका क्या? तिरुपुंकर में मैंने उसके दर्शन किये थे। ब्राह्मण का ईश्वर और पराया का (ईश्वर) अलग-अलग होता है, ऐसा शास्त्रों में लिखा हुआ है? मुझे आपके जैसे ही एक ब्राह्मण ने कहा कि चिदंबरम् में नटराज के दर्शन चांडाल को भी होते हैं और चांडाल को मुक्ति मिलती है। यह मैं कैसे भूल सकता हूँ? मेरे मन से यह बात निकलती ही नहीं।"

इस पर बूढ़े ब्राह्मण ने कहा: "हाँ। सारी खराबी उस ब्राह्मण कथाकार की है। जाने दो, दो दिन भटक आने दो। ठिकाने आ जायगा।"

परन्तु छह खेतों की कटाई करनी थी और खेतों में फसल खड़ी थी। नंद का मालिक उससे यह काम लिये बिना काहे को छोड़ता?

उसने नंद से कहा: "पहले इन खेतों में कटाई होनी चाहिए, फिर तू भले ही जा।"

नंद पागल-सा हो गया। "अच्छा, यह तो करके ही जाऊँगा।" यों उत्तर देकर नंद तो तुरंत ही कटाई का सामान लेकर खेत में दौड़ गया। रात को घर आता ही काहे को? सारी रात काम किया और सुबह के समय जाकर मालिक का द्वार खटखटाया! "मालिक, धान काटकर पूले बनाकर रख आया। अब छुट्टी दीजिए।"

"अरे! तूने क्या किया? क्या दूसरे गाँव से मजदूर लाकर छह खेत पूरे किये?" अचंभे से मालिक ने पूछा।

"जी नहीं, मजदूर कहाँ से लाता? सारी रात काम करके तैयार किया।"

"सच कहता है? कभी तू झूठ नहीं बोलता। आज बोलेगा?"

"नटराज ने आकर मदद की हो, तो वह जाने। वैसे मेरे अपने हाथ के सिवा और किसी के हाथ मेरी सहायता करने नहीं आये थे। आप आकर देख जाइए और फिर यकीन हो तो मुझे जाने दीजिए।"

मालिक खलिहान पर गया। धान का सुन्दर ढेर देखकर वह तो दंग रह गया। इसी खलिहान के आगे से मालिक ने छुटपन में नंद की कनपटी पर पत्थर मारा था, यह सब ईश्वर की कृपा से उसे याद आया।

"नंद, नंद!" करता हुआ वह उसकी तरफ दौड़ा। नंद हटकर दूर खड़ा रहा।

"नहीं, नहीं, भाग मत। तू तो सच्चा भक्त है। भगवान् ने तुझ पर मेहर की है। मैंने अंधा होकर तुझ पर जो जुल्म किये हैं, वे मुझे कौन माफ करेगा? नंद, तू ही मुझे क्षमा दे।"

नंद को परेशानी हुई। "ईश्वर ने कृपा की, आप ऐसा मत कहिए—मैं आपका दास हूँ। मैं क्या माफी दूँगा? मुझे नटराज के दर्शनों के लिए जाने दीजिए।"

"जा, भाई, खुशी से जा। दर्शन कर आ; और मेरे लिए भी उससे क्षमा माँग आना।"

६

'नटराज' 'नटराज' पुकारती नंद की सेना चिंदबरम् की ओर कूच करने लगी। वहाँ पहुँचते ही मंदिर का कलश देखकर नंद ने लम्बा होकर साष्टांग प्रणिपात किया। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। गाँव में पहुँचकर नंद और उसके साथी उसकी प्रदक्षिणा कर आये। परन्तु मंदिर में किस तरह जायें? मंदिर के आसपास दीवार और उसके आसपास ब्राह्मणों के मुहल्ले की बनी हुई दूसरी दीवार! नंद ने चमड़ा और गोरोचन भेजा, सो तो दीक्षितों ने ले लिया, परन्तु उसकी दर्शनों की माँग को हँसी में उड़ा दिया। नंद ने स्थलपुराण की बात कह सुनायी। इस पर कुछ चिढ़े, कुछ कहने लगे: "स्थलपुराण में है जरूर; परन्तु क्या उस ब्राह्मण ने यह कहा था कि उसमें यह भी लिखा है कि तेरे जैसा पराया मंदिर में जा सकता है?"

ब्राह्मण ने ऐसा तो नहीं कहा था, इसलिए नंद झूठ कैसे बोलता! वह बेचारा तो खड़ा रहा और उसे वहाँ परेशान छोड़कर दीक्षित रास्ते लगे। रात हुई, सब जगह दिये जले, परन्तु नंद वहीं का वहीं मंदिर के कलश पर ध्यान लगाकर सारी रात खड़ा रहा!

इधर दीक्षितों को—२९९९ दीक्षितों को रात में एक ही स्वप्न आया: "आधनूर का पराया नंद मेरे दर्शनों के लिए आया है। मन, वाणी और काया से उसके जैसा पवित्र कोई नहीं। मेरे लिए उसकी भक्ति असीम है। कल उसकी देह-शुद्धि करके मेरे दर्शनों के लिए लाना।"

सब एक-दूसरे से अपने स्वप्न की बात कहने लगे और चकित हुए। मंदिर में देवसभा में सब इकट्ठे हुए। एक बोला: "यह तो नटराज की आज्ञा है। इसका पालन तुरंत होना चाहिए।" दूसरा बोला: "नटराज ने भी कहा है कि देह-शुद्धि करके लाना।" तीसरे ने कहा: "उसे यज्ञवापी में स्नान कराकर ले जायँ।" फिर कोई बोला: "यज्ञवापी में स्नान करके सामान्य मनुष्य पवित्र होता है। पराया होते होंगे? और पराया कोई ब्राह्मण हो जाता है क्या? नटराज के पास तो सारे ब्राह्मण भी नहीं जा सकते।" इस पर नटराज दीक्षित बोले: "अग्नि के अतिरिक्त कोई भी भूत उसे शुद्ध नहीं कर सकता। पंचमहाभूतों में यही श्रेष्ठ पावक है।"

इस पर दूसरे दीक्षित बोले: "तब क्या इस पराया को पहला भस्मस्नान (? भस्मस्नात) किया जाय और भस्म को नटराज के पास ले जाया जाय?"

"नहीं, नहीं, मेरे शब्दों का इस तरह मजाक न करो। गाय के गोबर को जलाकर भी शुद्धि की जा सकती है। परंतु पराया को इस तरह शुद्ध किया जाता है?"

"अरे भाई, नटराज ने कहा कि इसके जैसा कोई मन, वाणी और काया से शुद्ध नहीं है। हममें से कौन इसके जैसा पवित्र होने का दावा कर सकता है? यह आदमी तो केवल जन्म-चांडाल लगता है, कर्म-चांडाल नहीं। यह तो नटराज का कोई महाभक्त प्रतीत होता है। हम इसके लिए हवन करें और फिर उसे मंदिर में ले जायँ, उसे अग्नि से शुद्ध करने का इतना ही अर्थ है।"

परंतु इससे कट्टर सनातनी ब्राह्मणों को सन्तोष नहीं हुआ। "यदि यह पराया इतना शुद्ध हो, तो आग उसे क्या जलायेगी? उसे अग्नि में डालें और उसे कुछ न हो तो ही शुद्ध कहा जाय!" ऐसी-ऐसी बातें करने लगे।

नंद को इन बातों का पता चला। पता चलते ही वह तो हर्षोन्मत्त होकर नाचने लगा। उसके साथी डर गये और अग्नि में भस्म होने के बजाय घर जाने की सलाह देने लगे। परंतु नंद ने कहलवाया कि "मैं अग्नि में शुद्ध होऊँगा। अग्नि तैयार करो। यज्ञवापी में स्नान करके आता हूँ।" नटराज भस्म कर दे तो भी क्या ? पराया के रूप में गर्हित जीवन जियें, तो क्या और न जियें तो भी क्या?

नंद स्नान कर आया। भस्म लगायी, रुद्राक्ष की माला तो गले में थी ही। गीले वस्त्रों में वह अग्नि-प्रवेश करने के लिए तैयार होकर खड़ा हुआ। दीक्षित दूर खड़े थे। हुताश धधकती हुई जल रही थी। नंद ने तीन बार अग्नि की प्रदक्षिणा की। नटराज का नाम लेकर मंदिर के कलश को प्रणाम करके, "नटराज! नटराज! यदि मैं मनसाः वाचाः कर्मणाः पवित्र हूँ, यदि मैंने किसी भी प्राणी की हिंसा न की हो, यदि तू ही कल्याणकारी ईश्वर है, पराया और ब्राह्मण का तू ही ईश्वर है, तो यह अग्नि की भयंकर ज्वाला मेरे लिए यज्ञावपी के जल की तरह शीतल पावक बन जाय", यह बोलते-बोलते कूद पड़ा।

हजारों मनुष्य स्तब्ध होकर यह देख रहे थे। परंतु नंद ज्यों ही प्रफुल्लित हँसते हुए चेहरे से अग्नि के उस पार निकलकर खड़ा रहा कि 'नटराज की जय, हर हर महादेव!' के घोष से दिशाएँ गूँज उठीं। नंद का बाल भी बाँका नहीं हुआ था और उसका गीला कपड़ा पहले जैसा ही गीला था।

ब्राह्मणों का भी अब गर्व गलित हो गया। नंद को उन्होंने प्रणाम किया और "पधारिए नटराज के दर्शनों के लिए; वे आपकी प्रतीक्षा में बैठे हैं" कहकर उसे मन्दिर में ले गये।

नटराज दीक्षित बोले: "जन्म क्या? और जाति क्या? सत्य और अहिंसा की ही ईश्वर को कद्र है।"

नंद नटराज के पास गया तो मन्दिर के घंटे और नौबत बज उठीं, शंख फूँके गये, आरती उतारी गयी। परंतु नंद को इनकी किसीकी लालच नहीं थी। वह तो नटराज के अखंड दर्शनों से अपनी आँख और देह को भरता हुआ निस्तब्ध, निश्चेष्ट खड़ा रहा।

तमिल प्रान्त के ६२ शैव देवता थे; उनमें उस दिन से ६३वीं मूर्ति नंद की जोड़ी गयी। अधिकांश शिव-मन्दिरों में उसकी मूर्ति है और अन्य मूर्तियों की तरह ईश्वर के समान पूजी जाती है।

नवजीवन, ता. १०-५-१९२५ **महादेव हरिभाई देसाई**

परिशिष्ट: ३*

बंगाल प्रलय-निवारण संस्था

मैं बंगाल में जाऊँ और आचार्य राय की 'बंगाल प्रलय-निवारण संस्था' के कार्य-क्षेत्र और उसके कार्यकर्ताओं से संपर्क न करूँ, यह कैसे हो सकता है? मेरे लिए तो वह तीर्थस्थान ठहरा। एक तो आचार्य राय के साथ मेरा चौबीस वर्ष का सम्बन्ध और दूसरे संकट-निवारण के काम में चरखे की सफलतापूर्वक योजना बनाकर इस संकट के उपयुक्त रूप में और भावी संकट के विरुद्ध दीवार के तौर पर चरखे की शक्ति उन्होंने साबित कर दी है। उन्होंने दिखा दिया है कि यदि बंगाल के गाँवों की जनता को जल-प्रलय और अकाल के विरुद्ध लड़ने की पद्धतियाँ सिखा दी जायँ और ऐसे संकट के समय खेती असम्भव होने के कारण उसके उपरांत एक अतिरिक्त धंधा सिखा दिया जाय, तो ऐसे संकटों के समय आजकल समय, रुपये और परिश्रम का जो व्यय होता है, उसमें से बहुत-सा बच जाय। ऐसे समय लोगों को खैरात पर गुजर करना सिखाने से वे स्वाभिमान भूलने लगकर धीरे-धीरे हाथ-पैरों से निकम्मे होना सीखते हैं और समय पाकर पशु से भी बुरे बन जाते हैं, क्योंकि पशु को मात्र जीने की क्रिया में भी एक प्रकार का आनंद होता है, यह हम देखते हैं, परन्तु इन लोगों को उतना भी नहीं होता। वे मुर्दे की तरह जीते हैं। इस कारण इस चरखे के पागल रसायनशास्त्री ने संकटवाले इलाकों में चरखे का क्या चमत्कार कर दिया है, यह जितना संभव हो, अपनी आँखों देखने को मैं उत्सुक था।

हम पहले बोगरा और वहाँ से तलोड़ा गये। वहाँ हमने आचार्य को उनकी पूरी मस्ती में देखा। "यह झोंपड़ा मेरे लिए साइंस कॉलेजवाले महलों से अधिक है। यहाँ मुझे जैसी शांति मिलती है और मन को ठंडक होती है, वैसी और कहीं नहीं होती। और चरखा तो मुझसे दिन-दिन अधिकधिक चिपटता जा रहा है। यह मेरे शरीर और मन पर पूरी तरह छा गया है। पुस्तकें पढ़-पढ़कर पक गया मन चरखे से विश्रांति पाता है।"

तलोड़ा एक छोटा-सा गाँव है और निवारण-कार्य का एक केन्द्र है। निवारण-संस्था ने यहाँ कोई बीस बीघा जमीन खरीदकर अपार सृष्टि-सौंदर्य के बीच बाँस के झोंपड़े बनाये हैं। पूर्व बंगाल में मलेरिया का पीहर है। यहाँ के मनुष्यों ने कुदरत के नियमों की जिस बेपरवाही से अवहेलना की, उसका वह पूरी तरह बदला ले रही है। परन्तु पूर्व बंगाल में सभी जगह हरियाली की जो शोभा है, उससे और कोई प्रान्त शायद ही बढ़ सकता

है। मनुष्य यहाँ मलेरिया को घरजमाई बनाने में जितना सफल सिद्ध हुआ है, उतना प्रकृति के सौंदर्य का नाश करने में सफल नहीं हुआ।

यहाँ चारों ओर की अपार शांति में संकट-निवारण के कार्य का सारा इतिहास मैंने ब्योरेवार जाना। यहाँ मुझे दिये गये मानपत्र में एक भी विशेषण से मुझे आभारी नहीं किया गया। टाइप किये हुए छहों फुलिस्केप पन्ने तथ्यों और आँकड़ों से भरे हैं। पाठकों के लाभ के लिए इन तथ्यों का सार मैं यहाँ दे रहा हूँ।

सितम्बर सन् १९२२ के जल-प्रलय ने राजशाही और बोगरा जिलों के भाग उध्वस्त करके उत्तर बंगाल का लगभग ४,००० वर्गमील का प्रदेश नष्ट कर दिया। लगभग करोड़ रुपये की हानि आँकी गयी। इस प्रलय के बाद चारों ओर संकट-निवारण का कार्य चालू करने और यह करने को जगह-जगह खड़े किये दलों का संगठन करने की आवश्यकता पैदा हुई। यह काम मुश्किल भी था। ऐसे संकट-निवारण में जिसने काम किया है, वह जानता है कि इसमें यदि कार्यकर्ताओं में आवश्यक अनुभव और योग्यता की कमी हो, तो अकेली सेवा की भावना या अकेला पैसा बहुत काम नहीं आता। न्यायवृत्ति से और बारीकी से काम लेने से बिगाड़ और कच्ची व्यवस्था रोकी गयी। प्रदेश को ५० अलग-अलग केन्द्रों में बाँट दिया गया। इस विशाल तंत्र के संचालक थे अभी मांडले के किले में सरकार का आतिथ्य भोग रहे श्री सुभाषचंद्र बोस। इस दल ने २५,६०६ रुपये की कीमत का अनाज इत्यादि खाद्य, ५५,२०० के मूल्य का कपड़ा और ८०,००० कपड़े के टुकड़े तथा ७५,००० पुराने जाकट, कुरते संकटग्रस्त लोगों में बाँटे। इसके सिवा १,२७४ रुपये की कीमत का घास-चारा और ५२ वैगन भूसा, जो दान के रूप में मिला, वह भी बाँटा। इनकी देखरेख में १०,००० झोंपड़े बाँधे गये। "ग्रामवासियों के घर पर सामग्री पहुँचायी जाती और पहले दिया गया सामान ठीक तरह से काम में लिया जाने का विवरण मिलने के बाद किश्तों में मजदूरी के पैसे दिये जाते।" देखरेख इतनी कड़ी थी कि रुपये की गड़बड़ी के केवल तीन ही मामले हुए—(क्रमशः १,५००), ३५०) और २००) की रकमों के)। इन मामलों की भी फौरन जाँच की गयी थी और रकमें वसूल कर ली गयी थी। झोंपड़े बनाने पर १,१२,७५५ रुपये खर्च किये गये। कालिकापुर के सामने की जमीन बचानी हो तो बाँध बाँधना जरूरी था। असल में यह काम जिला बोर्ड का था। परन्तु यह मंडल असमर्थ होने से समिति ने यह काम हाथ में लिया और ५,७७५ रुपये के खर्च से एक मील लम्बा बाँध बाँधकर ६,००० बीघे जमीन बचायी। धीरे-धीरे काम व्यवस्थित होने पर समिति ने ग्रामवासियों के लिए उन्हें अन्न-वस्त्र दे सकनेवाला कोई काम ढूँढने का विचार करके पहले उन्हें धान कूटने का काम देना शुरू किया। प्रत्येक संकटग्रस्त परिवार केन्द्र से धान कूटने को ले जाता और कूट-फटककर साफ करके केन्द्र पर लौटा

जाता और बदले में उसे कुटे हुए चावल का एक निश्चित भाग मिल जाता। १४ केन्द्रों में यह काम हुआ। २०,००० मनुष्यों को इन केन्द्रों से ५०,००० मन धान में से २७,४०० मन चावल तैयार कराकर इस प्रकार चार महीने तक निभाया। इन लोगों में से कोई भी केन्द्रों की हानि करनेवाला नहीं निकला था। इस निवारण-कार्य पर ४३,००० रुपये खर्च हुए। इस काम के साथ-साथ ही दवा और डॉक्टर की सहायता भी मुक्त हस्त से दी जाती थी।

परन्तु समिति को इतने से ही संतोष नहीं हो सकता था। कुछ-न-कुछ स्थायी निवारण-कार्य करके बताकर उदार लोकाश्रय की योग्यता प्रमाणित करने की उसकी महत्त्वाकांक्षा थी। संकट के समय में लोगों को आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी रखने की उसके मन में उमंग थी। इस महत्त्वाकांक्षा के फलस्वरूप चरखे की खोज हुई और इस रामबाण को समिति ने किस प्रकार लोगों में चलाया, इसका ब्योरा तो मुझे मानपत्र की ही भाषा में देना होगा:

"चौमासा शुरू होने पर धान कूटवाने का काम जारी रखना मुश्किल हो गया। परन्तु मदद की जरूरत तो अभी लगभग तमाम केन्द्रों में थी। प्रत्येक जगह कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जिन्हें अच्छी फसल के समय भी सहायता देना आवश्यक था, क्योंकि उनके पास जमीन नहीं थी।" ऐसे व्यक्तियों में जो स्त्रियाँ थीं, उनके उदाहरण तो बहुत ही दयाजनक थे। और फिर ऐसे उदाहरण इस प्रदेश में इने-गिने भी नहीं थे। इस स्थिति में चरखा सूझा और कुछ केन्द्रों में जारी किया गया। खमार गाँव में श्रीगणेश हुआ। यहाँ बूढ़ी स्त्रियों में हाथ-कताई और चरखे की पुरानी याददाश्त अभी तक बिल्कुल मिटी नहीं थी। इतने पर भी सन् १९२३ के मध्य तक इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हो सकी। उसके बाद इस प्रदेश में चरखे को अधिक लोकप्रिय करने के प्रबल प्रयत्न किए गये। यह काम कार्यकर्ताओं के लिए उनके पहले किये हुए सब कामों से मुश्किल मालूम हुआ। यह उनकी कसौटी ही थी। अब तक लोगों में उत्साह था। अब वह उनमें भर देने का काम आया। चरखा जारी करना चाहनेवाले को खुद चरखे का पूर्ण पंडित होना चाहिए। अब तक काम में परिपक्व भले-भले कार्यकर्ता इस नयी कसौटी में फेल हुए। सन् १९२३ के पिछले भाग में चरखे के काम में निपुण कार्यकर्ता तैयार करने के लिए रघुरामपुर में अलग केन्द्र खोला गया और वहाँ कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण शुरू हुआ। इस समय जो केन्द्र चालू हैं, उनमें से तीन के अतिरिक्त बाकी सब केन्द्र उस समय शुरू हुए थे। सन् १९२४ में तीन ही खोले गये थे। स्थानीय लोगों की सहानुभूति के अभाव में अब तक तीन केन्द्र बंद कर देने पड़े हैं। सन् १९२३ के पाँच महीनों

का नौ केन्द्रों का कुल सूत ६१ मन; उससे बुना गया कपड़ा १०,००० गज; और उससे बुनी खादी की बिक्री की रकम ४,८९६) थी। यह तो शुरू के ही महीनों का काम था।

"सन् १९२४ के नौ केन्द्रों का कुल सूत ३९० मन, बुनाई के केन्द्रों में बुना गया कपड़ा ९०,३०० गज और वर्षभर में हुई खदी की बिक्री ७६,२२५ रु. की थी।

"इस समय दस हाथ-कताई के और तीन बुनाई के केन्द्र काम कर रहे हैं। १९९ गाँवों में कार्यकर्ता पहुँच चुके हैं और २,९८७ व्यक्तियों को उतने चरखे दिये गये हैं। कातनेवाले अधिकांश मुसलमान हैं, क्योंकि इस प्रदेश में हिन्दुओं की आवादी बहुत थोड़ी है। कुल कातनेवालों में पाँच फीसदी भी हिन्दु नहीं होंगे।

"बुनाई के तीन केन्द्रों में काम करनेवाले २०० जुलाहों में केवल १२ हिन्दू हैं। १०४ जुलाहे केवल शुद्ध खादी के ही बुननेवाले हैं और वे सालभर में ११० से १५० रु. तक कमाई कर लेते हैं। हाथ-कताई से अधिक-से-अधिक कमाई करनेवाली फैजनबीबी है और बुनाई में ज्यादा-से-ज्यादा आमदनी करनेवाला यशमत है। इनकी मासिक आय क्रमशः रु. ७-१३-३ और ३१ रु. है।

"तलोड़ा केन्द्र के अधीन निमाईदीगी गाँव में १३० चरखे चल रहे हैं। पिछले साल के छह महीनों में इस गाँव के १२२ चरखेवालों की कुल कमाई १,२४८ रुपये हुई अर्थात् प्रतिव्यक्ति १ रुपया ११ आने हुए। और तिलकपुर केन्द्र के अधीन शावल गाँव के ११ जुलाहों की छह महीने की कमाई १,१७४ रुपये हुई अर्थात् फी जुलाहा औसत १८ रु. हुए । यह आय गाँव के आदमी के लिए अच्छी ही कही जा सकती है ।

"आत्राई के आसपास के 'बिल' प्रदेश के साथ तुलना करने पर बोगरा जिले के लोगों की कठिनाइयाँ कम नहीं थीं । जल-प्रलय के बाद अनावृष्टि आयी । और कहालु तथा धुपछांछिया थानों के बड़े भाग में छह आने भी फसल नहीं हुई । जल्दी संकट-निवारण करना जरूरी हो गया । बोगरा के जिला मजिस्ट्रेट को चरखे की संकट-निवारण के उपाय के रूप में उपयोगिता से आश्चर्य हुआ और उसने यह विभाग चलाने का काम हमें सौंपा । हमने तलोड़ा, चंपापुर, दुर्गापुर और तिलकपुर केन्द्रों से यह काम चलाया । उसके परिणाम इस प्रकार हैं:

			---------- मजदूरी ----------			
	गाँव	चरखे	कताई	बुनाई	लुढ़ाई	कुल
तलोड़ा	३३	४२५	४,३४४	४,५१९	५३५	९,३९८
चंपापूर	२४	३५८	३,७९७	--	--	३,७९७
दुर्गापुर	१८	१३५ (करघे)	१,४१५	--	--	१,४१५
तिलकपुर (केवल बुनाई-केन्द्र)	८	६७	--	२,८१०	--	२,८१०
					कुल	_____ १७,४२०

"इस प्रकार कताई, बुनाई और लुढ़ाई मिलकर उपर्युक्त चार केन्द्रों की मार्च १९२४ से सितंबर तक सात महीने की कुल आमदनी का जोड़ १७,४२० रुपये हुआ। इस पर से देखा जा सकता है कि चरखे को अपनाने में केवल अकाल से निपटने में ही नहीं, परन्तु बेकारी के मौसम में गरीब जनसाधारण के लिए चरखा कैसे जीवन का सहारा बन सकता है ।

"केन्द्र समितियों द्वारा खरीदी हुई अथवा जमींदारों से किराये पर ली हुई जमीनों पर खोले गये थे । हमारे पास कुल ४३ बीघे जमीन है, जिसमें से २५ बीघे का अत्राई में एक साबूत टुकड़ा है। औसत देखें तो हर केन्द्र में तीन-तीन झोंपड़े हैं—एक कार्यकर्ताओं के रहने के लिए, एक रसोई के लिए और एक भंडार के लिए। प्रत्येक केन्द्र २५ से ३० वर्गमील के प्रदेश में औसत १० से ३० तक गाँवों में काम करता है। गाँवों के अलग-अलग समूह कर दिये गये हैं और एक-एक समूह एक-एक कार्यकर्ता को सौंपा जाता है, जिसके सिलसिले में उसे १३ से २० कातनेवालों की औसतन् सप्ताह में लगभग १०० चरखों की जाँच का काम करना पड़ता है। कताई का काफी काम हाथ में रहे, इसके लिए प्रत्येक कतवारी को एक सप्ताह के लायक रुई दे दी जाती है और ठीक सातवें दिन देनेवाला वापस सूत लेने के लिए आ जाता है। वह १० अंक के एक तोले सूत पर एक पैसे के हिसाब से काते हुए सूत की मजदूरी चुका देता है और सूत ले जाता है। इस प्रकार इकट्ठा किया हुआ सूत ब्योरे की बाकायदा चिट्ठियाँ चिपकाकर केन्द्र को भेज दिया जाता है। उस पर लिखे गये ब्योरे की जाँच होती है, सूत का पृथक्करण किया जाता है और बुनाई-केन्द्रों को ऐसे सूत के गट्ठर भेज दिये जाते हैं। केन्द्र के कार्यकर्ता इस सूत को मूल केन्द्र की सूचना के अनुसार अपने जुलाहों में बाँट देते हैं और उसके अनुसार खादी

बुनकर तैयार होने के बाद उस केन्द्र को भेज दी जाती है। वहाँ वह धुलकर, बँधकर अन्त में विक्री के लिए कलकत्ते जाती है।

"अभी हमारे कार्यकर्ताओं की संख्या ६२ है, जिनमें लगभग सभी कातने और उससे सम्बद्ध क्रियाओं में काफी निपुण कहे जा सकते हैं! इनमें से ४५ आदमी ४०० गज प्रतिघंटे की गति से १५ अंक का सूत कात सकते हैं। अब तक अधिक-से-अधिक अंकित गति उत्समानजी काजी नामक एक कार्यकर्ता की है। उसने घंटेभर में २० नंबर का ८२० गज सूत काता; और एक अन्य मियाँजान परमाणिक नामक कार्यकर्ता ने इतने ही अंक का ७९० गज काता है।"

उपर्युक्त परिणाम बड़े हैं, यह तो निःशंक है, परन्तु मैं मानता हूँ कि जितना और हो सकता है, उसके हिसाब से यह कुछ भी नहीं है। ऐसा समय आना चाहिए, जब गाँववालों को रुई देने और सूत लेने का काम भी नहीं रहना चाहिए। परन्तु वे स्वयं ही कपास खरीदें और दूसरे माल की तरह बाजार में जाकर सूत बेचें। बंगाल के फेनी जिले में और पंजाब तथा राजस्थान के अनेक गाँवों में और अन्यत्र आज भी ऐसा हो रहा है। चरखे की व्यापक बनने की शक्ति मुझे तो इतनी सम्पूर्ण लगती है कि उपर्युक्त प्रवृत्ति में ऊपर कही हद तक उन्नति होने में मुझे तो कुछ भी कठिनाई नहीं दीखती।

यह प्रयोग हिन्दू-मुसलमानों की एकता की असली प्रगति का भी माप है। एक ज्यादातर हिन्दुओं का बना हुआ मंडल एक अधिकतर मुसलमानों की आबादी को उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने के एकमात्र हेतु से प्रेरित होकर मदद दे रहा है। उसके पास ऐसे मुसलमान कार्यकर्ता भी मौजूद हैं, जिन्हें कभी नहीं लगने दिया जाता कि वे हिन्दुओं के बराबर ही प्रतिष्ठापात्र नहीं हैं। इनमें से दो ने तो केवल अपनी कार्यदक्षता से कातनेवालों में ऊँची-से-ऊँची पदवी प्राप्त कर ली है। ३२ स्वयंसेवकों को एक जगह कातते देखने का सौभाग्य मुझे मिला था। प्रत्येक ४०० गज से अधिक प्रतिघंटे की गति से कात रहा था, परन्तु मुसलमान कातनेवाले ने घटेंभर में ७२० गज काता। यहीं यह भी कह दूँ कि इन स्वयंसेवकों को भी इनकी मजदूरी के दाम बाजार-भाव से चुकाये जाते हैं। सतीशबाबू ने, जो इस सारे तंत्र के विधाता हैं, मुझसे कहा कि सारे समय काम करनेवाले स्वयंसेवकों को भी उनकी मजदूरी के दाम चुकाना उनसे पूरी तंत्रनिष्ठा प्राप्त करने की दृष्टि से बढ़िया नीति है। वे अपने ६२ स्वयंसेवकों को औसत २५ रु. मासिक के हिसाब से दाम चुकाते हैं।

(यं. इं. से) **मोहनदास करमचंद गांधी**

नवजीवन, ता. ७-६-१९२५

परिशिष्ट: ४*

बंगाल में

× ×

शांतिनिकेतन

बंगाल में मेरे लिए कोई एक ही लालच है? अनेक मौजूद हैं। शांतिनिकेतन गये बिना काम ही कैसे चलता? ···· शांतिनिकेतनवासी मुझे परम शांति दे रहे हैं। बहनें अपने मधुर गीत सुनाती हैं। कविवर के साथ भरपेट घंटों बातें कीं। इन्हें मैंने अधिक समझा। यह कह सकता हूँ कि ये मुझे अधिक समझने लगे हैं। उन्होंने मुझ पर प्रेम प्रदर्शित करने में कोई कसर नहीं रखी। उनके बड़े भाई द्विजेंद्रनाथ ठाकुर का, जो 'बड़ो दादा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रेम तो ऐसा है, जैसा पिता का पुत्र के प्रति होता है। मेरी त्रुटियाँ देखने से वे साफ इनकार करते हैं। उनके खयाल से तो मैंने कहीं भी भूल नहीं की। मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, मेरी हिन्दू-मुसलिम-एकता की कल्पना, मेरा असपृश्यता का विरोध—सभी यथायोग्य हैं। और इसीमें स्वराज्य है, यह मेरी मान्यता उनकी भी है। जैसे मोहित पिता पुत्र के दोष देखता ही नहीं, वैसे ही बड़ो दादा मेरे दोष देखना ही नहीं चाहते। उनके इस मोह का और प्रेम का मैं यहाँ केवल उल्लेख करता हूँ। उसका वर्णन, तो मुझसे हो ही नहीं सकता। इस प्रेम के योग्य बनने का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। अस्सी वर्ष से ऊपर उनकी उम्र है, परन्तु छोटी-छोटी बातों तक की खबर रखते हैं। भारत में क्या हो रहा है, इसका उन्हें पता है। औरों से पढ़वाकर वे जानकारी जुटाते हैं। दोनों भाइयों का वेदादि का अध्ययन गहरा है। दोनों संस्कृत जाननेवाले हैं। दोनों की जबान पर बारंबार उपनिषद् और गीता के मंत्र और श्लोक तो रहते ही हैं।

शांतिनिकेतन में चरखे के पुजारी भी मौजूद हैं, कुछ नियमित चलाते हैं, कुछ अनियमित। बहुत-से खादी का उपयोग करते हैं। मुझे आशा है कि इस जगत्-विख्यात संस्था में चरखे को अभी और अच्छा स्थान मिलेगा।

नंदिनी बाला

थोड़े ही गुजराती जानते होंगे कि यहाँ कुछ गुजराती बालक रहते हैं। इनमें से कुछ के परिवार भी यहीं रहते हैं। ऐसा ही एक भाटिया कुटुम्ब था। उसके यहाँ एक लड़की का जन्म हुआ। माँ बहुत बीमार हो गयी और पागलपन आ गया। इसलिए गुरुदेव की पुत्रवधू ने इस लड़की को गोद ले लिया और अब वह पाल रही है। यह

लड़की लगभग ढाई वर्ष की है। गुरुदेव की लाड़ली है। सब इसे उनकी पोती मानते हैं। गुरुदेव अभी आराम कर रहे हैं। हृदय का दर्द होने से डॉक्टरों ने चलने-फिरने की मनाही की हुई है। परिश्रमवाला मानसिक कार्य भी नहीं कर सकते। इसलिए वे इस लड़की—नंदिनी—के साथ हमेशा दो-तीन बार विनोद करते हैं और उसे तरह-तरह की कहानियाँ सुनाते हैं। यदि उसे कहानी न सुनाई जाय तो वह नाराज भी हो जाती है। ऐसी ही कुछ नाराजगी वह आजकल मुझ पर भी कर रही है। मुझे फूलमाला तो लेने को तैयार हो गयी, मगर मेरे पास आने से साफ इनकार करती है। पता नहीं, उसकी कहानी के समय मैं गुरुदेव के साथ बातें करता था, शायद उसीका वह मुझसे बदला ले रही हो? बालक और राजा की नाराजगी से कौन निपटे? राजा रुठे तो मेरे जैसा सत्याग्रही उससे शायद निपट भी ले, परन्तु बालक के रुठने पर तो मेरा तेजस्वी हथियार भी निस्तेज-सा प्रतीत होता है। और बीच में ही मौनवार आ गया। इसलिए कदाचित् नंदिनी को जीते बिना ही मुझे शांतिनिकेतन छोड़ना पड़ेगा। मेरी हार की दुःख-गाथा किससे कहूँ?

नवजीवन, ता. ७-६-१९२५ **मोहनदास करमचंद गांधी**

•